RNI No.: MPHIN/2018/77137

ISSN 2582-483X

पाठशाला
भीतर और बाहर

Azim Premji University

अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय का प्रकाशन

वर्ष-6 अंक-18 दिसम्बर 2023
तिमाही, भोपाल

पुस्तकालय विशेष

पाठशाला
भीतर और बाहर

दिसम्बर, 2023 (वर्ष 6, अंक 18)

सम्पादक मण्डल

- **हृदयकान्त दीवान**
  अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय
  सर्वे नम्बर 66, बुरुगुंटे विलेज,
  बिक्कनाहल्ली मेन रोड, सरजापुरा,
  बेंगलूरु 562125 कर्नाटक
  hardy@azimpremjifoundation.org
  मो. 9999606815

- **मनोज कुमार**
  अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय
  सर्वे नम्बर 66, बुरुगुंटे विलेज,
  बिक्कनाहल्ली मेन रोड, सरजापुरा,
  बेंगलूरु 562125 कर्नाटक
  manoj.kumar@apu.edu.in
  मो. 9632850981

- **गौतम पाण्डेय**
  अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय
  खसरा नम्बर 40 और 51, विदिशा बायपास
  रोड, कान्हासैया, भोपाल 462022
  gautam@azimpremjifoundation.org
  मो. 9929744491

- **सी एन सुब्रह्मण्यम**
  मुख्य डाकघर के पीछे
  कोठी बाज़ार,
  होशंगाबाद, म.प्र. 461001
  subbu.hbd@gmail.com
  मो. 9422470299

- **अभय कुमार दुबे**
  विकासशील समाज अध्ययन पीठ
  (सीएसडीएस)
  29, राजपुर रोड,
  नई दिल्ली 110054
  abhaydubey@csds.in
  मो. 9810013213

- **आवरण चित्र :** ज़िया शकूर अंसारी,
  अज़ीम प्रेमजी स्कूल, ऊधम सिंह नगर,
  उत्तराखंड

कार्यकारी सम्पादक

- **गुरबचन सिंह**
  अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय
  खसरा नम्बर 40 और 51, विदिशा बायपास
  रोड, कान्हासैया, भोपाल 462022
  gurbachan.singh@azimpremjifoundation.org
  मो. 8226005057

- **रजनी द्विवेदी**
  द्वारा-अमित जुगरान
  आसाम वैली स्कूल, बालिपारा
  तेजपुर, आसाम 784101
  rajni.dwivedi@azimpremjifoundation.org
  मो. 9101962804

- **प्रतिभा कटियार**
  अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन
  खसरा नम्बर 360, आमवाला तरला
  देहरादून, उत्तराखण्ड 248008
  pratibha.katiyar@azimpremjifoundation.org

- **मृत्युंजय**
  अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय
  खसरा नम्बर 40 और 51, विदिशा बायपास
  रोड, कान्हासैया, भोपाल 462022
  mrityunjay@azimpremjifoundation.org

रिव्यु पैनल

अमन मदान टुलटुल बिस्वास यतीन्द्र सिंह
अंकुर मदान राजीव शर्मा सुशील जोशी
विश्वंभर रेवा यूनुस नवनीत बेदार दिशा नवानी
कॉपी एडिटर : अतुल अग्रवाल

डिज़ाइन एवं प्रिंट

- **गणेश ग्राफिक्स,**
  26-बी, देशबंधु परिसर,
  प्रेस काम्प्लेक्स,
  एम.पी. नगर, जोन-1
  भोपाल, म.प्र. 462011
  ganeshgroupbpl@gmail.com
  मो. 9981984888

सलाहकार सम्पादक

- **जगमोहन कठैत**
  अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन
  खसरा नम्बर 360, आमवाला तरला
  देहरादून, उत्तराखण्ड 248008
  jagmohan@azimpremjifoundation.org

- **सुनील कुमार साह**
  एम-13, अनुपम नगर
  टीवी टॉवर के पास, शंकर नगर,
  रायपुर 492007
  sunil@azimpremjifoundation.org

- **सिद्धार्थ कुमार जैन**
  अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन
  प्लाट नं. 163-164, त्रिलंगा कोऑपरेटिव सोसायटी,
  ई-8 एक्सटेंशन, त्रिलंगा, भोपाल 462039
  siddharth.jain@azimpremjifoundation.org

- **दीपक कुमार राय**
  अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन
  प्लाट नं. ए 413-415
  सिद्धार्थनगर-ए, होटल नाँगीस प्राइड के सामने
  जवाहर सर्किल के पास, जयपुर, राजस्थान
  deepak.rai@azimpremjifoundation.org

प्रकाशक

Azim Premji University

- **अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय**
  सर्वे नम्बर 66, बुरुगुंटे विलेज, बिक्कनाहल्ली मेन रोड,
  सरजापुरा, बेंगलूरु 562125 कर्नाटक
  Web: www.azimpremjiuniversity.edu.in

सम्पादकीय कार्यालय

- **सम्पादक**
  पाठशाला भीतर और बाहर
  अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन
  प्लाट नं. 163-164, त्रिलंगा कोऑपरेटिव
  सोसायटी, ई-8 एक्सटेंशन, त्रिलंगा,
  भोपाल, म.प्र. 462039 फोन-0755-4074060
  pathshala@apu.edu.in
  gurbachan.singh@azimpremjifoundation.org
  मो. 8226005057

पाठशाला भीतर और बाहर पत्रिका, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन का हिन्दी प्रकाशन है। यह शिक्षकों, शिक्षक प्रशिक्षकों, अन्य ज़मीनी कार्यकर्ताओं व शिक्षा से सरोकार रखने वाले सभी व्यक्तियों और संस्थाओं के लिए विचार-विमर्श का एक मंच है। पत्रिका का उद्देश्य शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत व्यक्तियों के अनुभवों व आवाज़ को जगह देकर शिक्षा के विमर्श को गहन व यथार्थपरक बनाना है।

अनुक्रम

सम्पादकीय 3

परिप्रेक्ष्य

1. बच्चों की दुनिया में किताबें – पुस्तकालय : एक परिचय / निशा बुटोलिया 07

शिक्षणशास्त्र

2. सामाजिक विज्ञान की एक कक्षा / महमूद ख़ान 15
3. विज्ञापन के ज़रिए सम्प्रेषण कला और सामाजिक सोच का विकास / प्रतिभा शर्मा 25
4. बच्चों के साथ पुस्तकालय पर काम करने के कुछ अनुभव / वृजेश सिंह 31
5. सीखना कक्षा के बाहर भी हो सकता है! / टिना 36

विमर्श

6. डिजिटल लाइब्रेरी ने बढ़ाया है दायरा / प्रतिभा कटियार 44

कक्षा अनुभव

7. पढ़ना : क्या सभी ग़लतियाँ सुधरवाई जाएँ? / मीनू पालीवाल 49
8. दीवार पत्रिका और अभिव्यक्ति के मौक़े / लवकुश यादव 56
9. स्वतंत्र लेखन के लिए बातचीत ज़रूरी / साहबउद्दीन अंसारी 62
10. सीखने-सिखाने की ओर एक क़दम / सोनिया कुंडू 67
11. पुस्तकालय कालांश और बच्चे / ज़िया शकूर अंसारी 74

पुस्तक चर्चा

12. दक्षिण एशियाई कला में सीखना-सिखाना / अवधेश त्रिपाठी 81

साक्षात्कार

13. स्कूल में सीखने-सिखाने की ज़रूरत है पुस्तकालय / शिक्षक वरुण कुमार से पुरुषोत्तम ठाकुर की बातचीत 85

संवाद

14. पढ़ने की संस्कृति के वाहक हैं पुस्तकालय 90

ऑनलाइन

परिप्रेक्ष्य

15. कक्षा की पाठ वस्तु से पुस्तकालय का जुड़ाव : कथा एवं कथेतर साहित्य की सम्भावनाएँ और सीमाएँ / अनिल सिंह 102
16. पुस्तकालय व पुस्तकों के इस्तेमाल की सम्भावनाएँ / हृदय कान्त दीवान 102

विमर्श

17. स्कूल पुस्तकालयों की सक्रियता के सवाल / कमलेश जोशी 103
18. स्कूलों में पुस्तकालय की ज़रूरत : अतीत, आज और आगे / रजनी द्विवेदी 103

पाठक चश्मा 104

लेखकों से आग्रह 115

पत्रिका में छपे लेखों में व्यक्त विचार और मत लेखकों के अपने हैं।
अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन या अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

पत्रिका में प्रकाशित सामग्री का उपयोग शैक्षणिक और ग़ैर–व्यावसायिक कार्यों के लिए किया जा सकता है।
लेकिन इसके लिए लेखक एवं प्रकाशक से अनुमति लेना एवं स्रोत का उल्लेख अनिवार्य है।

सम्पादकीय

पुस्तकालय की महत्ता के बारे में हम सबने सुना है। यह आग्रह भी होता रहा है कि स्कूल या कॉलेज के लिए पुस्तकालय हो या फिर सार्वजनिक पुस्तकालय। अकसर कहा जाता है कि पुस्तकालय जाने से, पुस्तकें पढ़ने से 'कुछ' हासिल होता ही है। यह 'कुछ' बच्चों के लिए, किशोरों, वयस्कों, वस्तुतः हर व्यक्ति के लिए अलग हो सकता है, लेकिन यह 'कुछ' महत्त्वपूर्ण है। इसपर सफ़दर हाशमी की कविता भी सबने सुनी ही है।

पाठशाला भीतर और बाहर का यह अंक पुस्तकालय और उसके लिए पुस्तकों व उनके उपयोग के सम्भव तरीक़ों पर केन्द्रित है। इसमें शामिल लेख पुस्तकालय की अवधारणा, पुस्तकालय की प्रक्रियाओं, बच्चों का पुस्तकालय से जुड़ाव क्यों हो और कैसे हो सकता है, जैसे मसलों को समझने में मदद करते हैं। साथ ही, ये लेख ऊपर अनुच्छेद में कहे गए 'कुछ' की भी व्याख्या करते हैं। माने, उसका विस्तार करते हैं जो बच्चे व अन्य सभी अपने-अपने लिए पुस्तकालय जाने पर हासिल कर पाते हैं। लेखों को पढ़कर आप और भी कई चीज़ों के बारे में जान सकते हैं। यथा– किताबों से रिश्ता बनाना, पढ़ना सीखना, सोच को विस्तार देना, आदि। इस अंक में पुस्तकालय पर केन्द्रित लेखों के अलावा भाषा और सामाजिक विज्ञान शिक्षण से जुड़े कुछ लेख भी शामिल हैं।

निशा का लेख 'बच्चों की दुनिया में किताबें – पुस्तकालय एक परिचय', बच्चों और किताबों के रिश्ते के विकास पर है। उनका कहना है कि बच्चे अपने आसपास की चीज़ों में रुचि लेते हैं। यदि शुरुआती उम्र से ही उन्हें अपने आसपास किताबें दिखेंगी, उनपर बातचीत होती दिखेगी, वे उनमें रुचि लेंगे ही। रुचि पैदा होने पर उस रुचि को बनाए रखने में वयस्क की भूमिका बेहद महत्त्वपूर्ण है। वयस्क बच्चों को उपयुक्त किताबें उपलब्ध करवाएँ, उनपर उनके साथ कभी बातचीत करें, कभी उन्हें पढ़कर सुनाएँ, यह ज़रूरी है। बच्चों के सीखने को लेकर बार-बार कहा जाता है कि बच्चों के सीखने पर विश्वास, और काम करते हुए धैर्य रखना ज़रूरी है। कुल मिलाकर, यही बात वह भी रेखांकित करती हैं।

इस बार **शिक्षणशास्त्र** स्तम्भ में 4 लेख शामिल हैं। पहला लेख, 'सामाजिक विज्ञान की एक कक्षा' महमूद ख़ान द्वारा प्रस्तुत एक जीवन्त चित्रण है। लेखक इस व्यापक मान्यता की पड़ताल करते हैं कि कक्षा में गतिविधियाँ करवाना आसान नहीं होता। लेखक जानना चाहते थे कि क्या वाक़ई ऐसा है। उन्होंने योजना बनाई और कक्षा 7 के बच्चों के साथ 'समानता' विषय पर गतिविधियों के ज़रिए काम किया। वे गतिविधियाँ कर भी पाए और बच्चों ने उनमें पूरी भागीदारी भी की। लेख में प्रस्तुत विभिन्न गतिविधियाँ, गतिविधि की समझ को भी व्यापक करती हैं।

प्रतिभा शर्मा का लेख 'विज्ञापन के ज़रिए सम्प्रेषण कला और सामाजिक सोच का विकास' यह दलील देता है कि किसी भी कक्षा में बच्चों के साथ काम करते हुए सीखने-सिखाने की कई सम्भावनाएँ मौजूद होती हैं। यह शिक्षक पर निर्भर करता है कि वह इन सम्भावनाओं का सदुपयोग कैसे कर पाता है। लेख के अनुसार, प्रतिभा अपनी कक्षा में एक कहानी पर काम कर रही थीं। इसी कहानी में वस्तुओं के बेचने की बात आई, और वहाँ से कक्षा की चर्चा विज्ञापन की ओर बढ़ चली। इस अवसर का लाभ लेते हुए शिक्षिका ने विज्ञापनों पर चर्चा करते हुए उनको समझना, उनका विश्लेषण करना, नए विज्ञापन बनाना, आदि गतिविधियाँ कीं। बच्चे टेक्स्ट की एक नई विधा से परिचित हुए, और उन्होंने ऐसे नए टेक्स्ट रचे भी।

'बच्चों के साथ पुस्तकालय पर काम करने के कुछ अनुभव' इस लेख के लेखक वृजेश सिंह हैं। वे कहते हैं कि बच्चों और शिक्षकों दोनों में ही किताबों के प्रति दिलचस्पी पैदा करने की ज़रूरत है। विभिन्न स्कूल पुस्तकालयों में काम करने के अनुभवों को प्रस्तुत करते हुए लेखक कहते हैं कि पुस्तकालय बच्चों को स्वतंत्र रूप से पढ़ने के अवसर देने के लिए है। बच्चे स्वयं अपने लिए किताबों का चयन करें, उन्हें उलट-पलट कर देखें, जो किताब पढ़नी है वह पढ़ें, यह आज़ादी सभी बच्चों को मिलनी चाहिए। लेकिन वे बच्चे जो कभी पुस्तकालय ही नहीं गए, जिनकी पुस्तकों के साथ अन्तःक्रिया सीमित ही रही, उनके साथ शुरुआत में रीड अलाउड, पढ़कर सुनाना जैसे काम करना उपयोगी होता है। ऐसी गतिविधियाँ करना,

पुस्तकों के प्रति उनकी दिलचस्पी पैदा करने में भी मददगार होता है। इस लेख में लेखक, किताबों को लेकर बच्चों पर भरोसा रखने की बात पर भी ज़ोर देते हैं।

टिना के लेख, 'सीखना कक्षा के बाहर भी हो सकता है', में प्राथमिक कक्षा के बच्चों के लिए, गर्मियों की छुट्टियों में लगाए गए एक शिविर का विवरण प्रस्तुत है। लेख शिविर की योजना, क्रियान्वयन की प्रक्रिया सभी का सिलसिलेवार ब्योरा देता है। यदि आप भी आने वाली गर्मियों की छुट्टियों में बच्चों के लिए ऐसे किसी शिविर की योजना बना रहे हैं, यह लेख इसमें मददगार हो सकता है।

आज के समय में पुस्तकालय की अवधारणा में एक और पहलू जुड़ गया है, यह है डिजिटल पुस्तकालय। प्रतिभा कटियार का लेख 'डिजिटल लाइब्रेरी ने बढ़ाया है दायरा' दर्शाता है कि तकनीक से पुस्तकालय का दायरा तो विस्तृत हुआ ही है, बल्कि इससे किताबों तक पहुँच भी आसान हुई है। यह न सिर्फ़ बच्चों के इस्तेमाल के लिए है, वरन् शिक्षकों व उनके प्रोफ़ेशनल विकास के लिए अत्यन्त उपयोगी है। वे कहती हैं, यह ध्यान रहे कि डिजिटल पुस्तकालय का प्रयोग करते हुए प्रामाणिक वेबसाइट और उपयुक्त सामग्री के चयन की सचेतता बहुत ज़रूरी है। लेख के अन्त में बच्चों और शिक्षकों के लिए उपयोगी कुछ प्रामाणिक वेबसाइट के लिंक भी दिए गए हैं।

कक्षा अनुभव स्तम्भ में शामिल पहला लेख 'पढ़ना : क्या सभी ग़लतियाँ सुधरवाई जाएँ' मीनू पालीवाल का है। लेख में एक बच्चे के पढ़ने की प्रक्रिया का विस्तृत विवरण प्रस्तुत है। साथ ही, इसमें वयस्कों की पढ़ने की प्रक्रिया के उदाहरण का विवरण भी है। बच्चों और वयस्कों के पढ़ने की प्रक्रिया का विश्लेषण करते हुए वे सुझाती हैं कि पढ़ने में ग़लती पर ही ध्यान देना, उसे उसी वक़्त तत्काल सुधरवाने का प्रयास और उसपर ज़ोर, पढ़ना सीखने में मदद नहीं करता, बल्कि बाधा बनता है। वे कहती हैं, ऐसा इसलिए है क्योंकि कुछ ग़लतियाँ बच्चे स्वयं ठीक कर लेते हैं, और कुछ ग़लतियाँ ऐसी होती हैं जो टेक्स्ट के अर्थ को समझने में बाधा नहीं डालतीं। वे ग़लतियाँ जिनसे समझा गया अर्थ प्रभावित होता है, उनपर काम किया जाना वे ज़रूरी मानती हैं और लेख में दर्शाती हैं कि यह काम कैसे किया जा सकता है।

लवकुश यादव का लेख 'दीवार पत्रिका और अभिव्यक्ति के मौक़े' स्कूल में दीवार पत्रिका पर हुए काम के बारे में है। वे बताते हैं कि यह काम मुख्यतौर पर कक्षा 5 के बच्चों के साथ लेखन पर हुए कार्य से शुरू किया गया, लेकिन धीरे-धीरे पूरा स्कूल ही इसमें शामिल हो गया।

साहबउद्दीन अंसारी और सोनिया कुंडु के लेख भी बच्चों को लिखना सिखाने के बारे में हैं। साहबउद्दीन अपने लेख 'स्वतंत्र लेखन के लिए बातचीत' ज़रूरी में बताते हैं कि लिखना मुश्किल होता है, और इसीलिए बच्चों को लिखना सीखने की प्रक्रिया में शामिल करना काफ़ी कोशिशों की माँग करता है। वे कहते हैं कि बच्चों से लिखे जाने वाले विषय पर बातचीत करना, उन्हें उस विषय से सम्बन्धित रचनाएँ पढ़कर सुनाना, या उस विषय पर कुछ पढ़ने को देना, यह सभी उनकी लिखने में मदद करता है।

'सीखने-सिखाने की ओर एक क़दम' लेख सोनिया कुंडु का है। वे भी बच्चों को पढ़ना-लिखना सिखाने के लिए किए गए अपने प्रयासों का जीवन्त विवरण देती हैं, और इस बात पर ज़ोर देती हैं कि इन प्रयासों में निरन्तरता का होना भी ज़रूरी है।

इस स्तम्भ का अगला लेख 'पुस्तकालय कालांश और बच्चे' ज़िया शकूर अंसारी का है। वे एक स्कूल में पुस्तकालय की प्रभारी हैं, और अपनी इस भूमिका के दौरान बच्चों के साथ अपने अनुभवों का विवरण इस लेख में देती हैं। उनके स्कूल में सभी बच्चे हर सप्ताह लगभग 2 घण्टे पुस्तकालय में बिताते ही हैं। बच्चों के पुस्तकालय में आने से पहले वे सभी ज़रूरी तैयारियाँ करके रखती हैं। इससे बच्चों के पुस्तकालय में रहने के दौरान वे कई बातों पर ध्यान से अवलोकन कर पाती हैं। मसलन, वे क्या पढ़ पा रहे हैं, कैसी किताबें उन्हें पसन्द आ रही हैं, उनके पढ़ने के पैटर्न क्या हैं, आदि। वे कहती हैं कि एक पुस्तकालय प्रभारी की भूमिका न केवल बच्चों को उपयुक्त संसाधन के ज़रिए ज्ञान उपलब्ध कराने की है, बल्कि उन्हें एक सशक्त पाठक बनाने में भी महत्त्वपूर्ण है। उनका मानना है कि हर पुस्तकालय प्रभारी शिक्षा को सकारात्मक तरीक़े से प्रभावित कर सकने का काम कर सकता है।

'दक्षिण एशियाई कला में सीखना-सीखना', इस पुस्तक पर अवधेश कुमार द्वारा की गई चर्चा, इस अंक का अगला लेख है। वे लिखते हैं कि इस पुस्तक में दुनिया के प्राचीनतम स्कूलों के बारे में बात की गई है, और यह चर्चा प्राचीन शिल्प के ज़रिए कई मसले उठाती है। इस पुस्तक के कुछ लेख पाठशाला के शुरूआती अंकों में प्रकाशित हुए थे। शायद आप फिर से इन लेखों को पढ़ना चाहें।

इस बार का **साक्षात्कार** छत्तीसगढ़ के धमतरी ज़िले के एक शिक्षक वरुण कुमार साहू का है। साक्षात्कार पुरुषोत्तम सिंह ठाकुर ने किया है। साक्षात्कार में वरुण ने अपने स्कूल में पुस्तकालय की शुरुआत कैसे की और आज वह कैसे काम कर रहा है, इन बिन्दुओं पर विस्तार से बातचीत की है। वे कहते हैं कि विद्यालय में एक सक्रिय पुस्तकालय का होना उस विद्यालय की जीवन्तता का प्रमाण है।

इस बार आयोजित **संवाद** का मुख्य विषय भी पुस्तकालय ही था। पुस्तकालय से जुड़े कई पहलू इस संवाद में उभरकर आए। यथा– समाज में पढ़ने की संस्कृति और उसपर पुस्तकालय का असर; फिर यह मसला कि आख़िर पुस्तकालय एक ऐसी जगह भी है जहाँ सभी पाठक हैं; इसके अलावा ऐसे पहलू कि पढ़ने की जगह साझा करते हुए पढ़ने का चस्का लगना; जीवन्त और बढ़ता हुआ पुस्तकालय; अच्छा पुस्तकालय बनाम आकर्षक पुस्तकालय सहित और भी कई बातें इस संवाद में उभरीं। हमारा मानना है कि यह संवाद सभी शिक्षकों के लिए उपयोगी साबित होगा।

इस अंक से *पाठशाला* के कुछ लेख सिर्फ़ ई-वर्ज़न में, अर्थात ऑनलाइन, प्रकाशित होंगे। इन लेखों का सारांश, जिसके साथ पूरे लेख को पढ़ने के लिए एक लिंक होगा, पाठक हार्ड कॉपी में पा सकेंगे। इस बार **ई-वर्ज़न** में 4 लेख हैं। अनिल सिंह का लेख 'कक्षा की पाठ वस्तु से पुस्तकालय का जुड़ाव : कथा एवं कथेतर साहित्य की सम्भावनाएँ और सीमाएँ' पाठ्यपुस्तकों और अन्य पुस्तकों, ख़ासकर साहित्य की, के बीच जुड़ाव बनाने के मुद्दे को रखता है। लेखक इसमें पाठ्यपुस्तकों में दी गई अवधारणाओं को विस्तार देती कई पुस्तकों के उदाहरण देते हैं और यह भी दर्शाते हैं कि यह जुड़ाव इतना सहज होता है कि बच्चे ख़ुद-ब-ख़ुद पढ़ते हुए, चर्चा करते हुए अवधारणा को समझ लेते हैं। लेखक कहते हैं, लगता है कि अन्य पुस्तकों की अनदेखी में असल में सीखने-सिखाने की अनदेखी हो रही होती है।

इस कड़ी के दूसरे लेख 'पुस्तकालय व पुस्तकों के इस्तेमाल की सम्भावनाएँ' में हृदय कान्त दीवान अपने स्कूल के दिनों, विभिन्न संस्थाओं के साथ काम के दौरान पुस्तकालय व पुस्तकों को लेकर हुए अनुभवों को याद करते हुए बताते हैं कि एक बार जिन बच्चों का किताबों से, पुस्तकालय से, रिश्ता बन जाता है वे उनसे जुड़ते ही हैं। पुस्तकालय का मुख्य मक़सद इसी रिश्ते को बनाना और बरकरार रखना है, महज़ कुछ सिखा देना नहीं। पुस्तकालय की संस्कृति शिक्षा में बन पाए, इसके लिए व्यापक समाज में पुस्तकों व सीखने के प्रति दृष्टिकोण पर कार्य करने की आवश्यकता है।

तीसरा लेख जो ई-वर्ज़न में ही मिलेगा, 'स्कूल पुस्तकालयों की सक्रियता के सवाल' है। इसके लेखक कमलेश जोशी हैं। कमलेश कहते हैं कि स्कूलों में, समाज में, पढ़ने की संस्कृति को विकसित कर पाने में अभी तक ज़्यादा सफलता हासिल नहीं हुई है, लेकिन इस दिशा में प्रयास करते रहना ज़रूरी है। शिक्षकों के साथ पुस्तकें पढ़ने के एक ऐसे ही प्रयास का ज़िक्र व उसके अनुभवों का विश्लेषण वे अपने लेख में करते हैं।

अन्तिम लेख 'स्कूलों में पुस्तकालय की ज़रूरत : अतीत, आज और आगे' रजनी द्विवेदी का है। लेख पुस्तकालय के बारे में नीति दस्तावेज़ों में कहे गए बिन्दुओं को संक्षिप्त में प्रस्तुत करता है। रजनी के अनुसार, नीति दस्तावेज़ों में स्पष्ट आग्रहपूर्ण ज़िक्र के बावजूद स्कूलों व शिक्षा में पुस्तकालय की समझ व पुस्तकें पहुँचाने पर जो कुछ भी काम हुआ है, वह बहुत कम है। बुनियादी संसाधनों के अभाव के अलावा समाज में सहज पढ़ने में गहरी अरुचि है। पुस्तकालय प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी के अड्डों से अधिक बनें, इसके लिए कई क़दम उठाने की ज़रूरत है। इस अंक के **पाठक चश्मा** में आप पिछले अंकों के लेखों पर पाठकों की प्रतिक्रियाएँ पढ़ सकते हैं। इस अंक के लेखों पर आपकी प्रतिक्रियाओं का इन्तज़ार रहेगा।

सम्पादक मण्डल

बच्चों की दुनिया में किताबें

पुस्तकालय : एक परिचय

निशा बुटोलिया

हम सभी पुस्तकालय गए भी हैं और जाते भी रहते हैं। हर किसी का पुस्तकालय जाने का कोई-न-कोई मक़सद होता है। कुछ लोग ख़ासतौर पर अलग-अलग अख़बारों में दिए गए समाचार में रुचि रखते हैं, कुछ कहानियों की किताबों में, कुछ सामान्य ज्ञान में और कुछ की रुचि पत्रिकाओं में होती है। किसी बड़े सार्वजनिक पुस्तकालय में सभी लोगों की रुचियों को समझते हुए संग्रह किया जाता है। पाठशालाओं में विशेषतौर पर 'अच्छे' पुस्तकालय का होना अनिवार्य है। 'अच्छे' से मेरा तात्पर्य है, ऐसा पुस्तकालय जहाँ बच्चों की ज़रूरतों के अनुसार जानी-मानी पुस्तकों का संग्रह हो, और साथ-ही-साथ ऐसी जगह और लोग हों, जो किताबों की इस दुनिया से बच्चों का सहज और रोचक ढंग से परिचय करवाएँ।

कक्षा में भी एक पुस्तकालय हो, यह माँग भी है और ज़रूरत भी। कुछ अच्छी कक्षाओं में 'किताब का कोना' होता है, जहाँ पर बच्चों की उम्र और रुचि के अनुसार पठन सामग्री रखी हुई होती है। और इस सामग्री के इर्द गिर्द क्रियाकलाप भी होते हैं, ताकि बच्चों के जीवन से यह पठन सामग्री सार्थक रूप से जुड़ी रहे। या यूँ कहिए कि बच्चों की दुनिया में किताबें भी सहज रूप से शामिल हो जाएँ।

बच्चों का स्वभाव और किताबें

बच्चों का क़रीब से अवलोकन करने पर यह स्पष्ट होता है कि वे आसपास की चीज़ों में रुचि लेते हैं। उनके मन में हर बात को जानने का कौतुहल होता है। वे यदि मन में ठान लें, पता लगाकर ही रहते हैं, और यही उनका आनन्द प्राप्ति का तरीक़ा भी है। यही बात पुस्तकों पर भी लागू होती है। इर्द गिर्द यदि पुस्तकें हों, बच्चे उनमें भी रुचि लेंगे। यह शुरुआती रुचि बच्चों को किताबों की दुनिया का आस्वाद लेने का एक महत्त्वपूर्ण चरण है।

किताबों का संसार कितना रोचक होता है, यह हम सभी जानते हैं। सफ़दर हाशमी की

कविता 'किताबें' आपने पढ़ी होगी। इस कविता से कुछ अंश :

किताबें
करती हैं बातें
बीते ज़मानों की
दुनिया की, इंसानों की
आज की, कल की
एक एक पल की।
ख़ुशियों की, ग़मों की
फूलों की, बमों की
जीत की, हार की
प्यार की, मार की।
क्या तुम नहीं सुनोगे
इन किताबों की बातें?

(साभार : दुनिया सबकी : सफ़दर हाशमी की कविता, सफ़दर हाशमी)

इसी प्रकार से, महाश्वेता देवी की किताब क्यूँ-क्यूँ लड़की के कुछ अंश :

"बाबू की बकरियाँ मैं क्यूँ चराने ले जाऊँ? उनके लड़के क्यूँ नहीं ले जाते?"

"मछलियाँ बोल क्यूँ नहीं सकतीं?"

"अगर बहुत सारे तारे सूरज से भी बड़े हैं, तो वे इतने छोटे क्यूँ दिखते हैं?"

एक रात उसने मुझसे पूछा, "तुम सोने से पहले किताबें क्यूँ पढ़ती हो?"

"क्यूँकि किताबों में तुम्हारे 'क्यूँ' के उत्तर हैं," मैंने कहा।

और पहली बार मोयना चुप रही।

(*क्यूँ-क्यूँ लड़की*, महाश्वेता देवी)

महाश्वेता देवी की यह कहानी दोनों पक्षों को उजागर करती है। पहला, बच्चे जिज्ञासु होते हैं, और दूसरा, किताबों में बच्चों की जिज्ञासा को बढ़ाने और बल देने का सामर्थ्य है। सफ़दर हाशमी की कविता भी किताबों की दुनिया की सुन्दर झलक प्रस्तुत कर पाठकों को आमंत्रित कर रही है।

अमूमन यह सुनने को मिलता है कि कुछ बच्चे पढ़ने से कतराते हैं, जबकि कुछ अच्छे पाठक होते हैं, और पढ़ने में उन्हें मज़ा आता है। यह फ़र्क़ क्यों? यह फ़र्क़ इसलिए तो नहीं, कि बच्चों का किताबों की दुनिया से परिचय कैसे और कितना हुआ है या इसमें ही अन्तर है?

किताबों का संसार और हमारा संसार

किताबों का एक और पहलू है। जो किताबों को पढ़ता या सुनता है, अपने दिमाग़ में अपने अनुभवों और ज्ञान के आधार पर चित्र बनाता है। हर एक पाठक की समझ और प्रतिक्रिया अलग-अलग हो सकती है। इस अर्थ में किताबें किसी अलमारी या मेज़ पर रखी वस्तु नहीं हो सकतीं। किताबें लेखक और लेखक के संसार की अन्त:क्रिया हैं और साथ ही, इनमें एक पाठक की दृष्टि भी शामिल हो जाती है। इन किताबों की दुनिया में अन्य साथियों के साथ जब मिलजुलकर प्रवेश करते हैं, एक और नई अन्त:क्रिया जन्म लेती है। जैसे ही हम पढ़ने, समझने, बातचीत करने की प्रक्रिया पर ध्यान देते हैं, ऐसा प्रतीत होता है कि इस प्रक्रिया में शामिल होना अपने-आप में एक आनन्दमयी अनुभव है।

कुछ ऐसा ही मेरा अनुभव है। इस लेख में, मैं अपना व्यक्तिगत अनुभव आपके साथ साझा करना चाहती हूँ। मैंने ख़ुद के और अपनी बहनों के बच्चों को जन्म से ही देखा, और उनके साथ समय बिताया है। यह लेख मेरे घर पर किताबों के संसार में आए विस्तार पर आधारित है। मैं हिन्दी भाषी परिवार से हूँ और कुछ हद तक अँग्रेज़ी और मराठी भी जानती हूँ।

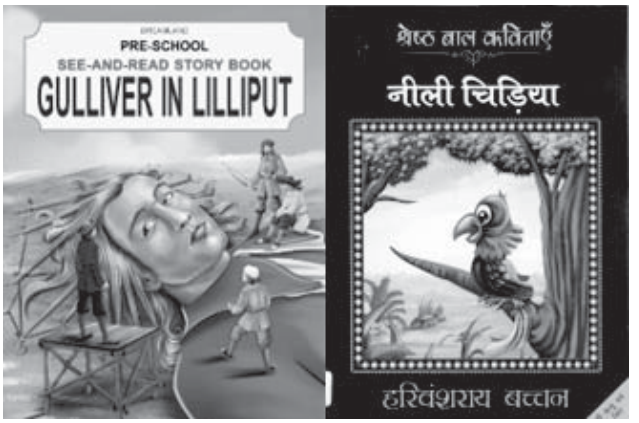

किताबों की दुनिया का सफ़र

नवजात शिशु के आने पर और फिर धीरे-धीरे उसके बड़े होने में पालकों और आसपास के सभी लोगों का विशेष योगदान होता है। नन्हे बच्चों के लिए हिन्दी और मराठी में मैंने लोरियाँ गाईं। जैसे– 'धीरे से आजा री अँखियन में निंदिया', 'लल्ला लल्ला लोरी', 'चन्दा मामा दूर के', 'निम्बोनीच्या झाडामागे चंद्र लपला ग बाई' (सखी, नीम के पेड़ के पीछे चाँद छुप गया है), आदि। हिन्दी और ब्रज में भजनों को भी गाया और सुनाया। जैसे– 'कभी राम बनके, कभी श्याम बनके चले आना, प्रभुजी चले आना...' आदि। बच्चों से लगातार बात की, उनके चेहरे के विभिन्न हाव-भाव को अपने तरीक़े से समझा, और उनपर मज़ेदार प्रतिक्रियाएँ भी दीं। माने, बच्चों की दुनिया में रुचि ली, और यह कोई नई बात नहीं है। अमूमन ऐसा ही किया जाता है, और मैंने भी ऐसा ही कुछ किया।

बच्चे आवाज़ों को जल्दी पहचानते हैं और उनको दोहराने की कोशिश भी करते हैं। वेदांत (मेरा बेटा) गाड़ियों के लिए 'भूम-भूम' कहता था। यह एक ओनोमाटोपोइक (onomatopoeic) शब्द है, जिसे हम हिन्दी में 'ध्वनि अनुकरणात्मक' शब्द कहते हैं। बच्चे का रुझान देखते हुए 'भूम-भूम' (बाइक, कार, साइकिल, ऑटो, आदि) खिलौनों के रूप में घर पर, कविता और कहानियों में भी आया : 'बनी भैया मोटर चली पोम्प, पोम्प, पोम्प!', 'Wheels on the bus go round and round', आदि। फिर लगने लगा कि क्यों न पुस्तकें लाई जाएँ, चित्रों से परिचय करवाया जाए, पेंसिल दी जाए। (मेरी अन्दर की शिक्षिका जाग उठी।) बड़ी किताबें जिनमें सुन्दर चित्र, गहरे रंग हों, और चित्रों में सजीवता हो, ऐसी किताबें मैंने खोजीं। हमारे घर हमारे साथी एक कविता *भालू ने खेली फ़ुटबॉल* (राजेश उत्साही) का पोस्टर लाए। उस पोस्टर को वेदांत और घर पर आए रिश्तेदारों के बच्चे भी बहुत ध्यान से देखते थे। हम बच्चों को 'भालू ने खेली फ़ुटबॉल' गाकर सुनाते थे। भालू की कहानी बताते समय भी वही पोस्टर काम आता, और फ़ुटबॉल व चाँद की कहानी में भी। सबसे पहली किताबें जो मैंने ख़रीदीं, वह थीं हिन्दी और अँग्रेज़ी कविताओं की। *Goosy Goosy Gander, Where Shall I Wander* से लेकर *Cock–A–Doodle Doo* और फिर *तोता हूँ मैं तोता हूँ* से लेकर *चिड़िया चूँ-चूँ करती हैं*, आदि। इनमें गीत भी थे। जो कविताएँ बच्चे अब तक सुन रहे

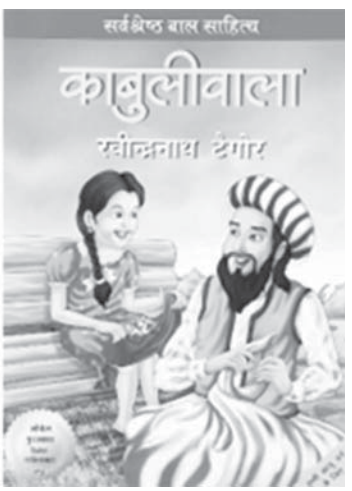

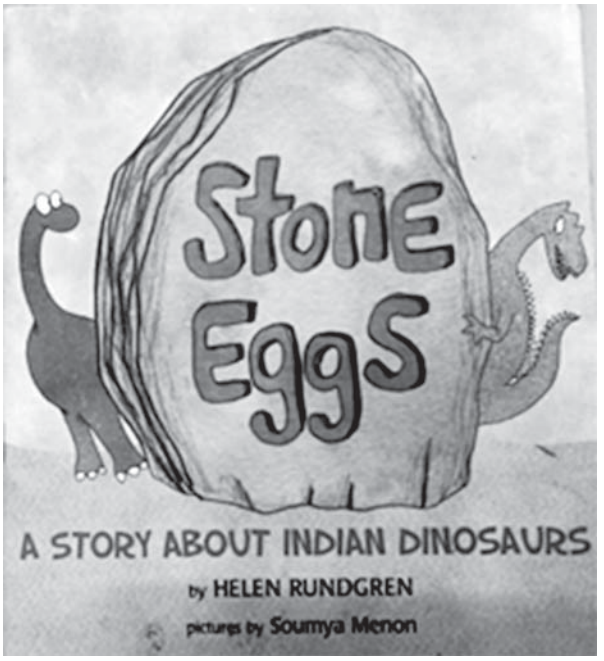

थे, किताबों में उन कविताओं के पात्र चिड़िया, तोता, Goose ढूँढ़ने लगे, उनपर बातें करने लगे। हरिवंशराय बच्चन की *नीली चिड़िया* और *बगुलों की पाँत* धीरे-धीरे घर पर आ गई। *सिंहासन बत्तीसी, पंचतंत्र, जातक कथाएँ,* आदि के साथ बच्चे सहज जुड़ पा रहे थे। हम घर के बड़े इन कविताओं और कहानियों को पढ़कर या गाकर सुनाते। इन कहानियों जैसी और कहानियाँ गढ़ते, और इन पात्रों की चर्चा बातों में भी होती।

जो चीज़ें यहाँ लिखी गई हैं, वह सब पाँच-छह वर्षों में हुई हैं। हाँ, ये एक अलग बात है कि वेदांत ने किसी-न-किसी रूप में कहानी, पुरानी बातें, मज़ेदार क़िस्से अमूमन सुने, और किसी लिखित सामग्री के साथ लगभग रोज़ कुछ-न-कुछ काम किया। कुछ दिन ऐसे भी रहे होंगे, जब इनमें से कुछ भी नहीं हो पाया होगा।

यह सबकुछ पूर्व-नियोजित तो था नहीं। फिर हुआ कैसे? मुझे लगता है, ऐसा इसीलिए सम्भव हो पाया, क्योंकि किताबें जीवन और दिनचर्या का हिस्सा बन गई थीं। नानी और नाना वेदांत को कभी पढ़कर सुनाते या ऐसे ही मन से कोई कहानी बताते। आख़िर रोज़ इतनी कहानी कहाँ से लाएँ! इसलिए हम सब, कुछ ऐसी कहानियाँ बना-बनाकर सुनाते, जो बच्चे जल्दी ही पकड़ लेते हैं। मैंने बच्चों को यह कहते हुए सुना है– ऐसी नहीं सच की कहानी बताओ! और इस तरह से हमारी कल्पनाशीलता को भी चुनौती मिली। एक उदाहरण लेती हूँ :

पिछले कुछ वर्षों से मैंने एक 'बिल्लीपुर' की खोज की है। यहाँ की बिल्लियाँ लगातार कहानियाँ बनाती हैं। यहाँ पर बड़ी-छोटी, मोटी-पतली, ऊँची-औसत ऊँचाई की और छोटी, सारी बिल्लियाँ हैं। उन्हें नहीं पता कि वो मोटी हैं या पतली, बड़ी हैं या छोटी। लेकिन हाँ, एक बिल्ली है। उसकी नज़र सब पर है, और उसे सब पता है! वही सबको कहानी पकाने के लिए सामान देती है। इस बिल्लीपुर की सारी कहानियाँ मीठी होती हैं।

बिल्लीपुर में सारी बिल्लियाँ बहुत व्यस्त हैं, क्योंकि दूर कहीं एक बच्चे ने किसी नई मीठी कहानी का आग्रह किया है। कहानियाँ सारी सच्ची हैं। वो घटती हैं, फिर बिल्लीपुर से निकलकर बच्चों तक आती हैं। कल रात ही एक कहानी बनी है– 'Fresh from the oven'... आओ, मैं सुनाती हूँ। बिल्लीपुर में दीवारें नहीं हैं। दो बिल्लियों ने आपस में कहा, "यहाँ हमारे भाई शेर नहीं आ सकते।" चार बिल्लियाँ जो थोड़ी दूर पर थीं, उन्होंने सुना, "यहाँ हमारे भाई शेर ज़रूर आएँगे।" यह सुनते ही ये चार बिल्लियाँ चकित हो गईं, और दोहराने लगीं, "यहाँ हमारे भाई शेर ज़रूर आएँगे।" आसपास की सारी बिल्लियों ने भी सुना। कुछ ने सुना कि भाई शेर अकेले आएँगे, वहीं कुछ ने सुना कि भाई शेर भूखे आएँगे। कुछ दूर धूप सेंकती बिल्लियों ने सुना कि भाई शमशेर आएँगे।...

इस तरह से हर दिन हम नई बातें बिल्लीपुर में पकाते हैं, और बस कहानियाँ गढ़ते हैं। जब मेरा कहानी बताने का मन नहीं करता, मैं

उसपर भी एक कहानी बना देती हूँ– "जब माँ थकी हो या उनका मन नहीं कर रहा हो, तब बिल्लीपुर में उनको एंट्री नहीं मिलती और वो कहानियाँ नहीं देख पातीं।"

कहानियों में दोहराव हो, विशेष आवाज़ें हों, सस्पेंस हो, बच्चों को भाएँ ऐसे पकवान हों, लोग हों, तब मज़ा आ जाता है। और इस मज़े-मज़े में बच्चे भी कहानी सुनाना और नई कहानी गढ़ना सीख जाते हैं।

एक कहानी है 'ऊँट और सियार' की। वेदांत ने यह कहानी नानी से कई बार सुनी। सुनते-सुनते वह सो गया। अकसर दोपहर को सोने से पहले और रात में वेदांत उसी कहानी को सुनाने की ज़िद करता। ऐसा भी होता है। बच्चों के जीवन में अनेक रंग होते हैं। कभी तो वे एक ही कहानी बार-बार सुनते हैं, और कभी नई-नई कहानियों का आग्रह करते हैं।

और तब एक दिन घर पर कहानी की पुस्तक आई। वेदांत को पढ़ना नहीं आता था, लेकिन पुस्तक देखकर, उसपर उँगली रखकर उसने छपी सामग्री 'ऊँट और सियार' की कहानी समझकर पढ़ ली! (इमर्जेंट लिटरेसी या अंकुरित साक्षरता के परिप्रेक्ष्य से देखें, यह कहा जा सकता है कि बच्चा 'प्रिटेंड रीडिंग' के चरण पर है।)

एक और वाक़या है। एक बार एक शृंखला के तहत टेलीविज़न पर डायनासोर की कहानियाँ आ रही थीं। इसी शृंखला में बताया गया कि डायनासोर लुप्त हो चुके हैं। इस बात से वेदांत बहुत दुखी हुआ। क़रीब चार साल का रहा होगा, बहुत रोया। कुछ दिनों बाद डायनासोर पर एक किताब मैं घर पर लाई। उसमें डायनासोर के जीवन के बारे में कई तथ्य थे। इन तथ्यों को मैंने उसे पढ़कर सुनाया। वेदांत अकसर इस किताब के चित्रों के माध्यम से डायनासोर से जुड़ी ऐसी बहुत सारी बातें बताने की कोशिश करता जो मैंने उसे पढ़कर सुनाई थीं।

बच्चे जो सुनते हैं, देखते हैं, अनुभव करते हैं, इन सभी से जीवन के बारे में एक समझ बनाते हैं। अगर इस उम्र में दिया हुआ साहित्य सटीक हो, तब बच्चे सामाजिक और भावनात्मक तौर से भी बढ़ पाते हैं।

यह भी कि हमारे घर पर किताबें, खिलौने, पेंसिल, मोबाइल, बच्चों की साइकिल, स्नैक्स का डिब्बा साथ-साथ रहने लगे थे। इसीलिए कभी किताबें उलट-पुलट कर देखी जातीं, कुछ देर में खिलौने खेले जाते, और फिर कुछ देर बाद नाना की गोद में बैठकर टेलीविज़न देखा जाता। दिनभर ऐसे ही गुज़र जाता।

स्कूल जाना शुरू हुआ, तब और भी किताबें आईं। लिखने का प्रयास पहले भी हुआ, पर अब अक्षर ज्ञान शुरू हुआ। संयोग से एक पुस्तक मेले में जाने का अवसर मिला। वहाँ एकलव्य, एनबीटी, तूलिका, आदि प्रकाशकों की अनेक किताबें मैंने ख़रीदीं। किताबों का नया भण्डार लेने में मेरे साथियों ने मदद की। अलग-अलग सन्दर्भों और थीम की पुस्तकें हमने चुनीं। उस समय मेरा बेटा चार-पाँच साल का रहा होगा। मैं क़रीब 30 किताबें लाई थी। वेदांत को किताबें

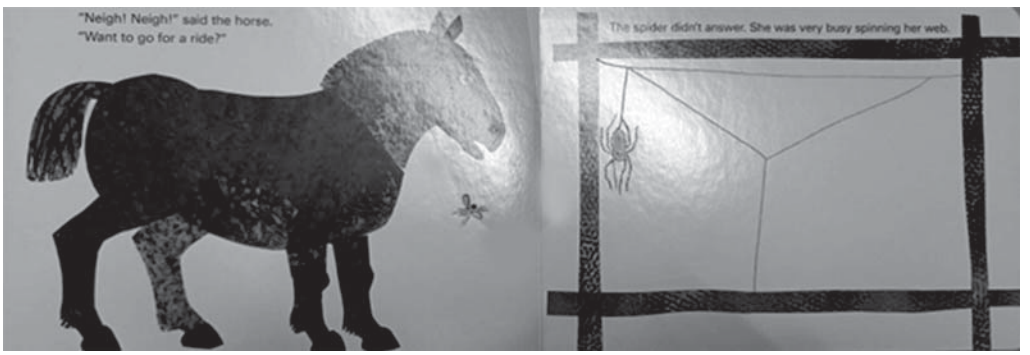

पढ़कर सुनाना मेरा रोज़ का काम था। आए दिन मैं नई-नई किताबें ख़रीद लिया करती थी।

इन सभी कामों का मज़ा तब आया जब एक दिन मैं किसी काम से दूसरे शहर में थी, और वेदांत ने एक कहानी पूरी पढ़कर मुझे फ़ोन पर सुनाई। तब वह 6 साल का था। एरिक कार्ले (Eric Carle) की *The Very Busy Spider.* इस कहानी की विशेषताएँ इस प्रकार से हैं :

1. कहानी में मक्खी, मकड़ी, घोड़ा हैं, जिनके चित्र भी दिए गए हैं। इन जानवरों के नाम वेदांत ने कई बार लिखे हुए देखे थे और ध्वनि-संकेतों का अन्तर्सम्बन्ध उसे पता था।

2. कहानी में दोहराव है। सभी जानवर मकड़ी से अपनी-अपनी आवाज़ में सवाल पूछते हैं, और उन्हें मकड़ी से एक ही तरीक़े का जवाब मिलता है– 'The spider didn't answer. She was very busy spinning her web'.

3. कहानी में बड़ी सीख है, पर बहुत सहज है यह कहानी।

4. मकड़ी जो जाला बुन रही है, पन्ने पलटने के साथ वह धीरे-धीरे बड़ा होता जाता है और बच्चे अपनी उँगलियों से जाले के चित्र को महसूस कर सकते हैं।

यह कहानी बच्चों को आकर्षित करती है। एक पूरी किताब पढ़ने का काम करके वेदांत में ख़ुद के प्रति अनोखा ख़ुशी का भाव जागा था। धीरे-धीरे इसी ख़ुशी और आत्मविश्वास में वेदांत ने कई किताबें पढ़ीं।

वेदांत ने कक्षा 1 तक देवनागरी लिपि लगभग सीख ली थी। वह सरल कहानियों को चित्रों की और हमारी मदद से पढ़ पाता था। जैसे– अट्टू-गट्टू : एक पारम्परिक कथा (चित्र: केजल मिस्त्री, एकलव्य प्रकाशन)। जहाँ तक मुझे याद है, वेदांत को हम तूलिका प्रकाशन की द्विभाषिक किताब Five Little Monkey / पाँच छोटे बन्दर (पुनर्कथन : जीवा रघुनाथ, चित्रांकन : हर्षा नागराजू), पढ़कर सुनाया करते थे। इस कहानी में भी दोहराव है। सिर्फ़ आँकड़े बदलते हैं, बाक़ी पूरा वाक्य ज्यों-का-त्यों ही दुहराया जाता है।

पाँच छोटे बन्दर, बैठकर, पेड़ पर,

ख़ुश थे बहुत, नदी वाले मगरमच्छ को छेड़कर।

चार छोटे बन्दर...

इस किताब को पढ़ने में वेदांत ने उत्साह दिखाया। वह लगभग पूरी किताब पढ़ भी लिया करता था।

घर पर हिन्दी में भी कहानी पढ़कर सुनाने का उपक्रम चलता रहा। जैसे– *अदिति और टेम्स नदी का ड्रैगन* (सुनीति नामजोशी, चित्रांकन :

शेफाली जैन, एकलव्य प्रकाशन), *गली है या चिड़ियाघर* (माला कुमार एवं मनीषा चौधरी, चित्रांकन : प्रिया कुरियन, प्रथम बुक्स), *पायल खो गई* (मुस्कान एवं एकलव्य का संयुक्त प्रकाशन), आदि। आज भी 'पढ़कर सुनाओ' की ज़िद लगातार रहती है। और हम ख़ुशी-ख़ुशी पढ़कर सुनाते हैं। और हाँ, कभी टाल भी देते हैं।

पिछले कुछ वर्षों में वेदांत ने कई किताबें पढ़ ली हैं। इनमें सत्यार्थ नायक की *Mahagatha: 100 Tales From The Puranas,* हैरी पॉटर की सीरीज़ के साथ-साथ रस्किन बांड की कुछ चुनिन्दा किताबें भी शामिल हैं। आजकल वेदांत को पढ़ते हुए देखती हूँ, तो चकित रह जाती हूँ। मुझे यक़ीन ही नहीं होता कि कोई इतनी तेज़ी से मोटी-मोटी किताबें पढ़ रहा है। मैं पढ़ी हुई पुस्तकों में से कुछ सवाल उससे पूछती हूँ। वह कुछ सवालों के जवाब दे देता है। जैसे– कहानी में अब तक क्या हुआ; इसके मुख्य पात्र कौन-कौन हैं; आदि। लेकिन यदि मैं पूछूँ, "उस बच्ची की उम्र क्या थी?" वेदांत ऐसे सवाल के जवाब में सिर्फ़ कहता है, "वो छोटी बहन थी, उम्र याद नहीं है।" फिर वो ये भी कहता है, "यह सब ज़रूरी जानकारी नहीं है।" इस पाठक के विपरीत, मेरी आदत धीरे-धीरे पढ़ने की है, और हर वाक्य पर मेरी नज़र होती है। मुझे बारीक़ी से पढ़ी हुई सभी बातें याद रहती हैं। पर हाँ, मैं कम पढ़ पाती हूँ।

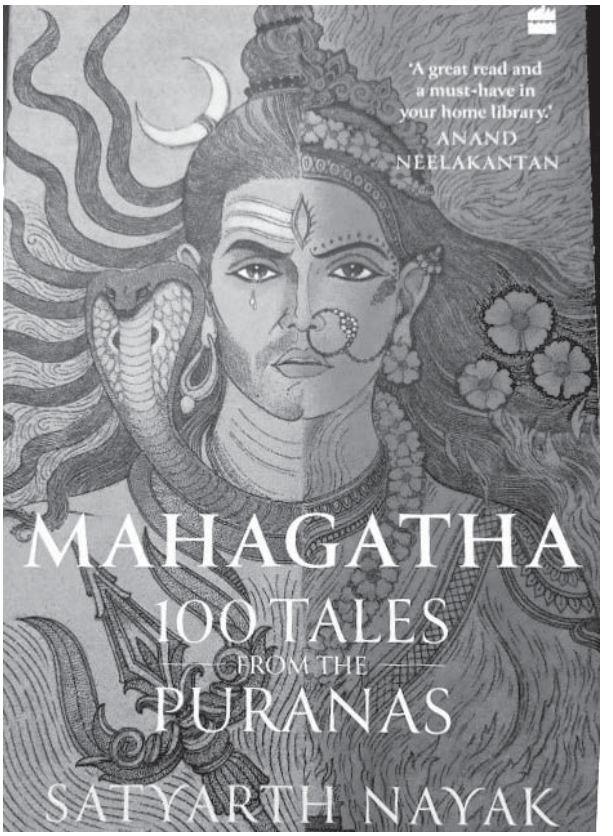

सच कहते हैं, हर पाठक अलग होता है।

अन्त में

समझ के साथ पढ़ना आज के युग में एक मूलभूत क्षमता है, क्योंकि यह हमें दूसरी कई क्षमताओं का विकास करने और नए ज्ञान को उजागर करने में भी मदद करती है। पढ़ना सीखने में लिखना, बोलना और सुनना शामिल है। जो कहानी सुनी, वह पढ़ने की कोशिश की। किताब से किसी को पढ़ते हुए देखा, उस किताब से ख़ुद चित्र बनाकर सभी को बताए। फिर खिलौनों से, दोस्तों से खेले, खेल पर कहानी सुनी, और यह सारे क्रियाकलाप चलते रहे। ये सब काम पूर्व-नियोजित नहीं, बल्कि जैसे-जैसे बच्चों का रुझान दिखा उस आधार पर।

इन सभी कामों में मेरी भूमिका महत्त्वपूर्ण थी, क्योंकि मुझे भी बाल साहित्य में रुचि है। और मैं, बच्चों के साथ बाल साहित्य की दुनिया का आनन्द लेने के लिए उतनी ही आतुर थी, जितना कि वेदांत। यहाँ पर घर के बड़े-बुज़ुर्ग सदस्यों का भी कम योगदान नहीं है। पुरानी कहावत सच ही है, बच्चे बड़े करने में पूरे गाँव की भूमिका होती है। शायद इसीलिए स्कूल में, कक्षा में, और यहाँ तक कि समाज में भी पुस्तकालय हो, यह बात होती है।

आज के ज़माने में बच्चों के लिए सबसे बड़ा तोहफ़ा किताबें हैं। किस बच्चे को कौन-सी किताब पसन्द आएगी, इसका पता बच्चों के साथ समय बिताकर ही लगाया जा सकता है। इसके साथ ही लोककथाओं जैसी कुछ 'क्लासिक' किताबें हैं, जो अमूमन बच्चों को भाती हैं।

किताबों को अलग से नहीं, बल्कि बच्चों के बाक़ी सामान के साथ रहने दें। फिर किताबों के साथ की अन्त:क्रिया बोझिल नहीं लगेगी। इससे किताबें बच्चों के जीवन का सहज हिस्सा बनेंगी। अमूमन हम सुनते हैं कि बच्चों को पढ़ना आएगा, तब हम किताबें ख़रीदेंगे। पर सच यह है कि बच्चे पढ़ना ही तब सीखेंगे, जब उनके इर्द गिर्द किताबें होंगी, उन्हें कोई पढ़कर सुनाएगा, आदि।

बच्चों के साथ काम करने के लिए दो बातों की ज़रूरत होती है। एक है विश्वास, और दूसरा धैर्य। विश्वास यह कि सभी बच्चे सीख रहे हैं, और धैर्य यह कि हम समय देंगे, जल्दबाज़ी नहीं करेंगे।

सन्दर्भ

1. हाशमी, सफ़दर, 'किताबें', *दुनिया सबकी : सफ़दर हाशमी की कविताएँ* (https://kavishala.in/sootradhar/safdar-hashmi/kitabem-safadara-hasami)
2. देवी, महाश्वेता, (2003), *क्यूँ-क्यूँ लड़की,* तूलिका प्रकाशन।
3. उत्साही, राजेश, *भालू ने खेली फ़ुटबॉल।*
4. Carle, Eric. (2011). *The Very Busy Spider. World of Eric Carle.*

सभी चित्र : निशा बुटोलिया

निशा बुटोलिया, अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय, भोपाल में अध्यापन कार्य कर रही हैं। वे शिक्षा का समाज शास्त्र और भाषा शिक्षण से जुड़े विषय पढ़ाती हैं। उन्होंने अपने कार्य की शुरुआत बतौर प्राथमिक शिक्षक की और फिर विभिन्न शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रमों को विकसित करने में योगदान दिया है। उनकी विभिन्न राज्यों में ज़िला एवं राज्य स्तरीय अधिकारियों के पेशेवर विकास कार्यक्रमों में भागीदारी रही है। पाठ्यपुस्तकों एवं अन्य पठन-पाठन सामग्रियों के विकास में इनकी विशेष रुचि है।

सम्पर्क : nisha.butoliya@apu.edu.in

सामाजिक विज्ञान की एक कक्षा

महमूद खान

सामाजिक विज्ञान की विषयवस्तु और पढ़ाई का एक मक़सद विद्यार्थियों को समाज में होने वाली घटनाओं की पड़ताल करना सिखाना और सवालों के ज़रिए उनके बारे आलोचनात्मक जागरूकता पैदा करना है। इसी मक़सद से, लेख में सामाजिक विज्ञान की अवधारणा 'समता और समानता' पर काम करने के लिए एक शिक्षण योजना की रूपरेखा प्रस्तुत की गई है, जिसमें गतिविधि-आधारित शिक्षण के लिए आज़माई गई गतिविधियों का दिनवार व उपसमूहवार विवरण शामिल है। इन गतिविधियों में, विद्यार्थियों को किसी पाठ की विषयवस्तु सुनाकर उनके विचारों व निजी अनुभवों को सुनना; गृहकार्य के रूप में विद्यार्थियों को उनके साथ घटी घटनाओं के बारे में लिखवाना; यदि इस बारे में कहीं कुछ पढ़ा हो उसे बताने को कहना; उपसमूहों में विषयवस्तु पढ़कर इनसे जुड़े सवालों के जवाब लेना; विषय से सम्बन्धित वीडियो क्लिप दिखाकर उनपर चर्चा करना; विद्यार्थियों से इस तरह के सवाल पूछना, जो सोचने-समझने के मौक़े बनाएँ और विद्यार्थियों को भी आलोचनात्मक सवाल बनाने के लिए प्रोत्साहित करना; आदि के अनुभव-आधारित ब्योरे शामिल हैं। -सं.

भूमिका

शिक्षकों के साथ सामाजिक विज्ञान विषय में पिछले कई वर्षों से काम करते हुए मैंने अनुभव किया है कि गतिविधि-आधारित शिक्षण की बात शिक्षकों को सही तो लगती है, लेकिन उन्हें यह भी लगता है कि स्कूल की कक्षा में बच्चों के साथ गतिविधियाँ करना मुश्किल होता है। इसलिए इस तरह से कार्य नहीं करवाया जा सकता। हमारी टीम को लगा कि हम ख़ुद कक्षा में जाकर गतिविधि-आधारित शिक्षण कराएँ। इससे हम शिक्षकों की मुश्किलों को समझ सकेंगे और उनसे इस बारे में कुछ ठोस बात कर पाएँगे। इसी बात को ध्यान में रखकर तय किया कि हम स्कूल में सामाजिक विज्ञान विषय पढ़ाने वाले शिक्षक के साथ मिलकर शिक्षण योजना बनाएँ और बच्चों के साथ शिक्षण कार्य करें। इस फ़ैसले के आधार पर, मैंने जयपुर शहर के एक राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय का चुनाव किया और शिक्षक के साथ कक्षा 7 में शिक्षण कार्य किया। इस लेख में इसी शिक्षण कार्य के दौरान हुए कुछ अनुभवों को प्रस्तुत किया गया है।

पहला दिन

कक्षा प्रक्रिया

कक्षा 7 पहली मंज़िल पर एक व्यवस्थित कमरे में बैठी थी। बच्चों के बैठने के लिए टेबल और स्टूल की व्यवस्था थी। कक्षा में नामांकित 18 बच्चों में से 16 उपस्थित थे। इन बच्चों में 7 लड़के और 9 लड़कियाँ शामिल थीं। पहला दिन होने के कारण और बच्चों को सहज करने के लिए आपसी परिचय किया गया। परिचय के बाद मैंने बच्चों से अपनी योजना साझा की। उन्हें बताया गया कि हम लोग अगले कुछ दिन *सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन* विषय के पाठ 1 (समानता) पर कार्य करेंगे। सामान्य बातचीत के बाद मैंने बच्चों से पूछा, "इस पाठ में एक

कहानी है, जिसमें 'समानता' विषय पर दो महिलाएँ आपस में विमर्श करती हैं। यह कहानी किसी को याद है क्या?" हर्षा नाम की लड़की ने हाथ उठाकर बताया, "मुझे याद है।" मैंने कहा, "सभी को एक बार कहानी सुना दीजिए।" हर्षा ने कहानी सुनाने की बजाय उसके बारे में बहुत संक्षिप्त जानकारी कक्षा में साझा की। इससे मुझे यह पता चला कि ज़्यादातर बच्चों को कहानी याद नहीं है।

मैंने बच्चों को यह कहानी सुनाई। सभी बच्चे बहुत तल्लीनता से कहानी सुन रहे थे। कहानी पूरी होने के बाद मैंने बच्चों से एक-एक कर तीन सवाल पूछे। पहला सवाल था, "कहानी में समानता की बात की जा रही थी। समानता से आप लोग क्या समझते हैं?" चार बच्चों ने हाथ खड़े किए। मैंने एक बच्चे को बताने का मौक़ा दिया। उसने जवाब में कहा, "सभी को समान अधिकार हों, तब समानता होती है।" हर्षा ने कहा, "अधिकारों की कोई बात नहीं है। लोगों ने ख़ुद असमानता बनाई है।" मैंने कहा, "मुझे लगता है कि असमानता प्रकृति की देन है, जबकि आप कह रही हैं कि यह लोगों की देन है। देखिए, हममें से कोई लम्बा, कोई छोटा, कोई पतला, मोटा, गोरा, और कोई काला है। समानता कहाँ है?" ज़्यादातर बच्चे मेरे तर्क से सहमत होते नज़र आने लगे, सिवाय हर्षा के। हर्षा ने कहा, "जिसे आप प्राकृतिक असमानता कह रहे हैं, वह विविधता है। लेकिन इस विविधता के कारण जब कुछ लोग दूसरों के साथ असमान व्यवहार करने लगते हैं, तब असमानता बढ़ती है।" इस चर्चा से कई बच्चे एकदम कटे हुए दिखाई दिए, या ये कह सकते हैं कि इस चर्चा से मुद्दा और अस्पष्ट हो गया। मैंने आगे बढ़ते हुए कहा कि अभी हम इस मुद्दे को कुछ और सवालों के सन्दर्भ से समझने का प्रयास करेंगे।

इसके बाद मैंने दूसरा सवाल पूछा, "आपके विचार से समानता के बारे में शंका करने के लिए कहानी की पात्र कांता के पास क्या पर्याप्त कारण हैं?" इस बार मेहुल ने कहा, "सर, कहानी में आई कई घटनाएँ ऐसी हैं, जिनके आधार पर कांता के मन में समानता को लेकर शंका हुई।" कुछ और बच्चों ने भी शंका के इन कारणों से सहमति जताई।

तीसरे सवाल में, मैंने असमानता के लिए जल्दी से कोई तीन कारण बताने को कहा। सौगत ने कहा, "जब कांता अपनी बीमार बेटी को डॉक्टर के पास दिखाने गई, वहाँ अमीर लोग, बिना लाइन में लगे, सीधे ही डॉक्टर के पास चले गए जबकि ग़रीब लोग लाइन में लगे थे।" हर्षा ने बताया, "कांता की सहेली ने जब उनकी बस्ती में गन्दगी की ओर ध्यान दिलाया था।" असमानता का तीसरा कारण बच्चों ने कांता की मालकिन के व्यवहार को माना। बच्चों के साथ हुई चर्चा के मुख्य बिन्दुओं को मैंने ग्रीन बोर्ड पर अंकित किया, ताकि ज़रूरत पड़ने पर उनका इस्तेमाल चर्चा में किया जा सके। मुख्य बिन्दु इस प्रकार थे :

- समानता-असमानता मन में होती है।
- अमीर-ग़रीब के बीच असमानता देखी जाती है।
- घरों में भी असमानता, ख़ासकर लड़के-लड़कियों के बीच, दिखाई देती है।

- सबको एक समान अधिकार हों, तब समानता होगी।
- लोगों ने ख़ुद ही असमानता बनाई है।
- जाति के कारण असमानता होती है और इसके कारण ही भेदभाव पैदा होते हैं।

दूसरी गतिविधि में, बच्चों को ख़ुद के कुछ ऐसे अनुभव सुनाने थे, जिनमें उन्होंने असमानता महसूस की हो। ज़्यादातर बच्चों ने स्कूल में महसूस होने वाली असमानता के उदाहरण प्रस्तुत किए। जैसे– स्कूल के प्रतिनिधि के तौर पर अकसर शिक्षक लड़कों को ही बाहर भेजते हैं, लड़कियों को नहीं; खेल खेलने के लिए लड़कों को खेल सामग्री दे दी जाती है, जबकि लड़कियों को कहा जाता है कि कमरे में बैठकर पढ़ाई करो, या फिर अगर कुछ खेलना ही है तो कमरे के अन्दर वाले खेल ही खेल लो; लड़के-लड़कियों को एक साथ खेलने से भी रोका जाता है; आदि।

जब सवाल किया गया कि स्कूल में समानता कहाँ-कहाँ दिखाई देती है; इसके निम्नलिखित जवाब आए :

- बिना किसी भेदभाव के कक्षा 8 तक के सभी बच्चों को सप्ताह में 2 दिन दूध पीने को दिया जाता है।
- प्रार्थना सभा में सभी बच्चे एक साथ बैठते हैं।
- सभी बच्चों के लिए एक जैसी यूनिफ़ॉर्म है।
- लड़के-लड़कियों को एक जैसी पढ़ाई करवाई जाती है।

अन्त में, गृहकार्य के लिए सभी बच्चों को उनके ख़ुद के या किसी दूसरे के साथ घटित हुई असमानता की ऐसी किसी घटना, या कहीं पर किसी घटना के सम्बन्ध में पढ़ा हो, उसे अपने शब्दों में लिखकर लाने को कहा गया।

दूसरा दिन

मैंने पिछले दिन किए कार्य को याद कराते हुए दिए गए गृहकार्य के बारे में पूछा, सब बच्चे एकदम चुप हो गए। पूछने पर गृहकार्य नहीं करके लाने के बारे में अलग-अलग कारण सुनने को मिले। अगले दिन सभी बच्चे गृहकार्य करके लाएँ, ये कहते हुए मैं आगे बढ़ गया।

आज पाठ्यपुस्तक से अंसारी दम्पति की कहानी को 4 उपसमूहों में पढ़ना था। साथ ही, सभी उपसमूहों को कहानी पर आपसी विमर्श करने के बाद तीन सामान्य सवालों के जवाब लिखने थे।

सवाल इस प्रकार थे :

1. यदि आप अंसारी परिवार के सदस्य होते, तो प्रॉपर्टी डीलर के नाम बदलने के सुझाव का उत्तर किस प्रकार देते?
2. क्या आपको अपने जीवन की कोई ऐसी घटना याद है, जब आपके मान-सम्मान या गरिमा को चोट पहुँची हो? और
3. आपको उस घटना के वक़्त कैसा महसूस हुआ था?

कमरे की बैठक व्यवस्था में थोड़ा परिवर्तन करते हुए 4-4 बच्चों के 4 उपसमूह बनाए गए। प्रत्येक उपसमूह ने कहानी को पढ़कर दिए गए सवालों के जवाब बड़े समूह में प्रस्तुत किए। उपसमूहवार सवालों के जवाब इस प्रकार आए :

उपसमूह 1

पहले सवाल का जवाब : "यदि हम अंसारी परिवार के सदस्य होते, तब प्रॉपर्टी डीलर के नाम बदलने के सुझाव पर उनसे पूछते कि यदि आपको मुस्लिम मोहल्ले में मकान किराए पर लेना होता, क्या आप अपना नाम अंसारी रखते? नहीं न! फिर हम अपना नाम क्यों बदलें? नाम हमारी पहचान है और हम अपनी पहचान नहीं बदलेंगे।"

दूसरे सवाल का जवाब : "हमारे घर में हमसे बड़े भाई-बहन से हमारी तुलना करके हमें कमतर बताया जाता है, जिससे हमें ठेस पहुँचती है।"

तीसरे सवाल का जवाब : "जब-जब ऐसा होता है, हमें बहुत बुरा महसूस होता है।"

उपसमूह 2

पहले सवाल का जवाब : "हम अपने नाम में परिवर्तन के लिए बिलकुल भी राज़ी नहीं होते, क्योंकि मकान किराए पर लेने के लिए बोला गया झूठ किसी-न-किसी दिन पकड़ा जाता ही!"

दूसरे सवाल का जवाब : समूह की एक छात्रा ने अपना निजी अनुभव बताते हुए कहा, "जब हमारा परिवार पहली बार जयपुर आया था, तब कई महीनों तक पिताजी को कोई काम नहीं मिल पाया। उस दौरान हमारी माँ के काम से ही घर चल रहा था। एक दिन घर पर आए हमारे एक रिश्तेदार ने जब पापा को औरत की कमाई खाने का ताना दिया, मेरी और मेरे पापा की गरिमा को बहुत चोट पहुँची। मैंने पापा से कहा कि ऐसे रिश्तेदार को फिर कभी अपने घर नहीं आने देना है।"

तीसरे सवाल का जवाब : "उस दिन की घटना से हम लोग कई दिनों तक असहज रहे, हमें अत्यधिक बुरा महसूस हुआ।"

उपसमूह 3

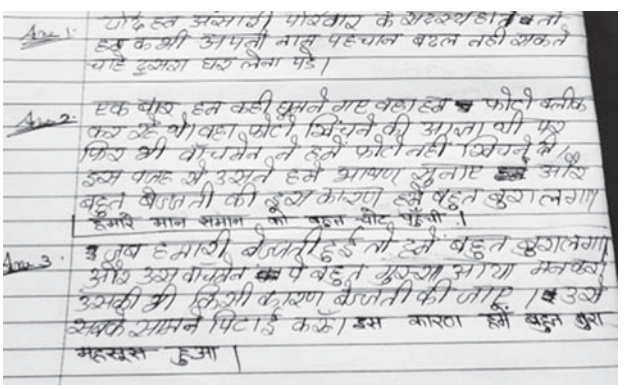

उपसमूह 4

पहले सवाल का जवाब : "नाम बदलने के सुझाव को नहीं मानते, और वैसे भी आजकल मकान मालिक किराएदार से उसकी फ़ोटो आईडी माँगते हैं।"

दूसरे सवाल का जवाब : "हमारे साथ घर में भी कई बार असमानता का व्यवहार होता है। जैसे– छोटे बच्चों को सभी पार्टियों में ले जाया जाता है, लेकिन हमें मना कर दिया जाता है। कभी हमें भी पार्टियों में लेकर जाना चाहिए।"

तीसरे सवाल का जवाब : "ऐसे मौक़े पर हमें बहुत बुरा लगता है।"

अन्त में, असमानता के दूसरे पहलुओं पर बात करते हुए मैंने इस बात पर बच्चों के साथ अपने विचार साझा किए कि समानता के सिद्धान्त का पालन करना क्यों ज़रूरी है। ये विचार इस प्रकार थे :

भारतीय संविधान सभी व्यक्तियों को समान मानता है। इसका अर्थ है कि देश के सभी व्यक्ति, चाहे वे पुरुष हों या स्त्री, किसी भी जाति, धर्म, शैक्षिक और आर्थिक पृष्ठभूमि से सम्बन्ध रखते हों, समान माने जाएँगे।

समानता को स्थापित करने के लिए कुछ सिद्धान्त संविधान में दिए गए हैं। मसलन,

1. कानून की दृष्टि में हर व्यक्ति समान है।
2. किसी भी व्यक्ति के साथ उसके धर्म, जाति, वंश, जन्म स्थान और उसके स्त्री या पुरुष होने के आधार पर भेदभाव नहीं किया जा सकता।
3. हर व्यक्ति सार्वजनिक स्थानों पर जा सकता है।
4. अस्पृश्यता का उन्मूलन कर दिया गया है।

शासन ने संविधान द्वारा मान्य किए गए समानता के अधिकार को दो तरह से लागू किया है :

1. कानून के द्वारा; और

2. सरकार की योजनाओं व कार्यक्रमों द्वारा सुविधाविहीन समाज और लोगों की मदद करके।

तीसरा दिन

तीसरे दिन मेरे साथ उस विद्यालय में सामाजिक विज्ञान पढ़ाने वाले शिक्षक भी थे। योजना के अनुसार, सबसे पहले बच्चों से गृहकार्य के बारे में जानकारी ली गई। सभी बच्चे गृहकार्य करके लाए थे। अच्छी बात यह रही कि बच्चे अपनी भाषा में लिखकर लाए।

इसके बाद मैंने जेंडर-आधारित भेदभाव वाला वीडियो बच्चों को दिखाया।

https://youtu.be/ltEBXbdIiVA (Tamanna || A Short Film on Gender Discrimination || 6 Mins – YouTube)

बच्चों ने वीडियो ध्यान से देखा। वीडियो दिखाने के बाद चर्चा के लिए सवाल था, "वीडियो में आई तमन्ना नाम की लड़की, लड़का क्यों बनना चाहती थी? या वो ऐसा क्यों कह रही होगी?" इस सवाल के जवाब के लिए मैंने कुछ बच्चों को रोका, ताकि मैं उन दूसरे बच्चों के विचार जान सकूँ जो अपनी बात रखने में झिझकते हैं। जैसे ही मैंने पूछा, "कौन-कौन बताएगा?" शेष बचे 14 बच्चों में से 8 ने हाथ खड़े किए। अच्छी बात यह लगी कि इन 8 बच्चों में 3 लड़कियाँ ऐसी थीं जो पिछले 2 दिनों में एक बार भी नहीं बोली थीं। मैंने उन तीनों लड़कियों के विचार लिए। तीनों ने अलग-अलग तरह के उदाहरणों से बताया कि घरों में लड़कियों के साथ असमान व्यवहार किया जाता है और लड़कों की बात ही मानी जाती है। जब मैंने पूछा, "समाज में लोग ऐसा क्यों करते हैं?" जवाब मिला, "लड़कियों को शादी के बाद दूसरे घर जाना होता है, जबकि लड़के घर में ही रहते हैं। इसीलिए लड़कियों को पराया धन भी कहते हैं।"

इसके बाद दो वीडियो और दिखाए गए। इन वीडियो में परिवार में जेंडर-आधारित https://youtu.be/EvwuRuTu8T8 और जाति-आधारित https://youtu.be/nCS7Rus4_–Y भेदभाव को दिखाया गया है। दोनों वीडियो बच्चों ने बहुत ध्यान से देखे। जब उनसे सवाल-जवाब किए गए, उन्होंने बहुत सटीक उदाहरणों के माध्यम से चर्चा में भाग लिया।

अन्त में सभी बच्चों को गृहकार्य के लिए निम्नलिखित सवाल दिए गए :

1. तमन्ना लड़का क्यों बनना चाहती थी? या वह ऐसा क्यों कह रही होगी?

2. विकास ने शान्ति को मारने की कोशिश क्यों की होगी?

3. क्या समान कार्य के लिए महिलाओं को पुरुषों की तुलना में कम वेतन देना चाहिए? यदि नहीं, तो क्यों? और

4. 'समानता' पाठ को पढ़िए और समझिए। साथ ही प्रत्येक बच्चा समानता से जुड़े कम-से-कम 3 सवाल बनाएगा।

चौथा दिन

मैंने बच्चों से गृहकार्य के बारे में पूछा। 9 बच्चों ने कहा, "सर, हमने गृहकार्य कर लिया है।" शेष 7 बच्चों ने कहा, "सर, गृहकार्य तो कर लिया था, मगर आज स्कूल में नो बैग डे होने की वजह से बैग नहीं लाए।" मैंने कहा, "जो बच्चे आज बैग नहीं लाए हैं, उनका काम कल देख लेंगे। जो आज बैग लाए हैं, उन बच्चों को सभी के सामने अपने उत्तर पढ़कर सुनाने हैं।"

पहले सवाल, तमन्ना लड़का क्यों बनना चाहती थी? या वह ऐसा क्यों कह रही होगी?, के जवाब मुख्य रूप से इस प्रकार आए :

- तमन्ना लड़का इसलिए बनना चाहती थी, ताकि उसके मम्मी-पापा उसको ज़्यादा चाहने लगें।
- घर में भाई और उसके बीच असमानता का व्यवहार किया जा रहा था। भाई के साथ अच्छा और उसके साथ ख़राब, इसलिए वह लड़का बनना चाहती थी।
- तमन्ना लड़का इसलिए बनना चाहती थी, क्योंकि आज के ज़माने में लड़के-लड़कियों के बीच भेदभाव किया जाता है।
- तमन्ना के भाई को घर में सभी ज़्यादा प्यार करते थे, जबकि उसको नहीं। इसलिए वो भी लड़का बनकर सबका प्यार हासिल करना चाहती थी।

इसी तरह से दूसरे सवाल के जवाब भी बच्चों की तरफ़ से मिले। लेकिन तीसरे और चौथे सवाल के जवाब बहुत कम बच्चे लिख पाए। इसलिए उनपर बच्चों के साथ कई उदाहरणों के माध्यम से चर्चा करके समझ बनाने का काम किया गया। इसका अभ्यास करवाने की दृष्टि से उपस्थित बच्चों के चार उपसमूह बनाए गए। प्रत्येक उपसमूह को समानता वाला पाठ पढ़कर उसकी विषयवस्तु से 8-8 सवाल बनाने को कहा गया। इसके बाद योजनानुसार प्रत्येक उपसमूह के सवालों को बड़े समूह में प्रस्तुत करवाया गया और उन्हें बोर्ड पर लिखा गया। उदाहरण के तौर पर, सवाल नीचे दिए गए हैं :

उपसमूह 1

- अंसारी परिवार को मकान किराए पर नहीं देने का मकान मालिक ने क्या बहाना बनाया?
- विकास ने अपनी बहन शान्ति को मारने का विचार क्यों बनाया?
- कांता को क्यों लगा कि क़तार में सभी समान हैं?
- कांता को एडवांस पैसा माँगने की ज़रूरत क्यों पड़ी होगी?
- शाम होते-होते कांता के मन में समानता को लेकर क्या शंकाएँ पैदा हुईं?
- कांता बीमार बेटी को पहले डॉक्टर के पास ले जाने की बजाय काम पर क्यों गई होगी?

उपसमूह 2

- हमारे भारत देश में सभी लोगों को समान माना जाता है, लेकिन क्यों?
- हमारे देश में लोकतंत्र होने के बावजूद भी जाति, धर्म, वंश, जन्म स्थान, आदि के आधार पर भेदभाव क्यों किया जाता है?
- कांता को ऐसा क्यों लगा कि देश में समानता नहीं है?
- अफ़्रीकी-अमरीकनों के साथ असमानता को लेकर एक विशाल आन्दोलन क्यों हुआ? उसका नाम क्या था?

- लोकतंत्र क्या है? समझाइए।
- समाज में लड़कों को लड़कियों से अधिक महत्त्व क्यों दिया जाता है?
- हमारे देश के अन्दर लड़कियों को कम क्यों पढ़ाया जाता है?
- हमारे देश में अमीरों को ग़रीबों से अधिक मान-सम्मान क्यों मिलता है?
- असमानता को किन्हीं दो उदाहरणों से बताएँ।

उपसमूह 3

- कांता को क्यों लगा कि सभी व्यक्ति समान हैं?
- विकास ने अपनी बहन शान्ति को क्यों मारा?
- तमन्ना ने अपने पेपर में लड़का बनने की बात क्यों लिखी?
- अंसारी परिवार ने अपना नाम क्यों नहीं बदला?
- स्कूल में राजपूत बच्चों की प्लेटें रसोई में क्यों रखवाई जाती थीं?
- समानता और असमानता में क्या अन्तर है?
- कांता को बेटी के बीमार होने पर भी काम करने क्यों जाना पड़ा?
- मकान मालकिन ने मकान ख़ाली होने पर भी अंसारी परिवार को मकान किराए पर क्यों नहीं दिया?

उपसमूह 4

- कांता को शंका क्यों हुई कि सब समान नहीं हैं?
- मुसलमान को किराए पर घर नहीं देने की क्या वजह रही होगी?
- विकास ने अपनी बहन शान्ति को मारने की कोशिश क्यों की होगी?
- स्कूल में नीची जाति और राजपूत बच्चों की थालियों को अलग-अलग रखने की व्यवस्था क्यों की गई होगी?
- कांता की बेटी की तबीयत क्यों ख़राब हुई होगी?
- कांता के घर के आसपास की तुलना में, वह जहाँ काम करने जाती थीं वहाँ साफ़-सफ़ाई अधिक थी। ये भेदभाव क्यों किया गया?

उक्त गतिविधि से मुझे समझ आया

जब स्कूलों में बच्चों की गृहकार्य की कॉपी देखते हैं या कभी किसी टेस्ट के सवालों पर नज़र जाती है, अधिकतर सवाल सूचनाओं पर आधारित दिखाई देते हैं। बच्चों से अगर कभी सवाल पूछने के लिए कहा जाता है, तब वे भी अधिकतर सूचना-आधारित सवाल ही शिक्षक से पूछते हैं। लेकिन इस कक्षा में बहुत-से ऐसे सवाल बच्चों से किए गए थे, जिनमें उनके लिए सोचने-समझने के अवसर ज़्यादा थे, और बच्चे उनके जवाब भी दे पा रहे थे। मैंने सवाल बनाने के काम में बच्चों को काफ़ी मशक़्क़त करते हुए देखा। कुछ बच्चों का कहना था कि सवाल शिक्षक बनाते हैं, बच्चों को सिर्फ़ उनके उत्तर ही देने होते हैं। इसलिए हमको सवाल बनाने में काफ़ी दिक़्क़त हो रही है। मैंने बच्चों से कहा कि आप लोग पाठ की विषयवस्तु को ध्यान से पढ़िए और उसको पढ़ते हुए मन में जो भी सवाल आएँ, उनपर आपस में चर्चा कीजिए। चर्चा के बाद भी यदि सवाल मन में बने रहते हैं, उन्हें लिखने का प्रयास करें। इससे आप सभी को पाठ की विषयवस्तु एवं प्रश्नों की प्रकृति समझने में मदद मिलेगी।

हालाँकि, बच्चों ने जो सवाल बनाए, वो रोज़ाना के सवालों से थोड़े अलग नज़र आए। यद्यपि, चारों उपसमूहों के अधिकतर सवाल क्या

और क्यों वाले नज़र आए, लेकिन कुछ सवाल गहरे विश्लेषण की माँग करते भी दिखे। बच्चों ने कुछ ऐसे सवाल भी बनाए जिनके उत्तर अलग-अलग हो सकते हैं। यानी, सवालों को खुला छोड़ा गया। बच्चों के बनाए हुए सवालों में अभी भी एप्लीकेशन वाला कोई सवाल नज़र नहीं आया। मुझे लगता है कि इसके लिए कक्षा में दो स्तरों पर काम करने की ज़रूरत होगी। पहला, शिक्षकों को गृहकार्य और टेस्ट पेपर में बच्चों से अलग-अलग तरह के सवाल पूछने होंगे; और दूसरे स्तर पर बच्चों से हर पाठ की विषयवस्तु से सवाल बनवाने का अभ्यास करवाना होगा।

पाँचवाँ दिन

पुनरावृत्ति

बीते 4 दिनों, कक्षा में जो कुछ बातचीत हुई, उसपर बच्चों से संक्षेप में मुख्य बातों को सुना गया। बच्चों ने कांता और सुजाता की कहानी पर आधारित बातचीत को अच्छे-से रखा, लेकिन वे अंसारी दम्पति की वास्तविक समस्या को पकड़ने में असफल रहे। ऐसे में, मुझे यह महसूस हुआ कि इस मुद्दे पर बात कुछ अनसुलझी-सी रह गई है। अंसारी दम्पति के मुद्दे पर संक्षेप में एक बार फिर से बातचीत की गई।

इसके बाद फ़ौरी तौर पर बच्चों से निम्नलिखित सवालों के माध्यम से चर्चा की गई :

1. कांता ने हॉस्पिटल में ऐसा क्या देखा जिससे वह हैरान हो गई?
2. लोगों ने लोकतांत्रिक सरकार चुनना क्यों पसन्द किया?
3. क्या आज भी दलितों के साथ भेदभाव होता है?
4. जाति महत्त्वपूर्ण होती है या नहीं? अपने उत्तर के पक्ष में तर्क दीजिए।
5. मानवीय गरिमा से आप क्या समझते हो? ओम प्रकाश वाल्मीकि और अंसारी दम्पति के साथ ऐसा क्या हुआ कि उनकी गरिमा को ठेस पहुँची?
6. यदि आप ओम प्रकाश वाल्मीकि और अंसारी दम्पति की जगह होते, आप क्या करते?

उक्त सवालों की चर्चा में सामने आया कि बच्चे जाति वाले सवाल पर एकदम उलझे हुए हैं। ज़्यादातर बच्चे जाति को महत्त्वपूर्ण मानते

समता एवं समानता के भेद पर आधारित वीडियो देखते बच्चे।

हैं। जब उनसे पूछा गया, यह क्यों महत्त्वपूर्ण है? इसके जवाब में ज़्यादातर बच्चे बोले कि शादी के लिए जाति का पता होना ज़रूरी है।

एक बच्चे ने कहा, "मैंने कुछ लोगों से सुना है कि ईश्वर केवल इंसान पैदा करता है, जाति नहीं बनाता।"

मैंने पूछा, "फिर जाति कौन बनाता है?"

उसने जवाब दिया, "जाति इंसानों की देन है।"

मैंने फिर पूछा, "यदि यह इंसानों की देन है फिर शादी के लिए जाति का पता होना क्यों ज़रूरी होना चाहिए?"

इस बार इन बच्चों ने कहा, "सर, एक जैसे काम करने वाले लोग एक साथ ठीक से रह पाते हैं, इसलिए शादी अपनी जाति में ही करते हैं।"

मैंने कहा, "ये सही बात है कि ज़्यादातर लोग शादी-ब्याह अपनी जाति में ही करते हुए दिखाई देते हैं। लेकिन मैं ऐसे बहुत-से लोगों को जानता हूँ जिन्होंने दूसरी जाति में शादी की है।"

अकसर कक्षा में चुप रहने वाली एक लड़की बोली, "सर, वो सब पढ़े-लिखे और पैसे वाले लोग होंगे।"

मैंने पूछा, "इसका मतलब है, यदि लोग पैसा अधिक कमाने लगें, तब उनके लिए जाति महत्त्वपूर्ण नहीं होती?"

बीच में ही राहुल बोल पड़ा, "शाहरुख ख़ान की पत्नी गौरी हिन्दू है। इन्होंने जाति तो छोड़ो, धर्म की भी परवाह नहीं की।"

समय को ध्यान में रखते हुए यहाँ मैंने जाति के उद्भव पर संक्षिप्त बात रखी। मैंने बच्चों को बताया कि कैसे खेती की शुरुआत और लोगों के स्थाई निवास से नए-नए काम उभरे, और फिर उन अलग-अलग कामगार समूहों की पहचान उनके काम से होने लगी। यह पहचान कालान्तर में जाति के रूप में हमारे सामने आई। जो पहचान कभी कर्म-आधारित थी, वह धीरे-धीरे जन्म-आधारित हो गई। इसकी वजह से आज हमारे समाज में कई तरह के भेदभाव होते हैं। हालाँकि, लोकतांत्रिक समाज ने अपने लिए आधुनिक मूल्य चुने और अपने संविधान में उनको महत्त्वपूर्ण स्थान दिया। इन मूल्यों के उपयोग से आज हम एक समता-आधारित समाज बनाने की तरफ़ क़दम बढ़ा पा रहे हैं। आज के समय में कई तरह के जातीय बन्धन टूटने लगे हैं।

इसके बाद मैंने कहा कि अब हम समता और समानता पर अपनी समझ बनाने का काम करेंगे। आइए, इसके लिए हम दो छोटे-छोटे वीडियो देखते हैं।

https://youtu.be/nCS7Rus4_–Y

https://youtu.be/F9CLFiPnOd8 – A Short Video 'The Divide' Social Experiment.

वीडियो के अन्त में सभी बच्चों के साथ निम्नलिखित चर्चा की गई :

1. दोनों वीडियो देखने से बच्चों को जो कुछ समझ आया, उसको सभी से साझा किया गया।
2. समता और समानता के बीच के अन्तर पर उदाहरणों के माध्यम से बात की गई।
3. आरक्षण का क्या महत्त्व है? यह होना चाहिए या नहीं? इसपर भी बच्चों के विचार लिए गए।

इस पाँच-दिवसीय शिक्षण अभ्यास के निष्कर्ष

1. शिक्षण योजना बनाकर शिक्षण करने से शिक्षण का फ़्लो सही रहता है। पहले और दूसरे दिन के काम को एक दिन में भी करवाया जा सकता है।
2. पाठ के शिक्षण में लोकतंत्र पर अपेक्षाकृत कम बात हुई। हालाँकि,

समता और समानता जैसे मुद्दे पर काम करने के लिए लोकतंत्र की समझ पर यदि ठीक से बात हो गई होती, तब शायद बच्चों को समता और समानता की अवधारणा पर और बेहतर एवं स्पष्ट समझ बनाने में मदद मिलती।

3. संवैधानिक मूल्यों और दैनिक जीवन के व्यवहार में बच्चों को कोई तालमेल नज़र नहीं आता। ऐसे में शिक्षक के सामने बड़ी चुनौती यह समझा पाना होती है कि हम सब बराबर हैं।

4. भारतीय समाज में जातियों की महत्त्वपूर्ण भूमिका दिखाई देती है। यह एक सच्चाई है। जाति आम आदमी की रोज़मर्रा की ज़िन्दगी को सीधे-सीधे प्रभावित करती नज़र आती है, फिर चाहे मसला बच्चों की शादी-ब्याह का हो, या खान-पान, या वोट की राजनीति का हो। ऐसे में, जाति के उद्भव और उसके सामाजिक प्रभावों पर यदि ठीक से समझ बनाई जाए, तभी शायद बच्चे आधुनिक लोकतांत्रिक मूल्यों को आत्मसात् कर सकते हैं। नहीं तो सामाजिक मूल्यों और संवैधानिक मूल्यों के बीच बच्चों को विरोधाभास ही नज़र आता रहेगा।

5. शिक्षण योजना में शामिल की गईं सभी वीडियो क्लिप बच्चों को समता एवं समानता जैसे मुद्दों को ठीक से समझाने में मददगार साबित हुईं।

सभी चित्र : महमूद ख़ान

महमूद ख़ान पिछले दो दशक से शिक्षा के क्षेत्र में अध्यापन एवं प्रशिक्षण कार्य में सक्रिय रहे हैं। वर्तमान में अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, जयपुर में बतौर सामाजिक विज्ञान रिसोर्स पर्सन कार्यरत हैं।

सम्पर्क : mahmood.khan@azimpremjifoundation.org

विज्ञापन के ज़रिए सम्प्रेषण कला और सामाजिक सोच का विकास

प्रतिभा शर्मा

कक्षा की अपनी गति होती है। कई बार हम स्वाभाविक रूप से पढ़ते-पढ़ाते कुछ महत्त्वपूर्ण मुद्दों पर पहुँच जाते हैं। इस मौक़े से भागने की बजाय, इसका इस्तेमाल सीखने की प्रक्रिया को रोचक व बेहतर बनाने के लिए किया जा सकता है। लेखिका की कक्षा में भी ऐसा ही हुआ। कहानी से बढ़ते-बढ़ते बात विज्ञापन पर जा पहुँची और फिर विज्ञापन के अर्थ, ज़रूरत, समझ, उपयोग, आदि पर चर्चा की तरफ़ मुड़ गई। इस प्रक्रिया में बच्चों की विज्ञापन के बारे में समझ बनी, और स्वास्थ्य, सुन्दरता सहित कई मुद्दों पर अच्छी चर्चा भी हुई। साथ ही, बच्चों ने ख़ुद विज्ञापन बनाते हुए अच्छे सम्प्रेषण की समझ भी विकसित की। -सं.

अकसर कहा जाता है कि सीखने-सिखाने की प्रक्रिया में लचीलापन हो, तब सीखना आसान हो जाता है। शिक्षण कार्य योजना लचीली होनी चाहिए, इस सैद्धान्तिक बात को मैंने अपनी कक्षा में फलित होते देखा। कार्य योजना कहानी सुनाने की थी, जिसमें कक्षा 7 की कहानी 'मिठाईवाला' पर काम किया जा रहा था। कहानी पर बातचीत करते हुए अचानक योजना में बदलाव तब आ गया, जब बच्चों से की जा रही यह बातचीत वस्तुओं को बेचने के तरीक़ों की ओर मुड़ गई। मौक़ा था, फेरीवाले अपनी वस्तुओं को जिस प्रकार बेचते हैं, उनके बेचने के तरीक़े का अभिनय करने का। यह काम आगे बढ़ने लगा और बाद के दिनों में 'विज्ञापन' शीर्षक पर काम करने की योजना बनाई गई। इस योजना में सीखने के प्रतिफल 'विभिन्न स्थानीय सामाजिक मुद्दों एवं प्राकृतिक घटनाओं के प्रति तार्किक प्रतिक्रिया, विभिन्न सामाजिक व संवेदनशील मुद्दों / विषयों जैसे– धर्म, रंग, जेंडर, रीति-रिवाजों के बारे में तार्किक समझ की अभिव्यक्ति' को चुना गया। 'मिठाईवाला' पाठ के कुछ चुनिन्दा संवेदनशील मुद्दों, मसलन, फेरीवालों के जीवन पर ऑनलाइन शॉपिंग का क्या फ़र्क़ पड़ा है; लोगों की फेरीवालों के प्रति क्या राय है; वर्तमान समय में लोग फेरीवालों से डरने क्यों लगे हैं; आदि, पर चर्चा से शुरू प्रक्रिया अब 'विज्ञापन' सीखने में बदल रही थी। इसका विस्तार संवैधानिक मूल्यों से जुड़ी चर्चा और विमर्श को भी ध्यान में रखकर किया गया।

कक्षा में चर्चा शुरू हुई। बच्चों से पूछा गया कि फेरीवाले / दुकानदार कौन-सी चीज़ें आवाज़ लगाकर बेचते हैं। बच्चों ने चूड़ी, कबाड़, सब्ज़ी, फल, समोसे, भूँगड़े (सिके चने), गुड़िया के बाल, आइसक्रीम, पलंग, ऊन, कपड़े, आदि जैसी कई चीज़ों पर बात की। एक बच्ची ने बताया कि कुछ लोग बालों के बदले जीरा भी देते हैं। मेरी जिज्ञासा के बाद उसने बताया कि फेरीवाले सिर के टूटे हुए बालों के बदले जीरा (एक मसाला), कप, मग, खिलौने, आदि देते हैं। यह किसी एक चीज़ के बदले दूसरी चीज़ देने का मामला था। मैंने ऐसे और उदाहरण जानने चाहे तो बच्चों ने कुछ और उदाहरण दिए। मसलन, टूटे कबाड़े

चित्र : प्रशांत सोनी

के बदले सब्ज़ी, लोहे के पुराने सामान के बदले फल-फूल, पुराने कपड़ों के बदले दरी, चादर, आदि। बच्चों ने बताया कि गाँव में महिलाएँ अनाज के बदले ज़रूरत का सामान भी लेती हैं। एक बच्ची ने यह भी बताया कि हम आसपड़ोस में भी ऐसे लेन-देन करते हैं। जैसे– हमारे खेत में आलू की पैदावार हुई है और किसी पड़ोसी के खेत में कोई और चीज़ की, तब हम उनसे अदला-बदली कर लेते हैं। यह बात भी हुई कि इस अदला-बदली या वस्तु के बदले वस्तु, इस प्रकार किए गए आदान-प्रदान को 'वस्तु विनिमय' कहा जाता है। गतिविधि को आगे बढ़ाते हुए बच्चों से कहा गया कि उन्हें अब दुकानदार का अभिनय करते हुए अपनी वस्तु बेचने के लिए ग्राहकों को लुभाने की गतिविधि करनी है। बच्चों ने ख़ुशी से गाकर, चिल्लाकर, लय में कुछ ख़ास तरीक़ों से वस्तुएँ बेचने का अभिनय किया। यह उनकी अभिनय कला को भी बढ़ा रहा था। अब इस सबको लिखने की बारी थी। सभी ने अपने संवादों को लिखा।

कक्षा ख़त्म करने से पहले बच्चों को अगली कक्षा के लिए कुछ रैपर, पेपर कटिंग, आदि लाने का काम दिया गया। जब अगले दिन कक्षा शुरू हुई, हर बच्चा कुछ-न-कुछ लेकर कक्षा में पहुँचा। कुछ बच्चे टॉफ़ी, कुरकुरे, बिस्किट, आदि के रैपर लाए, वहीं कुछ ने विज्ञापनों के पैम्फ़लेट भी जुटाए। मैं भी अपनी तैयारी के साथ कक्षा में पहुँची थी। तैयारी यह थी कि पहले अख़बार में आए विज्ञापनों पर बात करूँगी, फिर कुछ लोकप्रिय विज्ञापनों को गाकर या ऑडियो से सुनाऊँगी। उत्साह के चलते कक्षा में बहुत शोरगुल था, सो मैंने सभी को 2 मिनट ध्यान लगाने के लिए कहा और कक्षा को व्यवस्थित किया। इसके बाद रैपर और पैकेट के रंग व उनके ऊपर लिखी पंक्तियों पर बातचीत शुरू हुई।

मैं : "अच्छा, इनपर इतने सुन्दर रंग और आकर्षक पंक्तियाँ क्यों लिखते होंगे?"

विक्रम : "ताकि चीज़ें अच्छे-से बिकें।"

मैं : "अच्छे-से बेचना, मतलब?"

विक्रम : "ज़्यादा पैसे कमाना।"

शिक्षिका : "क्या हम साधारण रंगों और तरीक़ों से ज़्यादा नहीं कमा सकते?"

राधिका : "गहरे (चटकीले) रंग और ध्यान खींचने वाले वाक्य हमको अपनी तरफ़ खींचते हैं।"

मैं : "हाँ, सही कहा! ज़्यादा बिक्री के लिए ज़्यादा आकर्षक और चटकीले रंगों का प्रयोग करके पैकेट या रैपर बनाए जाते हैं। ये विज्ञापन का ही एक तरीक़ा है। जैसा हमने कल की कक्षा में किया था, अपनी-अपनी चीज़ों को बेच रहे थे, है न?"

बच्चे : "हाँ दीदी, जैसे– 'बस 2 मिनट' (मैगी)। इससे लोग सबसे ज़्यादा मैगी की ख़रीददारी करते हैं और '2 मिनट' सुनते ही जान जाते हैं कि यह मैगी का विज्ञापन है।"

मैं : "तुमने सही बिन्दु उठाया। इससे उपभोक्ता (वस्तु ख़रीदने वाले), वस्तु (उत्पाद) ख़रीदने के लिए प्रेरित होते हैं। पता है, अभी प्रतियोगिता का युग है और सबको बिक्री बढ़ाने के लिए कुछ-न-कुछ प्रयास और प्रचार भी करना होता है। आप बता सकते हैं, वे कौन-से तरीक़े हैं जिनसे कोई दुकानदार अपनी बिक्री बढ़ा सके?"

विष्णु : (हँसते हुए) "ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाकर अपनी वस्तु को बेचे।"

राजवीर : "दीदी, जैसे रेडियो, टेलीविज़न में विज्ञापन आते हैं, वैसे ही कुछ घोषणा या नारे लगाकर बेच सकते हैं।"

मैं : "सही है। जैसे– वाशिंग पाउडर निरमा का विज्ञापन सुना है तुमने?"

बच्चों से कुछ : विज्ञापन गाने के लिए कहा गया।

कुछ बच्चे : (एक साथ) "घड़ी... पहले इस्तेमाल करें फिर विश्वास करें।"

मैं : "हाँ! मैं भी कुछ बोलती हूँ। 'वाशिंग पाउडर निरमा, वाशिंग पाउडर निरमा। दूध-सी सफ़ेदी निरमा से आए, रंगीन कपड़ा भी खिल-खिल जाए।' इसमें क्या ख़ास बात है?"

बच्चे : "दीदी, इसमें कपड़ों के एकदम साफ़ होने की बात है। सफ़ेद कपड़े एकदम साफ़ हो जाते हैं।"

मैं : "अब तुम अपने-अपने पैकेट और रैपर निकालो। हम उनपर बात करते हैं।"

यहाँ से हमने विज्ञापन और उनमें निहित प्रतीकों पर बातचीत शुरू की। विज्ञापन की भाषा अर्थ का एक नया स्तर गढ़ती है। यह किसी ख़ास भाव, संकेत अथवा जानकारी के माध्यम से दुनिया में अपना वर्चस्व स्थापित करने अथवा ख़रीद-बिक्री के अवसरों को खोलती है। विज्ञापन पर आगे बढ़ती हुई बात अब साबुन की ओर मुड़ गई और 'लाइफ़ब्वॉय है जहाँ, तन्दुरुस्ती है वहाँ' नारे पर चल निकली। इस उदाहरण से कक्षा में साफ़-सफ़ाई पर बातचीत शुरू हुई। इन पंक्तियों की प्रतीकात्मकता पर बातचीत करते हुए विद्यार्थियों को अपने विचार रखने को प्रेरित किया। इस प्रक्रिया में बच्चों ने कई वैज्ञानिक पक्षों पर भी ध्यान केन्द्रित किया। सलाह-मशविरा करते हुए गतिविधि विमर्श-प्रक्रिया तक गई, जिसमें एक विद्यार्थी का सवाल सभी को और अधिक सोचने पर मजबूर कर रहा था। सवाल था, सिर्फ़ लाइफ़ब्वॉय से ही तन्दुरुस्त रह सकते हैं क्या? सवाल से मुझे भी अगले काम की योजना बनाने में मदद मिलने लगी। मैं ख़ुश थी कि बच्चे तर्कपूर्ण चिन्तन की ओर जा रहे हैं। आगे हम इसी तरह का विमर्श अपनी कक्षा में करने वाले थे। अगले दिन की कक्षा में मैंने बच्चों के द्वारा लाए गए 'फेयर एण्ड लवली' के विज्ञापन को बातचीत का आधार बनाया। मैंने पहले ही तय कर लिया था कि आज की चर्चा में, मैं संवैधानिक मुद्दों (समानता, स्वतंत्रता, आदि) को शामिल करूँगी और कुछ धारणाओं व रूढ़ियों तक भी जाऊँगी। बात इस प्रश्न से शुरू हुई कि फेयर एण्ड लवली से क्या होता है?

विकास : "दीदी इसको लगाने से गोरे होते हैं।"

मैं : "पक्का है क्या?"

विक्रम : "हाँ दीदी!"

मैं : "तब फिर हम भालू, भैंस, कौवे और कोयल को इससे गोरा बना सकते हैं क्या?"

बच्चे : (सभी हँसते हुए) "ऐसा थोड़ी होता है।"

मैं : "सोचना चाहिए, अगर ऐसा होता तो सब गोरे हो जाते! गोरे होने से क्या हो जाएगा?"

विकास : "सुन्दर लगते हैं।"

मैं : "सुन्दर होना क्या है? मतलब सिर्फ़ गोरा होना है क्या?"

साहिल : "हाँ! गोरे होने से ही तो अच्छे लगते हैं।"

मैं : "मतलब जो व्यक्ति गोरा नहीं है, वह सुन्दर और अच्छा इंसान नहीं है क्या? सोचो!"

रेणुका : "नहीं, ऐसा तो नहीं है। दूसरे भी अच्छे हो सकते हैं।"

मैं : "हम कैसे तय करते हैं कि ये अच्छा है या ये बुरा है?"

राधिका : "जैसे कोई सच बोलता है, दूसरों की मदद करता है, ईमानदार रहता है, वो अच्छा और सुन्दर है।"

मैं : "यानी कि ये उसके गुणों से ही तय होता है न! बाक़ी सब भी बताओ।"

बच्चे : (सहमति बनाकर) "हाँ, सुन्दरता और अच्छा होना गुणों से ही होगा।"

अब इस चर्चा को न्यूज़पेपर में आने वाले विज्ञापन 'वर चाहिए, वधू चाहिए' शीर्षक से जोड़कर विमर्श किया गया। ये विज्ञापन लेना इसलिए तय था क्योंकि समाज की अतार्किक धारणाओं पर बच्चों को तार्किक सोच के लिए प्रेरित करना था।

मैं : "इस विज्ञापन में आपने क्या पढ़ा है?"

तनु : "दीदी, गोरी लड़की शादी के लिए चाहिए।"

मैं : "क्या महिलाओं का गोरा होना अत्यधिक ज़रूरी है?"

ख़ुशबू : "हमारे यहाँ हमने देखा है कि चाहे लड़का (वर) काला हो, पर उसे लड़की (वधू) गोरी ही चाहिए।"

मैं : "ऐसा नियम किसने बनाया होगा?"

चित्र : प्रशांत सोनी

ख़ुशबू : "दीदी! ये तो नहीं पता, पर सब ऐसा ही मानते और कहते हैं।"

मैं : "क्या हमें भी इस सोच को मान लेना चाहिए?"

ख़ुशबू : "नहीं दीदी!"

मैं : "आपको कैसा लगता है इस तरह की बातें सुनकर?"

राजवीर : "रंग तो अपने हाथ में नहीं है। जो जैसा है वैसा ही अच्छा है, क्योंकि प्रकृति ने हमको एक अलग पहचान दी है।"

मैं : "राजवीर ने अच्छी बात बताई है। हमें सोचना पड़ेगा कि हम इस असमानता वाली सोच को मानते चलें या इसे दूर करें?"

सपना : "इसे दूर करने के लिए हमको आपस में और साथ ही अपने घर में बड़े-बूढ़ों से भी बात करनी चाहिए।"

मैं : "क्या बात करने से सब सही हो जाएगा?"

सपना : "इतनी जल्दी नहीं होगा दीदी!"

मैं : "और क्या किया जा सकता है जिससे सब सम्मान से और बिना भेदभाव के समानता के साथ जी सकें?"

राजवीर : "सब पढ़ेंगे तो उनकी सोच बदल सकती है।"

मैं : "हाँ, यह मुद्दा सामाजिक असमानता की साफ़गोई से पैरवी करता है। हमें इन तरीक़ों पर बातचीत करनी होगी और जहाँ भी ऐसे मुद्दे सुनने को आएँ, उनपर सही तर्क के साथ आगे बढ़ना होगा।"

एक और उदाहरण जो मैंने दिया था, वह 'लक्ष्मी धन वर्षा यंत्र' का था। इस विज्ञापन में पैरवी की गई थी कि इस यंत्र को ख़रीदने से व्यक्ति धनवान हो जाता है। इसी सन्दर्भ पर यह बातचीत शुरू हुई कि फिर किसी को कोई काम करने की ज़रूरत होगी या नहीं। बच्चों ने इसका खण्डन करते हुए कहा कि बिना मेहनत किए या बिना काम पर जाए कोई व्यक्ति धनवान नहीं हो सकता, काम तो करना ही पड़ेगा! पुरज़ोर तरीक़े से इस बात का दबाव कक्षा में नज़र आया कि काम नहीं किया तो कुछ नहीं मिल सकता। सबमें काम ही मुख्य है।

आख़िर में हमने चर्चा की कि इन विज्ञापनों में कुछ घटिया तथ्य भी साझा हो रहे हैं। मसलन, यह विज्ञापन कि 'इसकी साड़ी मेरी साड़ी से सफ़ेद कैसे?' या 'उसका घर मेरे घर से बेहतर कैसे?' ऐसे विज्ञापनों के औचित्य पर हमें ध्यान देना चाहिए। एक तरफ़ हम बराबरी और समरसता की बात करते हैं, वहीं ऐसे विज्ञापन ईर्ष्या, जलन जैसे भाव दर्शाते हैं और एक बेतुकी प्रतिस्पर्धा के लिए मंच बनाते हैं। बात हुई कि ऐसे कथन जो तर्क की कसौटी पर ख़रे न हों, उनपर अपनी अस्वीकार्यता भी जतानी चाहिए तभी हम शिक्षित और अच्छे इंसान बन पाएँगे। सबको ये जानकारी होनी चाहिए कि यदि कोई विज्ञापन समाज को भ्रमित करता है, उसकी शिकायत हम उपभोक्ता मंच पर कर सकते हैं। अगले दिन हमने कक्षा में कुछ रचनात्मक विज्ञापन बनाने की चुनौती रखी। हमने पहले कुछ विज्ञापन बच्चों को दिखाए और उनपर चर्चा करते हुए कहा कि सभी बच्चे अपने-अपने विज्ञापन बनाएँ। सभी बच्चों ने रंग-बिरंगे विज्ञापन बनाए और कक्षा में प्रदर्शित किए। बच्चों ने रोज़मर्रा की ज़रूरत से लेकर मकान बनाने के लिए ज़रूरी सामान, कक्षा के लिए उपयोगी पेंसिल जैसी चीज़ों, सड़क पर चलते समय सुरक्षा नियमों, आदि से सम्बन्धित कई विज्ञापन बनाए। बच्चों द्वारा बनाए गए विज्ञापन क़ाबिल-ए-तारीफ़ थे। उनके अपने नारे सोच और तर्क के साथ वस्तुओं को ख़रीदने की पैरवी करते नज़र आ रहे थे। कहीं बिरला सीमेंट की जगह बिरला ईंट ने ले ली थी, कहीं लेडीज़ क्लॉथ ने धूम मचा दी थी और कहीं चने बेचने वाला विज्ञापन में आवाज़ लगाता दिख

चित्र : प्रशांत सोनी

रहा था। कहीं सेलो टेप एक के साथ एक फ़्री मिल रहा था, कहीं होली के अवसर पर स्कूटी का धमाका हो रहा था। इस तरह, कक्षा में एक अलग तरह का सुखद अहसास और हास्य रस बिखरा हुआ था, जिसमें सभी बहुत ख़ुश और उत्साहित थे। कक्षा में अब तक के काम से बच्चों को व्यवहारिक-तार्किक चिन्तन का एक आधार मिला था। शायद अब बच्चे जब भी कोई चीज़ लेने बाज़ार जाएँगे, उसकी असलियत और गुणवत्ता की जाँच अपने चिन्तन से कर सकेंगे। इस बातचीत में एक हद तक भेदभाव और शरीर के रंग सम्बन्धी भ्रान्ति को भी दूर करने का प्रयास किया गया। अब शायद बच्चे किसी साँवले इंसान का मज़ाक़ उड़ाने से पहले कई बार सोचेंगे! आगे जब मौक़ा मिलेगा और किसी कक्षा में यदि मैं विज्ञापन पर काम करूँगी, तब सामाजिक विज्ञान के शिक्षक के साथ मिलकर उपभोक्ता मंच पर बात करते हुए परस्पर समझ बनाने के काम को भी हम इसमें सम्मिलित कर रहे होंगे।

डॉ प्रतिभा शर्मा शिक्षा के क्षेत्र में 15 वर्ष से काम कर रही हैं। उन्होंने मानस गंगा सीनियर सेकेंडरी स्कूल (बोध शिक्षा समिति कूकस) में 6 वर्ष तक अध्यापन कार्य किया। प्रतिभा ने केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, नई दिल्ली के जयपुर परिसर से संस्कृत भाषा में पीएचडी और बीएड की शिक्षा प्राप्त की। संस्कृत विषय पर लिखे उनके कई लेख संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं में छप चुके हैं। शिक्षा सम्बन्धी लेख 'टीचर्स ऑफ़ इंडिया' पोर्टल पर भी प्रकाशित हुए हैं। वर्तमान में अज़ीम प्रेमजी स्कूल टोंक, राजस्थान में अध्यापन कार्य कर रही हैं।

सम्पर्क : pratibha.sharma@azimpremjifoundation.org

बच्चों के साथ पुस्तकालय पर काम करने के कुछ अनुभव

वृजेश सिंह

विद्यालय में एक अच्छा पुस्तकालय होने के बावजूद बच्चों के बीच उसका उपयोग न होना आज भी स्कूलों की एक बड़ी समस्या है। यह लेख स्कूल में, बच्चों का पुस्तकालय की किताबों से जुड़ाव बनाने के लिए किए गए प्रयासों का विवरण प्रस्तुत करता है। इस विवरण में उन किताबों का ज़िक्र है, जिनमें दर्ज विचारों का सहारा लेकर लेखक ने बच्चों के साथ काम किया है। लेख में रीड अलाउड, पुस्तकालय से परिचय, कविता-कहानियाँ सुनाना, कविताओं के पोस्टर पर बातचीत और बुक टॉक जैसी गतिविधियों के अनुभव भी शामिल हैं। इन गतिविधियों से बच्चों का जुड़ाव पुस्तकालय से बनाया जा सकता है व उनमें धीरे-धीरे पढ़ने की आदत विकसित की जा सकती है। -सं.

हमें जिस बात का डर है और शोध जिस तरफ़ संकेत करते हैं, वह यह है कि हम ऐसे 'स्कूली पाठक' बना रहे हैं जो कक्षा छोड़ने के बाद शायद ही कभी किताब पढ़ते हैं।

यह पंक्तियाँ एलिन ओलिवर कीने और सुसान ज़िमरमैन (Ellin Oliver Keene and Susan Zimmermann) की पुस्तक *मोज़ेक ऑफ़ थॉट* (Mosaic of Thought) से हैं। यह पुस्तक समझ के साथ पढ़ना सिखाने की रणनीतियों के बारे में है। इन पंक्तियों को पढ़ने के दौरान, मैं सिरोही के आदिवासी अंचल में भाषा शिक्षण व पुस्तकालय के माध्यम से बच्चों को समझ के साथ पढ़ना सिखाने और स्वतंत्र पाठक बनाने के स्वप्न को साकार करने के लिए काम कर रहा था। मेरी दिनचर्या में, स्कूलों में भाषा कालांश और पुस्तकालय कालांश का अवलोकन करना शामिल था। अवलोकन के लिए जिस स्कूल को मैंने चुना, वहाँ पुस्तकालय था, लेकिन वहाँ जाने पर पाया कि उसका उपयोग नहीं हो रहा है, और पुस्तकालय कालांश जैसा कोई विचार ही नहीं है। इसलिए तय किया गया कि शिक्षकों से इस बारे में बात करनी होगी।

सबसे पहले, पुस्तकालय की किताबों के उपयोग को लेकर शिक्षकों को प्रोत्साहित करने के प्रयास में 'पाठ्यपुस्तकें बनाम पुस्तकालय की किताबों' का यक्ष प्रश्न मेरे सामने था। मैंने एक शिक्षक साथी से सुना था– "आधे से ज़्यादा पाठ्यक्रम बाक़ी है, और आप चाहते हैं कि मैं बच्चों को कहानी की किताबें पढ़कर सुनाऊँ।" उनकी बात बहुत स्वाभाविक लगी। इसके बाद, शिक्षकों के साथ पुस्तकालय की ज़रूरत पर बात हुई। शिक्षकों के द्वारा पुस्तकालय को स्कूल और कक्षा से अलग देखने की वास्तविक स्थिति का अहसास भी उनके अनुभवों पर चिन्तन करने और उनके साथ संवाद की प्रक्रिया में गहराई के साथ हुआ। इस संवाद में, शिक्षकों ने कहा कि वे जानते हैं, पुस्तकालय ज़रूरी है। उन्होंने बताया कि प्रशिक्षणों में उन्हें यह बताया गया है कि पढ़ना-लिखना सीखना विषयों को सीखने की बुनियाद है, और पुस्तकालय इसमें

मददगार है। उनके कई साथी, जो बच्चों के साथ पुस्तकालय और पढ़ने-लिखने पर काम कर रहे हैं, पढ़ने-लिखने में पुस्तकालय की महत्ता को रेखांकित करते हैं। लेकिन तब भी, शिक्षक स्कूल में बच्चों का पुस्तकालय जाना और उनका वहाँ पढ़ना सुनिश्चित नहीं कर पाते। अत: हमने मिलकर इस काम को करने का निश्चय किया।

इस काम की शुरुआत हुई, प्राथमिक कक्षाओं के बच्चों के साथ रीड अलाउड वाले सत्रों से। इन सत्रों में, बच्चे किसी कहानी के मुख्य पृष्ठ पर चर्चा करते; अनुमान वाले प्रश्नों पर विचार करते और जवाब देते; कहानी सुनने के दौरान बीच-बीच में कहानी को लेकर अनुमान लगाते कि कहानी किस दिशा में आगे बढ़ेगी, और आगे क्या होगा; कहानी पूरी होने के बाद अपनी पसन्द के पात्रों, कहानी की कोई पंक्ति, किसी शब्द, या कहानी की किसी परिस्थिति पर अपने विचार व अनुभव साझा करते। इस काम को करने में, निश्चित तौर पर प्रोफ़ेसर कृष्ण कुमार की किताब *बच्चे की भाषा और अध्यापक* से बहुत मदद मिली। इस किताब के पन्नों को *बरखा* सीरीज़ और पुस्तकालय की किताबों के माध्यम से विभिन्न विद्यालयों में जीवन्त होते देखने का अवसर मुझे मिला।

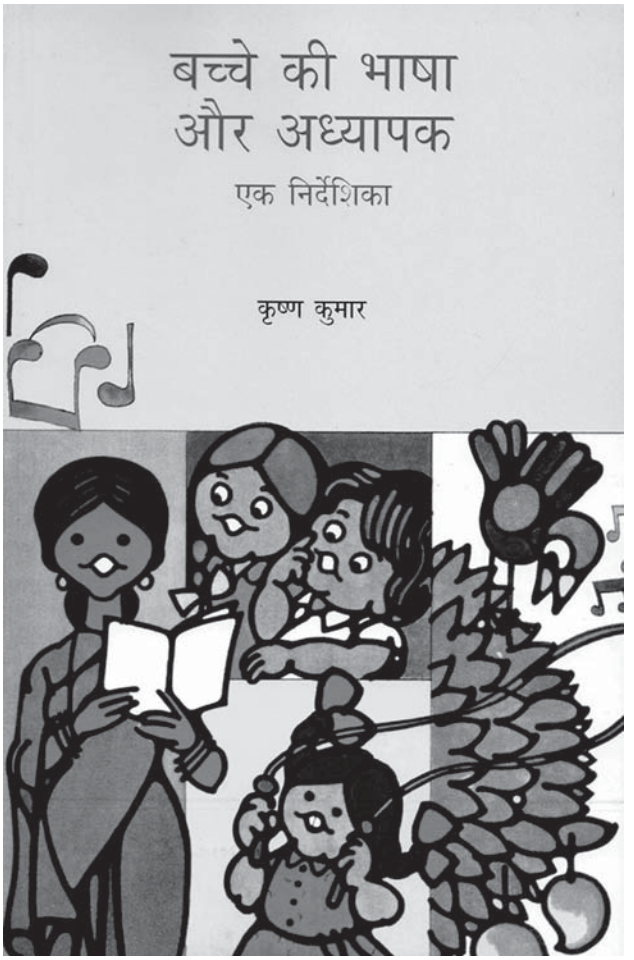

पुस्तकालय से बच्चों को परिचित कराने का एक तरीक़ा बच्चों को किताबों के बीच स्वतंत्र छोड़ देना, उन्हें विभिन्न किताबों को उलट-पलटकर देखने और अपने दोस्तों के साथ उनपर बातचीत करने के अवसर देना भी है। इस बात को एक तकनीक के रूप में लाइब्रेरी इमर्ज़न या पुस्तकालय से परिचय की गतिविधि भी कह सकते हैं। ऐसे ही एक अनुभव के दौरान, पहली कक्षा के बच्चों ने पुस्तकालय की किताबों को देखा। इस दौरान कुछ बच्चों ने किताबें उलटी पकड़ी हुई थीं। लेकिन जब उन्होंने साथ बैठे बाक़ी बच्चों को ख़ास तरीक़े से किताबें पकड़े देखा, उन्होंने भी अपनी किताब को ख़ुद ही सीधा कर लिया। कुछ बच्चों ने किताब में ऑटो का चित्र देखा। वे मुझे बताना चाहते थे कि हमारे गाँव से भी ऑटो क़स्बे के लिए जाते हैं। इसके बाद उन्होंने किताब के भीतर के पन्नों की सामग्री, मुख्यतौर से चित्रों, पर अपने सहपाठियों के साथ बातचीत शुरू कर दी। इस प्रक्रिया में, मेरी भूमिका अवलोकन करने, ख़ुद भी कोई किताब लेकर देखने, और बच्चों द्वारा पूछे जाने वाले सवालों या जिज्ञासा का समाधान करने की थी।

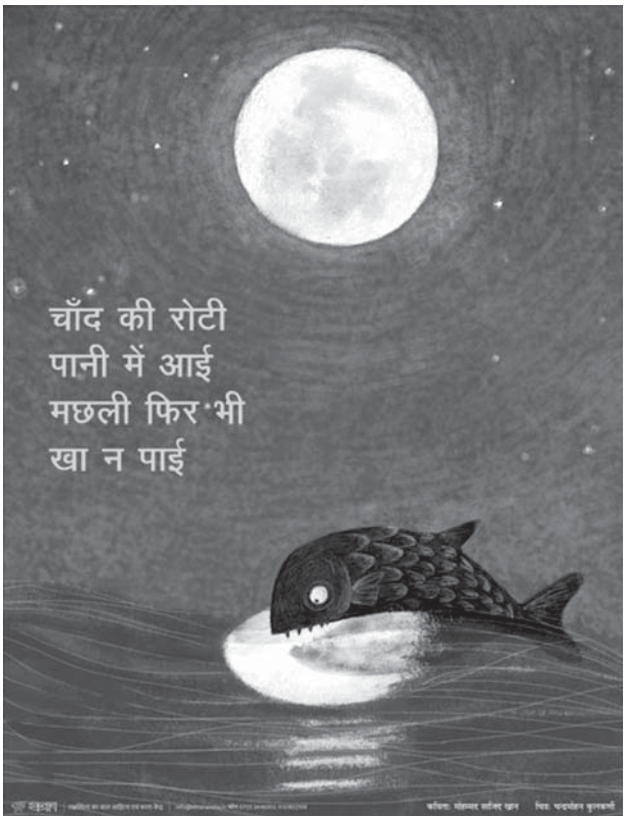

पुस्तकालय में नियमित जाने पर बच्चों के मन में पुस्तकालय के मायने भी बनने शुरू हुए। उनको पुस्तकालय में उस अनुशासन से आज़ादी मिली, जो आमतौर पर कक्षा में होता है। किताबों की श्रेणी या रंग के साथ-साथ उन्हें बड़ी किताबें देखने का भी अवसर मिला। इससे बच्चों में ख़ुद की पसन्द या चुनाव के प्रति सजगता वाला यह भाव भी आया कि अपनी किताब का चुनाव वे ही करेंगे। हाँ, इसके लिए वे किसी अन्य साथी या शिक्षक की मदद ले सकते हैं। बच्चों को ख़ुद की पसन्द के प्रति सजग बनाने, लम्बे समय तक अपनी पसन्द की किताबें पढ़ने, और उन किताबों के बारे में एक स्वतंत्र राय बनाने में भी पुस्तकालय मदद करता है।

इन प्रयासों के दौरान, मैंने समझा कि बच्चों को कहानी व कविताओं को सुनने का अवसर देना और उनके विचारों को अभिव्यक्त (चित्र बनाकर, लिखकर या बोलकर) करने के लिए अवसर देना बहुत ज़रूरी है। बच्चों के प्रयासों को बढ़ावा देने से पुस्तकालय से उनका जुड़ाव बनाने में काफ़ी मदद मिलती है। मैंने पाया है कि बच्चों में किताबों के प्रति रुझान बाल वाटिका या पूर्व-प्राथमिक कक्षाओं से ही शुरू किया जा सकता है। मसलन, आँगनबाड़ी केन्द्रों पर चित्र पुस्तकों, छोटी-छोटी कहानियों-कविताओं और चित्र पोस्टरों से काफ़ी मदद मिली। इकतारा द्वारा प्रकाशित एक चित्र पोस्टर में कविता की एक पंक्ति है– "चाँद की रोटी, पानी में आई, मछली फिर भी, खा न पाई"। बच्चों को ऐसी कविताओं-कहानियों के पोस्टर बहुत पसन्द आए। शायद इसलिए भी, क्योंकि चित्रों के साथ ये पोस्टर भाषा के रचनात्मक उपयोग की सम्भावनाओं से भी रूबरू कराते हैं। अच्छा चित्रांकन, कविताएँ और कहानियाँ बाल साहित्य के साथ बच्चों के जुड़ाव को कई गुना बढ़ा देने की सामर्थ्य रखती हैं। मिसाल के तौर पर, एक छोटी-सी कहानी है, *अच्छा मौसी अलविदा!* इस किताब के लेखक प्रभात हैं और चित्रांकन सुनीता का है। इस कहानी को सुनने के बाद बच्चे यह किताब लेकर गए। अलग-अलग बच्चों ने उसके चित्रों को देखा, और कहानी को दोबारा पढ़ा। इसी तरीक़े से एक और किताब है *खिचड़ी... एक लोककथा।* यह कहानी बच्चों को बहुत अच्छी लगती है, और वे इसे बार-बार सुनना पसन्द करते हैं। कुछ विद्यालयों में बच्चों ने इस कहानी पर रोल प्ले भी तैयार किए हैं।

बाल साहित्य के साथ बच्चों को जोड़ने के लिए पूर्व-प्राथमिक से लेकर आठवीं कक्षा तक सुगमता के साथ काम किया जा सकता है। मेरे अनुभव प्राथमिक से लेकर उच्च प्राथमिक

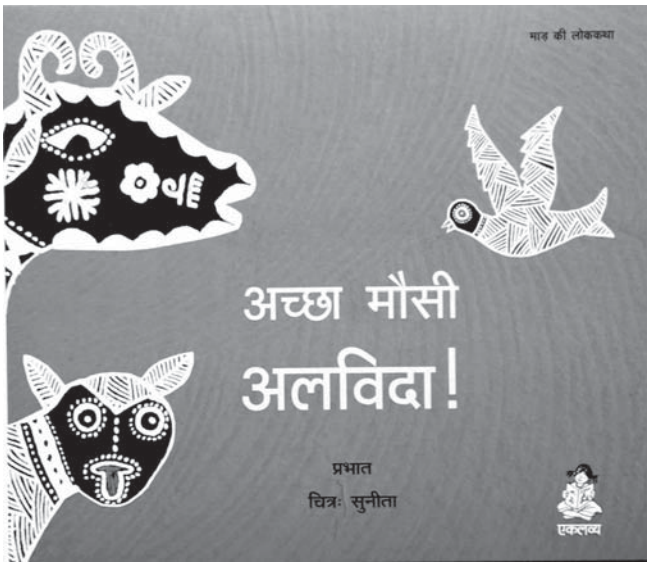

कक्षाओं, कस्तूरबा गाँधी बालिका विद्यालय, और 12वीं तक के विद्यालयों के रहे हैं। किताबों पर बच्चों के द्वारा चित्र बनाने, लिखकर विचारों को व्यक्त करने, बातचीत और चर्चा वाली गतिविधि में शामिल होने, रोल प्ले तैयार करने, और पाठक रंगमंच जैसी गतिविधि में शामिल होने से उनमें मौखिक भाषा का विकास बेहतर ढंग से होता है। इससे बच्चों के विचारों में स्पष्टता आती है और उनकी झिझक भी टूटती है, क्योंकि पुस्तकालय का स्वतंत्र और जीवन्त माहौल सभी बच्चों के लिए अवसरों की समानता और गतिविधियों में उनकी सक्रिय भागीदारी की बुनियाद पर टिका होता है।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा, फाउंडेशनल स्टेज 2022 के अनुसार, "बच्चों की दुनिया के लिए कहानियाँ खिड़की की भाँति हैं। उनके लिए कहानियाँ सुनना एक बेहद आनन्ददायक अनुभव है। बच्चे किसी एक ही कहानी को बार-बार सुनना पसन्द करते हैं। इससे बच्चों में ध्यान केन्द्रित करने की क्षमता और एकाग्रता बढ़ती है। बच्चों को भी किताब से कहानी पढ़कर सुनाने का अवसर देना चाहिए। हाव-भाव और अच्छी तैयारी के साथ सुनाई गई कहानियों का दीर्घकालिक प्रभाव पड़ता है। नए शब्द सीखना, शब्द भण्डार, वाक्य संरचना की समझ, और समस्या समाधान के कौशल भी इस माध्यम से विकसित होते हैं। सामाजिक रिश्तों, भावनाओं को समझने व अभिव्यक्त करने, और जीवन कौशलों के विकास हेतु कहानियाँ सशक्त माध्यम हैं।" इस पूरी बात को कहानियों के साथ-साथ व्यापक अर्थों में बाल साहित्य के इस्तेमाल के अवसर, निरन्तरता और रणनीति के साथ काम करने के प्रभाव और फ़ायदों के रूप में भी देखा जा सकता है। इन फ़ायदों के बारे में महज़ बोलकर नहीं बताया जा सकता। वास्तव में, इनके प्रत्यक्ष अनुभव के लिए रीड अलाउड (कहानियों पर चर्चा करते हुए पढ़कर सुनाना), किताबों के बारे में संक्षेप में बताना (बुक टॉक), स्वतंत्र रूप से पढ़ने के अवसर देना और स्कूल पुस्तकालय के संग्रह से बच्चों को परिचित होने का अवसर देना काफ़ी उपयोगी होता है। इससे बच्चे कहानियों के प्रति आकर्षित होते हैं और धीरे-धीरे उन्हें पढ़ने की ओर अग्रसर होते हैं।

पुस्तकालय को जीवन्त और सक्रिय बनाने के लिए उसे देखने के नज़रिए के साथ-साथ, गतिविधियाँ करने के लिए शिक्षकों का प्रोफ़ेशनल विकास, विविधतापूर्ण संग्रह की मौजूदगी, और बच्चों की किताबों तक प्रत्यक्ष पहुँच जैसे बहुआयामी प्रयास ज़रूरी हैं। साथ ही, किताबों को पढ़ने के लिए विद्यालय में निर्धारित समय दिया जाना, और घर पर पढ़ने के लिए किताबों का लेन-देन, लेंडिंग कार्ड या रजिस्टर जिस भी माध्यम से सुगम बने, भी ज़रूरी है। बच्चों को ख़ुद के द्वारा पढ़ी गई किताबों के बारे में बताने का अवसर देने, और उनके बनाए चित्रों व काम का प्रदर्शन पुस्तकालय में करने से दूसरे बच्चे भी पुस्तकालय से जुड़ने और वहाँ की किताबें पढ़ने के लिए प्रेरित होते हैं। बनाए गए चित्रों व काम के प्रदर्शन से बच्चों को

एक अलग पहचान मिलती है। इससे वे पुस्तकालय से जुड़ाव महसूस करते हैं। पुस्तकालय की गतिविधियों में विविधता के साथ-साथ उसकी निरन्तरता और नए संग्रह से बच्चों का परिचय कराना भी ज़रूरी है। पुस्तकालय को सन्दर्भ सामग्री वाली जगह के रूप में विकसित करना उच्च प्राथमिक कक्षाओं के बच्चों को पुस्तकालय से जोड़ने में मदद करता है। संग्रह की विविधता में इस पहलू का भी समावेश किया जा सकता है। पुस्तकालय से बच्चों को जोड़ने के क्रम में शिक्षकों का यह डर भी दूर हो जाता है कि बच्चे किताबें फाड़ देंगे, क्योंकि बच्चे किताबों को सँभालने की भी ज़िम्मेदारी स्वीकार करते हैं। उदाहरण के लिए, लखनऊ के कुछ विद्यालयों में गर्मी की लम्बी छुट्टियों में बच्चों को घर पर और समुदाय में पढ़ने के लिए कुछ किताबें जारी की गई थीं। ग़ौर करने वाली बात यह है कि किसी भी विद्यालय से ऐसा सुनने को नहीं मिला कि किताबें खो गईं या बच्चों ने वापस नहीं लौटाईं। शिक्षकों का बच्चों के ऊपर ऐसा भरोसा करने का ये उदाहरण सम्पूर्ण भारत के शिक्षकों को भी प्रेरित करने वाला है।

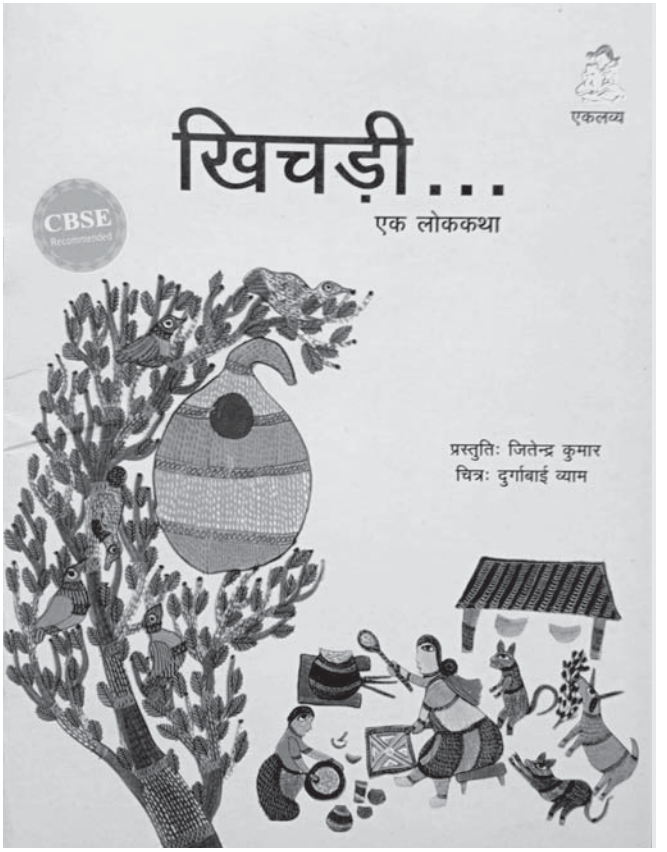

अन्त में, बच्चों में पढ़ने की आदत विकसित करने के सन्दर्भ में प्रोफ़ेसर कृष्ण कुमार अपनी पुस्तक *पढ़ना, ज़रा सोचना* में लिखते हैं, "पढ़ने का उद्देश्य उस आनन्द या सुख की तलाश है जो सिर्फ़ साहित्य दे सकता है। पढ़ने का सुख एक निरुद्देश्य सुख है। अर्थात, इसमें जो कुछ है, वह पढ़ने की आदत डालकर ही महसूस किया जा सकता है। पढ़ना मूलतः जिज्ञासा के सहारे आगे बढ़ने वाला काम है। पढ़ाई में निहित 'पढ़ना' इस बात से बिलकुल विपरीत है। पढ़ाई में मेहनत और परीक्षा की तैयारी हावी होती है।" बच्चों में पढ़ने की आदत विकसित करना ज़रूरी है, ताकि वे बाल साहित्य के आनन्द या पढ़ने के सुख को महसूस कर सकें।

वृजेश सिंह अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन में रिसोर्स पर्सन के रूप में काम कर रहे हैं। इससे पूर्व आपने लैंग्वेज एण्ड लर्निंग फ़ाउण्डेशन, रूम टू रीड इंडिया, टाटा ट्रस्ट्स, स्टार एजुकेशन जैसी संस्थाओं में बुनियादी साक्षरता एवं संख्या ज्ञान, पुस्तकालय, शिक्षक अभिप्रेरण और शिक्षकों के क्षमतावर्धन हेतु ज़िला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान के साथ काम किया है। विद्यालय स्तर पर शिक्षकों के सहयोग से विभिन्न विचारों को क्रियान्वित करना और उन अनुभवों पर चिन्तन व लेखन आपके कार्य का अभिन्न हिस्सा रहा है। आप भाषा और पुस्तकालय के क्षेत्र में आदिवासी अंचल और ग्रामीण क्षेत्रों में काम करने का सघन अनुभव रखते हैं। आपने टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ़ सोशल साइंसेज से मास्टर ऑफ़ आर्ट्स (एलीमेंट्री एजुकेशन) की शिक्षा हासिल की है।

सम्पर्क : virjesh.singh@azimpremjifoundation.org

सीखना कक्षा के बाहर भी हो सकता है!

टिना

महामारी के दौर में बच्चों की पढ़ाई का बहुत ज़्यादा नुक़सान हुआ है। इस नुक़सान की भरपाई के लिए तरह-तरह के प्रयास किए गए, जो आज भी जारी हैं। एक ऐसे ही प्रयास का अनुभवपरक व योजनाबद्ध चित्रण इस लेख में है। यह प्रयास गर्मी की छुट्टियों में लगने वाले सीखना-सिखाना शिविरों के दौरान किया गया। लेखिका बताती हैं कि इन शिविरों में हर दिन को सर्कल टाइम, भाषा गतिविधि, गणित गतिविधि और फ़न टाइम में बाँटकर इस तरह की सीखने-सिखाने और खेल की विभिन्न गतिविधियाँ की गईं। जिनसे कक्षा की जड़ता कमतर हो। वे बच्चे भाषाई व गणितीय कौशल सीखने की ओर आगे बढ़ें। इन गतिविधियों में, कार्यपत्रकों में रंग भरना, कहानी के पात्रों के चित्र बनाना, चित्रों पर प्रतिक्रिया देना, क्ले मॉडेलिंग, थम्ब आर्ट, नाटक करना, प्ले बॉक्स और पज़ल्स के साथ खेलना, कविता-कहानियों की प्रस्तुति, आदि शामिल थीं। इस दौरान बच्चों का मूल्यांकन शिक्षकों की मदद से मौखिक रूप से किया गया। -सं.

पृष्ठभूमि

हम सभी जानते हैं, ग्रीष्मकालीन अवकाश के दौरान बच्चों का स्कूल से नाता टूट जाता है। साथ ही, हम सबने पिछले सालों में कोविड जैसी महामारी का भी सामना किया था। इस महामारी के समय स्कूल बन्द ही थे। खुलने के बाद भी वे काफ़ी समय तक अनियमित ही रहे। इन्हीं स्थितियों, और इनसे बच्चों की पढ़ाई में हुए नुक़सान को समझते हुए, हमने सोचा कि क्यों न गर्मी की छुट्टियों का कुछ नए तरीक़े से इस्तेमाल किया जाए, ताकि बच्चों का सीखना भी जारी रह सके और उनके लर्निंग लॉस की भरपाई भी की जा सके। लक्ष्य यह भी था कि ग्रीष्मकालीन शिविर सीखने की प्रक्रिया में समुदाय को शामिल करने के उदाहरण के रूप में विकसित हो। समुदाय से गहरा रिश्ता सार्वजनिक शिक्षा प्रणाली में सुधार की दिशा में बढ़ता एक क़दम है। इसके लिए शिविर की योजना बनाई गई।

शिविर की तैयारी

गर्मी की छुट्टियों में बच्चों के साथ हुए इस 10-12 दिन के शिविर को 'सीखना-सिखाना केन्द्र' नाम दिया गया था। केन्द्र शुरू करने से पहले ही हमने इस बारे में शाला प्रमुख, गाँव के प्रमुखों, सरपंच और शिक्षक साथियों से विस्तृत चर्चा की। ग्रीष्मकालीन अवकाश के बावजूद, शिक्षक साथी स्वेच्छा से इस केन्द्र में शामिल होने के लिए तैयार हुए। बातचीत के बाद सभी इच्छुक शिक्षक साथियों के साथ एक कार्यशाला की गई। इस कार्यशाला में कई मुद्दों पर चर्चा हुई। मसलन, ऐसे शिविर जिनमें बहुत-से स्तरों वाले बच्चे होंगे, उन्हें सुगमता से कैसे चलाया जाएगा; अगले 12 दिनों में हमें क्या करना है; किस-किस तरह की गतिविधियाँ करनी हैं; आदि। यह चर्चा भी की गई कि हम बच्चों का मूल्यांकन कैसे करेंगे, ताकि यह समझ सकें कि वे किस स्तर पर हैं, और हमें उनके साथ क्या और कैसे काम करने की ज़रूरत है। इस तरह,

हमने इन 12 दिनों में दो मूल्यांकन, एक शुरू में और दूसरा आख़िर में, करने की योजना बनाई। इसी कार्यशाला में हमने इस बात पर भी विस्तार से चर्चा की कि हर दिन के अनुसार हमें क्या-क्या सामग्री चाहिए होगी और कौन-कौन-सी अधिगम सामग्री बनाने की ज़रूरत है।

सीखना-सिखाना केन्द्र के हर दिन को हमने 4 हिस्सों में बाँटा– सर्कल टाइम, भाषा गतिविधि, गणित गतिविधि, और फ़न टाइम। इन चार हिस्सों का नियोजन कुछ ऐसे किया गया था कि सभी गतिविधियों के लिए आधा-आधा घण्टे का समय मिल सके। अगर कोई गतिविधि आधा घण्टे से ज़्यादा चलती है, तब उस दिन उसके बाद वाली गतिविधि को अगले दिन करने का प्रयास किया जाए। पूरे दिन की गतिविधि और सत्र योजना शिक्षक साथियों की सहमति से बनी। इस योजना में यह ध्यान रखा गया कि हर स्तर के बच्चों को सीखने में मदद मिल सके; डर का माहौल न हो; और बच्चे ग़लती कर सकें व सहजता से सीखने की ओर बढ़ सकें। सीखना-सिखाना केन्द्र के लिए सुबह या शाम का समय तय किया गया था, ताकि गर्मी का असर ज़्यादा न हो। हमने कुछ और मूलभूत सुविधाओं की भी व्यवस्था की, ताकि बच्चों का सीखना निर्बाध और सुविधाजनक तरीक़े से चलता रह सके। जैसे– पीने के पानी की उपलब्धता, हवादार कमरा, आसपास छायादार पेड़, शौचालय, आदि।

शिविर में गाँव, शहर, निजी और सरकारी, सभी स्कूलों के बच्चे शामिल थे। लेकिन मुख्यत: ग्रामीण अंचल के बच्चे इस केन्द्र में शामिल हुए। ये बच्चे सुबह-सुबह ही केन्द्र आ जाते थे। गर्मी बहुत ज़्यादा थी, इसलिए बच्चों के लिए दो-ढाई घण्टा बैठना और गतिविधियों में सक्रिय रूप से भाग लेना मुश्किल हो रहा था। इसे ध्यान में रखते हुए बच्चों के लिए कुछ खाने का भी इन्तज़ाम किया गया।

सीखने-सिखाने की प्रक्रियाएँ

रूढ़िवादी कक्षा संस्कृति की एकरसता को तोड़ने के लिए बड़े और छोटे समूहों को मिलाने, एक साथ काम

करने, और एक दूसरे से सीखने की प्रक्रिया अपनाई गई। इस शिविर में सामाजिक-भावनात्मक सन्तुलन, मूलभूत साक्षरता और संख्यात्मकता पर ध्यान केन्द्रित करने वाली विभिन्न गतिविधियाँ भी आयोजित की गईं। ऐसे मौक़े बनाए गए, जब बच्चे तरह-तरह की कविताएँ और कहानियाँ पढ़ें। भाषा सम्बन्धी गतिविधियाँ करने के दौरान इस बात का ख़ास ध्यान रखा गया कि जो भी निर्देश दिए जाएँ वे सरल, द्विभाषी और स्पष्ट हों, ताकि बच्चे उन्हें समझ सकें, और बेहतर तरीक़े से सीख सकें। गतिविधियों में बड़े समूहों की बातचीत को बढ़ावा दिया गया, और विभिन्न विषयों पर कहानियों या कविताओं को उनके अनुसार व्यवस्थित करने के लिए विद्यार्थियों को प्रेरित किया गया। उन्हें उत्तर देने और छोटे समूह बनाने के लिए विषयवस्तु पर लघु नाटिका या नाटक का मंचन करने के लिए भी प्रोत्साहित किया गया।

व्यक्तिगत कार्यों की बात करते हुए हिन्दी और अँग्रेज़ी वर्कशीटों का इस्तेमाल किया गया। यह वर्कशीटें बच्चों के स्तर अनुरूप सवालों से बनाई गई थीं। इनमें कुछ सवाल काफ़ी बुनियादी स्तर के, कुछ पिछली कक्षा के, और कुछ उस कक्षा स्तर के थे, जिसमें बच्चे वर्तमान में पढ़ रहे हैं। अगर मैं कक्षा 5 के बच्चों के लिए वर्कशीट की बात करूँ, वह कुछ बच्चों के लिए काफ़ी आसान और कुछ के लिए कठिन थी। इस वर्कशीट में वर्ण, मात्रा से लेकर रचनात्मक लेखन के सवाल थे, ताकि सभी बच्चे कुछ प्रयास कर पाएँ और अपनी क्षमताओं, विचारों और अभिव्यक्तियों को सही तरीक़े से साझा कर सकें। इसके साथ, इन वर्कशीटों में मातृभाषा में प्रतिक्रियाएँ भी स्वीकार की गईं, ताकि बच्चों के भाषा कौशल पर भी काम हो सके। विद्यार्थियों के लेखन कौशल विकसित करने के लिए विभिन्न गतिविधियाँ संचालित की गईं। जैसे– चित्रों पर प्रतिक्रिया देना, कहानी के पात्रों के बारे में चित्र बनाना या लिखना, कार्यपत्रकों में रंग भरना, क्ले मॉडलिंग, लेबलिंग, फ़्लैशकार्ड का मिलान, एक दूसरे से बातचीत, स्वतंत्र रूप से पढ़ना-लिखना, आदि। ये गतिविधियाँ व्यक्तिगत कार्यों के माध्यम से भाषा कौशलों को सुधारने के लिए थीं।

केन्द्र पर किए गए काम का उदाहरण

एक केन्द्र में 35 बच्चे थे। सबसे पहले, आकलन के ज़रिए हमने समझा कि इनमें से 8 बच्चे शुरुआती स्तर, 14 पिछली कक्षा के, और 13 बच्चे वर्तमान कक्षा स्तर पर थे। यह आकलन शिक्षकों की सहायता और बच्चों से मौखिक बातचीत करके किया गया। चूँकि शिक्षक अपनी कक्षा में पढ़ाते आ रहे हैं और उन्हें अपनी कक्षा के बच्चों के बारे में जानकारी होती है, इसलिए हम यह आकलन उनकी मदद से कर रहे थे।

पाठ 16

अगर पेड़ भी चलते होते

बच्चे आपस में बैठकर तरह–तरह की बातें करते हैं। उनकी कल्पनाएँ अजीब–अजीब होती हैं। कभी वे पक्षी बनकर आकाश की सैर करते हैं, कभी शेर बनकर जंगल का राजा बनते हैं। इस पाठ में भी वे कल्पना करते हैं कि अगर कहीं पेड़ चलने लगें तो क्या हो।

अगर पेड़ भी चलते होते।
कितने मजे हमारे होते ?

बाँध तने में उसके रस्सी,
जहाँ कहीं भी हम चल देते।

अगर कहीं पर धूप सताती,
उसके नीचे हम छिप जाते।

भूख सताती अगर अचानक,
तोड़ मधुर फल उसके खाते।

वहीं कुछ जगहों पर हम वर्कशीट के माध्यम से लिखित आकलन करने का प्रयास कर रहे थे। इन वर्कशीटों में बच्चों को उस सामग्री से सम्बन्धित कुछ बुनियादी सवाल दिए गए थे, जो उन्होंने पिछली कक्षा में पढ़ी थी। इससे हमें यह आसानी से पता चल पाया कि किस बच्चे के साथ क्या काम करना है। इस जानकारी के आधार पर हमने एक सर्वसमावेशी कक्षा का संचालन किया। हमारे केन्द्र में कक्षा 1 से 5 तक के बच्चे शामिल थे। इन सभी बच्चों के समूह बच्चों के सीखने के स्तर के आधार पर बनाए गए, और इनमें कक्षा 3 का बच्चा भी कक्षा 5 के बच्चे के साथ बैठकर गतिविधियों में हिस्सा ले रहा था। हमने यह जानने की कोशिश की कि हमारे बच्चे मौखिक भाषा में कहाँ हैं, और उनके साथ क्या काम करने की ज़रूरत है।

हमने पाया कि बच्चे बात करने में झिझक महसूस कर रहे थे, और उनमें अभिव्यक्ति की कमी साफ़ नज़र आ रही थी। साथ ही, वे अभी उस स्तर पर नहीं थे कि अपनी वर्तमान कक्षा के स्तर का लेखन कर पाएँ। 4-5 बच्चों को छोड़कर सभी बच्चों में झिझक थी। इसीलिए हमने कुछ ऐसी गतिविधियाँ कीं जिनमें भाषाई विकास भी हो, और यह काम भी खेल-खेल में हो सके। केन्द्र की शुरुआत सर्कल टाइम की ऐसी गतिविधियों से होती थी, जो बच्चों के भावनात्मक और मानसिक विकास से सम्बन्धित थीं। सर्कल टाइम के दौरान, छोटे-छोटे बाल गीत, जैसे– चना कैसे बोया, आज हम भालू को गिनती सिखाएँगे, बॉम्बे की गुड़िया, आदि हावभाव के साथ गाए। इसी दौरान कुछ ऐसी खेल गतिविधियाँ करवाईं जो सर्कल में की जाती हैं। जैसे– घोड़ा बादाम खाए, लालाजी ने लड्डू खाए, नेता-नेता चाल बादल, आदि। हमारे केन्द्र की शुरुआत सर्कल टाइम से होती थी और समाप्ति फ़न टाइम से। फ़न टाइम में बच्चे अलग-अलग रचनात्मक गतिविधियों में हिस्सा लेते थे। इनमें पेपर फ़ोल्डिंग, मिट्टी के

खिलौने बनाना, चित्र बनाना, थम्ब आर्ट, आदि गतिविधियाँ की जाती थीं। बच्चों से अलग-अलग गतिविधियाँ करवाने का उद्देश्य उनके भाषाई कौशल को बढ़ाना था। वे अपनी बातों को इन गतिविधियों के माध्यम से सामने रखते थे। उदाहरण के लिए, 'मैं कौन हूँ, मुझे पहचानो', या किसी बच्चे की पीठ पर कुछ लिखा होता, बाक़ी बच्चे हावभाव करके उसे बताते, आदि।

बुनियादी स्तर वाले बच्चों के लिए किसी कविता या कहानी के आधार पर कुछ गतिविधियाँ तैयार की गई थीं। इनमें छूटे हुए वर्ण को पूरा करना, नए शब्द बनाना, किसी वाक्य से दूसरे नए वाक्य बनाना, किसी चित्र के बारे में अपने शब्दों में कुछ लिखना, चित्रों की लेबलिंग करना, हिन्दी-अँग्रेज़ी के मिलेजुले शब्द बनाना, आदि गतिविधियाँ की गईं।

कुछ दूसरी गतिविधियों के सहारे भी काम किया। मसलन, कहानी / कविता को बच्चों के समक्ष उचित हावभाव एवं सहायक सामग्री के साथ बताना। इस तारतम्य में, 'अगर पेड़ भी चलते होते', 'चल रे मटके टम्मक टूँ', 'भालू ने खेली फ़ुटबाल' जैसी कविताओं / कहानियों का प्रस्तुतीकरण बच्चों के बीच किया गया। इस प्रस्तुतीकरण ने बच्चों को काफ़ी लुभाया, और उन्होंने इन रचनाओं पर ख़ूब सारी प्रतिक्रियाएँ भी दीं। यह गतिविधि बच्चों के मौखिक भाषा विकास के लिए काफ़ी मददगार साबित हुई। शिक्षक साथियों के साथ मिलकर लिखने पर भी कुछ गतिविधियाँ की गईं, जो बच्चों के लिखने की प्रक्रिया में काफ़ी मददगार रहीं। चूँकि तीन स्तर के बच्चों के साथ काम किया जा रहा था, इसलिए लिखने की गतिविधि को भी इन स्तरों के अनुरूप ही बनाया गया था। जिन कविता-कहानियों पर बातचीत की, उन्हीं को आधार बनाकर लिखने की तरफ़ बढ़ा गया। इसके तहत, 'अगर पेड़ भी चलते होते' कविता पर शुरुआती स्तर वाले बच्चों के साथ चित्र बनाया, लेबलिंग की, और वर्णों को लिखकर शब्द पूरा किया। जो बच्चे पिछली कक्षा के स्तर पर थे, उन्होंने कुछ नए शब्द गढ़े, समान ध्वनि वाले शब्दों को ढूँढ़कर लिखा, कुछ वाक्य लिखे, और वे दिए गए निर्देश को देखकर जवाब भी लिख सके। वर्तमान कक्षा स्तर वाले बच्चों को पिछले व शुरुआती स्तर के बच्चों की मदद करने के लिए कहा, और उनकी

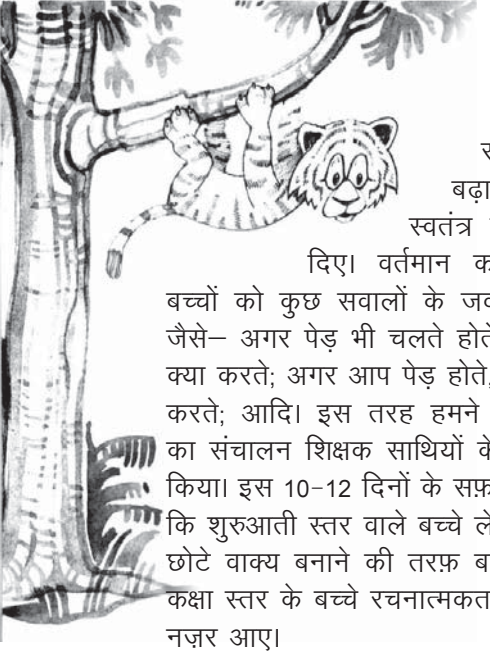

रचनात्मकता को बढ़ावा देते हुए उन्हें स्वतंत्र लेखन के मौक़े दिए। वर्तमान कक्षा स्तर वाले बच्चों को कुछ सवालों के जवाब भी देने थे। जैसे– अगर पेड़ भी चलते होते, तब वो क्या-क्या करते; अगर आप पेड़ होते, आप क्या-क्या करते; आदि। इस तरह हमने भाषा की कक्षा का संचालन शिक्षक साथियों के साथ मिलकर किया। इस 10-12 दिनों के सफ़र में हमने पाया कि शुरुआती स्तर वाले बच्चे लेबलिंग व छोटे-छोटे वाक्य बनाने की तरफ़ बढ़े, और पिछली कक्षा स्तर के बच्चे रचनात्मकता की ओर बढ़ते नज़र आए।

गणित की गतिविधियाँ करने से पहले भी बच्चों के सीखने के स्तर का आकलन किया गया। 35 बच्चों की कक्षा में 12 ऐसे थे, जिनको बुनियादी गणितीय कौशलों और 10 को स्थानीय मान समझने में परेशानी आ रही थी। वहीं 13 बच्चे ऐसे थे, जो कक्षा स्तर की गतिविधियाँ (जोड़ना-घटाना) कर पा रहे थे।

गणित शिक्षा के उद्देश्यों को खेल के रूप में प्रस्तुत किया। मक़सद था कि बच्चे सीखने में आनन्द के साथ-साथ सीखने की क्षमताओं को भी विकसित करने की ओर बढ़ सकें। यह तय किया कि सुगमकर्ता या शिक्षक साथी हर खेल को शुरू करने से पहले उसका प्रदर्शन ज़रूर करें। खेल विशेष के प्रत्येक दौर में धीरे-धीरे कठिनाई स्तर बढ़ाया गया। इससे बच्चों को सीखने का अवसर मिला, और उनके कौशलों में सुधार हुआ। उदाहरण के लिए, बुनियादी स्तर वाले बच्चों के साथ कुछ गतिविधियाँ कीं। इन गतिविधियों में पहले कम-ज़्यादा, छोटा-बड़ा, आदि की अवधारणा और उसके बाद संख्या समझ पर काम किया। इससे छोटी संख्या, बड़ी संख्या पर ज़्यादा काम करने की ज़रूरत ही नहीं पड़ी, क्योंकि बच्चों में कम-ज़्यादा, छोटा-बड़ा, आदि की समझ बन चुकी थी। यह भी ध्यान रखा कि बच्चों के शिक्षा स्तर के आधार पर ही उनके सीखने को बढ़ाया जाए। हमारी गतिविधियाँ संख्या बोध, गिनती, संचालन, पैटर्न पहचान, आकार, अंश, वज़न, माप, जैसी गणित की विभिन्न अवधारणाओं पर आधारित थीं।

इसी तारतम्य में, शिक्षक साथियों के साथ मिलकर बुनियादी स्तर के बच्चों के लिए कुछ गतिविधियाँ तैयार कीं। पानी की 10 ख़ाली बोतलें लेकर उनमें रेत डाली गई। इस गतिविधि के ज़रिए कम-ज़्यादा की अवधारणा की समझ पर बच्चों से बात की। उसी क्रम में, पत्थरों को क्रमागत रूप से जमाना, एक-एक की संगत करना, जैसी गतिविधियाँ भी शामिल की गईं। ऐसे बच्चे जो पिछली कक्षा के स्तर पर थे, उनके लिए पॉकेट बोर्ड, डीन्स ब्लॉक का इस्तेमाल किया गया। इनसे उनको इकाई-दहाई की अवधारणा को स्पष्ट करने में मदद मिली। वर्तमान कक्षा स्तर के बच्चों के साथ हमने कुछ सवाल भी रखे। जैसे– 127 + ... = 319; 426 – ..... = 291। ये सवाल एल्गोरिदम के हैं, पर यहाँ बच्चे को इन्हें समझकर हल करना होगा। मसलन, पहले सवाल में लगता है कि जोड़ना है, जबकि इसमें घटाने की क्रिया करनी है। अगर बच्चा सवाल समझ पाएगा, इसे कर लेगा। इस दृष्टि से ये

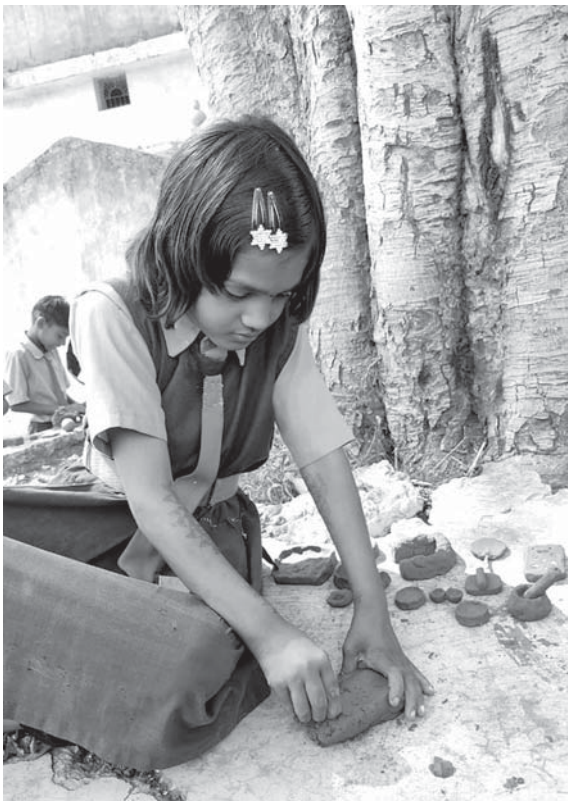

सवाल जोड़-घटा के सामान्य सवालों से थोड़े अलग थे। बच्चों में गणितीय सोच, तर्क और चिन्तन का विकास करने के लिए मैजिक बॉक्स और पज़ल्स का भी इस्तेमाल किया गया। चूँकि केन्द्र में कक्षा 1 से 5 तक के बच्चे थे, इसलिए सभी स्तरों को ध्यान में रखते हुए गतिविधियाँ चुनी गई थीं। इस पूरी प्रक्रिया के अन्त में पाया कि बच्चे अवधारणाओं को समझने की ओर बढ़े, और सक्रिय रूप से सवालों को हल करने की कोशिश करते नज़र आए।

एक अन्य केन्द्र पर आए बच्चों के आकलन में पाया गया कि कक्षा 1 से 3 तक के बच्चों के साथ संख्या समझ और स्थानीय मान पर काम करने की काफ़ी गुंजाइश है। इसलिए शिक्षक साथियों के साथ मिलकर सबसे पहले संख्या पूर्व अवधारणा पर काम किया। आसपास उपलब्ध कंकड़, तीली बण्डल, ख़ाली बोतल के ढक्कन जैसी अलग-अलग चीज़ों का इस्तेमाल करते हुए हल्का-भारी, कम-ज़्यादा, छाँटना, मिलान करना, वर्गीकरण, छोटा-बड़ा, आदि अवधारणाओं पर काम किया गया। संख्या पूर्व अवधारणाओं पर स्पष्टता बनने के बाद संख्याओं की समझ पर काम करना शुरू किया गया। इसमें 1 से लेकर 10 तक और आगे की गिनती के स्थानीय मान को लेकर काम किया गया। इस गतिविधि के लिए डीन्स ब्लॉक्स, तीली बण्डल, आदि का इस्तेमाल किया गया। बच्चों के साथ कुछ ऐसे खेल भी खेले, जिनमें बच्चों को साधारण जोड़-घटा करना होता था।

ये सारी गतिविधियाँ स्कूली गतिविधियों से कुछ अलग थीं। इन गतिविधियों में बच्चों को मूर्त वस्तुओं के माध्यम से गणितीय अवधारणाएँ जानने-समझने का मौक़ा मिल रहा था। बच्चे चीज़ों को आपस में मिला रहे थे, उठा रहे थे, छूकर देख रहे थे। शुरुआत में किसी भी अवधारणा की समझ के लिए यह मूर्तन काफ़ी ज़रूरी होता है। शिविर के अन्त में हमने देखा कि जो बच्चे गणित को लेकर थोड़ा डर या दूरी बनाते थे, वे भी इन गतिविधियों में शामिल हो रहे थे।

इस तरह सीखना-सिखाना केन्द्र ने विद्यार्थियों की न केवल तथ्यों को याद करने में मदद की, बल्कि उनकी समझ को भी विकसित किया। हमने पाया कि इस प्रक्रिया से गुज़रने के बाद विद्यार्थियों का आत्मविश्वास बढ़ा। वे अपने विचारों को स्पष्टतः और सही ढंग से व्यक्त करने की ओर बढ़े। इस केन्द्र के ज़रिए उन्हें सामाजिक मेलजोल करने और नए दोस्त बनाने का मौक़ा भी मिला।

इस पूरे केन्द्र के संचालन में कुछ चुनौतियाँ भी सामने आईं। सबसे पहली शिक्षकों की अनुपलब्धता, क्योंकि इसका संचालन गर्मियों में होता है, और वही शिक्षक साथियों का ग्रीष्मकालीन अवकाश का समय होता है। हालाँकि इस चुनौती का सामना करते हुए शिक्षक

साथियों ने सभी गतिविधियों में बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया। दूसरी, इस केन्द्र में सीखते-सिखाते हुए कई बार निर्धारित गतिविधि को ज़रूरत के मुताबिक़ कुछ अलग ढंग से भी करना होता था। इसके लिए तैयार रहना भी एक बड़ी चुनौती थी।

एक शिक्षिका के अनुभव

केन्द्र में भागीदार एक शिक्षिका ने इस प्रयोग के बारे में कहा कि ग्रीष्म अवकाश में पढ़ने-पढ़ाने का अनुभव बहुत अच्छा था। नए-नए खेलों की मदद से बच्चों की पढ़ाई में रुचि जागृत करने, और ख़ाली समय में भी पढ़ने के लिए उन्हें प्रोत्साहित करने का काम इस केन्द्र के ज़रिए हुआ। बच्चे अपने साथियों के साथ समूह में बैठकर, अलग-अलग गतिविधियों के माध्यम से अलग-अलग स्तर के अनुरूप सीख सके। साथ ही, उन्हें ड्राइंग, पेंटिंग, पेपर क्राफ़्ट्स, ओरिगेमी (काग़ज़ को मोड़कर विभिन्न आकृतियाँ बनाना), मिट्टी से कलाकारी, आदि भी सीखने को मिले। बच्चे भाषा और गणित विशेषतौर पर सीख सके, क्योंकि इन विषयों को ध्यान में रखते हुए रोज़ बहुत-सी रोचक गतिविधियाँ की गईं। इस कड़ी में, रोज़ बाल गीत गाए गए, बाल गीत में आए कठिन शब्दों पर बातचीत की, बच्चों से वाक्य बनवाए, उन्हें विलोम शब्द बताए, और बातचीत करने व लिखने के नए अवसर प्रदान किए। अभी तक बच्चे केवल पुस्तक-आधारित लेखन करते थे, लेकिन केन्द्र में आने के बाद बच्चों ने अपनी रुचि के हिसाब से प्रसंगों पर लिखना और अभिव्यक्त करना शुरू किया। उन्होंने गाँव में आने वाली कुछ परेशानियों के बारे में भी अपनी बात रखी। एक तरह से देखा जाए तो केन्द्र में बच्चा अपने पूरे रुतबे में था। वह जो भी सामने देख रहा था, उसको लिखकर ला रहा था, और हमारे साथ साझा कर रहा था। केन्द्र में बच्चे बुनियादी गणितीय कौशल सीखने की तरफ़ भी बढ़े। खेल-खेल में गतिविधियों के माध्यम से वे जोड़ना-घटाना, इकाई, दहाई, सैकड़ा व स्थानीय मान की समझ की तरफ़ बढ़े। वे छोटी-छोटी गतिविधियों के माध्यम से समूह में काम कर रहे थे। सालभर जब बच्चों की कक्षाएँ चलती हैं, तब भी वे इन सभी तरीक़ों से ही सीखते हैं। लेकिन केन्द्र में हमने इन सारी अवधारणाओं को छोटी-छोटी गतिविधियों के माध्यम से सिखाया।

सभी चित्र : टिना

टिना राजेंद्र कटकवार, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, बलौदा-बाज़ार, छत्तीसगढ़ में रिसोर्स पर्सन के रूप में पिछले 3 सालों से काम कर रही हैं। इससे पहले उन्होंने स्वदेस फ़ाउण्डेशन, लर्निंग लिंक्स फ़ाउण्डेशन और विभिन्न संस्थाओं में काम किया है। शिक्षा के क्षेत्र में टिना सालों से काम कर रही हैं। टिना ने अपनी पढ़ाई भी अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय से की है। वे लगातार सीखती रहती हैं, उन्हें शिक्षा के क्षेत्र में काम करने में काफ़ी आनन्द मिलता है।

सम्पर्क : tina.katkwar@azimpremjifoundation.org

डिजिटल लाइब्रेरी ने बढ़ाया है दायरा

प्रतिभा कटियार

जब पुस्तकालय की बात होती है, आसपास एक ख़ुशबू-सी तैर जाती है। एक ऐसी ख़ुशबू जिसमें नई दुनिया का रास्ता खुलता नज़र आता है। किताबों की उस ख़ुशबू का हाथ थामकर दुनिया के किसी भी कोने की सैर पर निकला जा सकता है। इसमें जो आत्मीयता है उसपर न जाने कितनी कविताएँ लिखी गईं, फ़िल्मों के दृश्य फ़िल्माए गए। किताबों से हर किसी का अलग-सा रिश्ता है। किताबों का तोहफ़े में मिलना, घर में उन्हें सजाना, तकिए के नीचे रखकर सो जाना, सफ़र में साथ रहना और न जाने क्या-क्या!

लेकिन जब तकनीक ने दस्तक दी, लगा किताबों की इस ख़ुशबू का, इस पढ़ने वाले मिज़ाज का क्या होगा! क्या पुस्तकालयों की ज़रूरत कम हो जाएगी? किंडल आया, किताबों के ई-संस्करण, ऑडियो बुक्स आईं, और लगा कि अब गुम जाएगी किताबों की वो महक।

लेकिन ऐसा हुआ नहीं। न किताबों का जादू कम हुआ, न पुस्तकालयों की ज़रूरत। हाँ, तकनीक ने पुस्तकालयों का विस्तार ज़रूर किया है। ऑनलाइन / बाल साहित्य की मौजूदगी ने बहुत सारे काम आसान किए हैं। किताबों की बाबत मैंने तकनीक का उपयोग काफ़ी हद तक किया है। ऑनलाइन पता किया कि अमुक किताब किस लाइब्रेरी में उपलब्ध है, और उस लाइब्रेरी का रुख़ किया। बहुत सारी महत्त्वपूर्ण किताबें, सामग्री, जिनके पन्ने पीले पड़ चुके थे, के ई-वर्ज़न तैयार हुए।

किताबों के क़सीदे में लिखीं तमाम कविताओं से प्यार बरकरार रखते हुए भी मैंने पाया कि ई-लाइब्रेरी की अहमियत काफ़ी है। कितनी ही बार सफ़र में कितनी ही ई-बुक्स को मैंने सुना है।

तकनीक की इस अहमियत को शिक्षा के सन्दर्भ में भी देखा-समझा गया, और उसे स्कूली शिक्षा में भी शामिल किया गया। एनसीईआरटी ने पाठों को रुचिकर ढंग से पढ़ाने को लेकर ऑडियो-वीडियो तैयार किए, और उनके लिंक पाठों के साथ बारकोड के रूप में दिए हैं। शिक्षक प्रशिक्षण में भी ऑनलाइन उपलब्ध लेख, किताबें, किताबों के सन्दर्भ, आदि का उपयोग काफ़ी हो रहा है।

शिक्षक साथियों के लिए अब रीडिंग कॉर्नर की पहुँच बढ़ गई है। कई स्कूलों में शिक्षक पाठ पढ़ाने से पहले उससे सम्बन्धित कोई कहानी, कविता, आदि यूट्यूब पर ढूँढ़कर बच्चों से साझा करते हैं। ये ऑडियो-वीडियो किसी भी रूप में होते हैं, और बच्चे इनमें काफ़ी रुचि लेते हैं।

देहरादून के धोरण स्कूल की शिक्षिका अंजली का फ़ोन बच्चों का लर्निंग सेंटर बना रहता है। बच्चे ख़ुद कहानियाँ, कविताएँ ढूँढ़कर सुनते हैं, और रोल प्ले करते हैं। वे कई बार नई कहानी ढूँढ़कर मैडम को सुनाते हैं। फ़ोन का उपयोग कई तरह से होता है। मैडम एक समूह की ओर इशारा करते हुए कहती हैं, "वो रहा हमारा रीडिंग कॉर्नर।" वे सीखने की दक्षता के आधार पर बने आठ से दस बच्चों के समूह में उनके स्तर की कोई वीडियो कहानी लगा देती हैं, जिसे बच्चे देखते हैं। बच्चे ख़ुद कहानी को बीच में रोकना, उसपर बातें करना, फिर आगे बढ़ाना, आदि काम करते हैं। इसके लिए शिक्षिका ने बच्चों को तैयार किया है, और स्वयं तय करने की आज़ादी भी दी है। इसके अलावा, शिक्षिका ने स्कूल में स्पीकर भी रखा है। इसका उपयोग वे बच्चों को ऑडियो कहानियाँ सुनाने के लिए करती हैं। ऑडियो या वीडियो माध्यम से सुनी हुईं इन कहानियों पर चर्चा करने में शिक्षिका सभी बच्चों को शामिल करती हैं। वे इस चर्चा को लिखने-पढ़ने से भी जोड़ती हैं।

अजबपुर स्कूल की शिक्षिका कुसुमलता के स्कूल में बड़े स्क्रीन का टीवी इसीलिए लगाया गया, ताकि बच्चे बड़े स्क्रीन पर कहानियों को देख सकें और उनका आनन्द ले सकें। वे बताती हैं, "*पंचतंत्र* की कहानियों से लेकर *बरखा* सीरीज़ की किताबें सब ऑनलाइन मिल जाती हैं। बच्चे काफ़ी आनन्द भी लेते हैं।" मैंने उनसे पूछा, "लेकिन किताबें तो पढ़ना-लिखना सिखाने का काम करती हैं, ऐसे में ऑडियो-विज़ुअल मीडिया काम कैसे करता है?" उन्होंने कहा, "जो किताबें ऑनलाइन मौजूद हैं उन्हें हम स्क्रीन पर लगाते हैं। बड़े रंगीन चित्र और वाक्य देखकर बच्चे ख़ुद ही मन से पढ़ने की कोशिश करते हैं।"

स्क्रीन पर चमकते बड़े-बड़े रंगीन चित्र और छोटे-छोटे शब्दों वाले वाक्यों को बच्चे धीरे-धीरे पढ़ते हैं। जो बच्चे पढ़ना नहीं जानते, वे पढ़े जा रहे शब्दों को ध्यान से देखते हैं। मैडम उन शब्दों को ज़ूम करके बड़ा कर देती हैं। अगर कोई बच्चा ग़लत पढ़ता है, दूसरे बच्चे उसे ठीक करते हैं। इस तरह मिलजुलकर पढ़ने की प्रक्रिया होती है। यहाँ की प्रक्रिया को देखकर मुझे लगा कि इससे उनकी दिलचस्पी व आत्मविश्वास बढ़ता होगा, और वे किताबों को भी पढ़ते होंगे।

शिक्षिका ने बताया, "बच्चों ने और मैंने साथ मिलकर *मालगुड़ी डेज़* देखा और उसपर बातचीत की। इन कहानियों को देखकर उन्हें कैसा लगा, इसको वो लिखते भी हैं। कई बार मैं आधी कहानी चलाकर रोक देती हूँ, और बच्चों से इसे पूरा करने के लिए कहती हूँ। बच्चे इस काम को बड़े मज़े से करते हैं। इस सबसे मेरा काम काफ़ी आसान हो गया है, और मुझे भी पढ़ाने में ज़्यादा मज़ा आने लगा है।"

क्या इंटरनेट का उपयोग बच्चों को बिगाड़ सकता है? इस सवाल पर शिक्षिका रजनी रावत कहती हैं, "सवाल इंटरनेट का नहीं, उस मार्गदर्शन का है जो बच्चों को प्रेरित व गाइड करता है कि वे किस तरह की सामग्री देखें और उसे कैसे चुनें। साथ ही, यह सोचना भी ज़रूरी है कि कितना देखें। एक बार बच्चों को कहानियाँ सुनने का चस्का लग जाए, वो वही ढूँढ़ते हैं। हाँ, थोड़ा ध्यान रखना ही होता है, और पढ़ने का चस्का हम बड़ों को भी लगना ज़रूरी है। फिर मीडियम बदलने से ज़्यादा फ़र्क़ नहीं पड़ता। मैंने न जाने कितनी कहानियाँ इंटरनेट के कारण ही पढ़ीं, और कविताओं के अब इतने पोस्टर-वीडियो बनने लगे हैं कि लगता है हर दिन कुछ नया सीखने, जानने को मिल रहा है। ई-लाइब्रेरी का उपयोग शिक्षकों व बच्चों के लिए काफ़ी मददगार हो रहा है।"

इंटरनेट पर किताबों की उपलब्धता और ज़रूरी सन्दर्भ से जुड़ी सामग्री ढूँढ़ना अब बेहद आसान हो गया है, जबकि पहले इसमें काफ़ी समय ज़ाया होता था।

बच्चों, शिक्षकों और आम पाठकों के लिए विभिन्न तरह की सामग्री ऑनलाइन उपलब्ध है। पाठक जानते ही होंगे कि एनसीईआरटी की पाठ्यपुस्तकों के साथ ही कई दूसरे राज्यों की पाठ्यपुस्तकें भी ऑनलाइन उपलब्ध हैं। एनसीईआरटी की वेबसाइट पर शिक्षकों के लिए प्रकाशित होने वाली पत्रिकाएँ, जर्नल व अन्य शिक्षण सामग्री एक क्लिक पर उपलब्ध है।

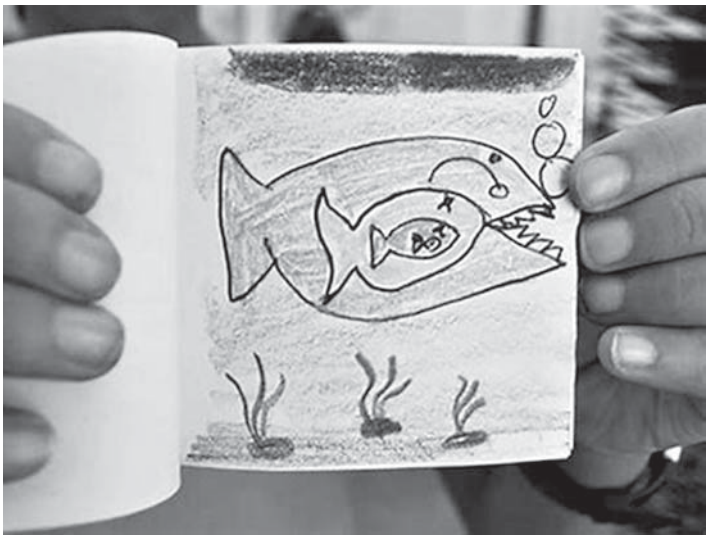

इसी तरह, एकलव्य फ़ाउण्डेशन की वेबसाइट पर बच्चों व शिक्षकों के लिए पठनीय सामग्री उपलब्ध है। इसमें बच्चों के लिए ऑडियो कहानियाँ, कविताएँ, फ़्लिप बुक्स, आदि हैं, और शिक्षकों के लिए पत्रिकाएँ, विज्ञान की अवधारणाओं पर सन्दर्शिकाएँ, कक्षा में की जाने वाली गतिविधियों पर किताबें व सन्दर्भ के लिए अन्य सामग्री उपलब्ध है।

विशेष रूप से शिक्षकों व सन्दर्भ व्यक्तियों के लिए विभिन्न शैक्षिक मुद्दों पर सन्दर्भ सामग्री, अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय की वेबसाइट पर 'अनुवाद सम्पदा' शीर्षक से उपलब्ध है। इस वेबसाइट पर भाषा, गणित, विज्ञान, सामाजिक विज्ञान, आदि के साथ इन विषयों के शिक्षणशास्त्र, सीखने-सिखाने के तरीक़ों, स्कूल व समाज के सम्बन्ध, जेंडर, कला, आदि पर सामग्री मिल सकती है। वेबसाइट पर उपलब्ध सामग्री में इन मुद्दों पर सैद्धान्तिक लेखों के साथ-साथ व्यवहारिक लेख भी हैं।

पुस्तकालय की तरह ही इन सभी वेबसाइटों पर नए मुद्दों पर सामग्री जुड़ती रहती है।

एक आम पाठक के लिए *इंटरनेट आर्काइव, कविता कोश, गद्य कोश, रेख़्ता, हिंदी समय, नेशनल डिजिटल लाइब्रेरी ऑफ़ इंडिया* जैसे ऑनलाइन मंच उपलब्ध हैं। तमाम पुस्तकालयों ने अब ई-पुस्तकालय के रूप में ख़ुद को अपडेट करना शुरू कर दिया है। कई विश्वविद्यालयों ने अपनी ई-लाइब्रेरी के पोर्टल बनाए हैं, जिनतक आसानी से पहुँचा जा सकता है। ऑनलाइन

माध्यम से अब देश-दुनिया के किसी भी कोने तक बेहद आसानी से पहुँचा जा सकता है। हालाँकि, इंटरनेट पर मौजूद ज़्यादातर सामग्री मुफ़्त है, लेकिन इसमें एक ख़तरा भी है। कई बार इंटरनेट पर कुछ सामग्री बिना किसी प्रामाणिक स्रोत के ग़लत लेखक के नाम के साथ भी मिलती है। ऐसे में पाठकों की सजगता ज़रूरी है, ताकि वे प्रामाणिक स्रोत तक पहुँच सकें।

बच्चों और शिक्षकों के लिए कुछ ऑनलाइन मंचों और वेबसाइटों के लिंक :

शिक्षकों के लिए
https://anuvadasampada.azimpremjiuniversity.edu.in/
https://www.eklavya.in/books/eklavya-books-pdf
https://www.eklavya.in/magazine-activity

बच्चों के लिए
https://www.eklavya.in/books
https://www.eklavya.in/books/flip-books
https://www.eklavya.in/books/audio-books
https://www.eklavya.in/books/eklavya-books-pdf

बरखा सीरीज़ : https://ncert.nic.in/degsn/NCERTBarkhaseries/Start.html
Story weaver: https://www.youtube.com/c/StoryWeaverHindi
https://storyweaver.org.in/en/
Story: https://www.youtube.com/watch?v=-hplYd9AX1U

प्रतिभा कटियार ने राजनीति शास्त्र में स्नातकोत्तर किया है। शुरुआत पत्रकारिता से करते हुए *स्वतंत्र भारत, पायनियर, हिन्दुस्तान, जनसत्ता, एक्सप्रेस* जैसे हिन्दी के अख़बारों में काम किया है। इसके बाद अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन के साथ जुड़कर उन्होंने शिक्षण को अपना करियर बनाया। *वह चिड़िया क्या गाती होगी* पत्र संकलन और *ख़्वाब जो बरस रहा है* व *चयनित कविताएँ* कविता संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। अंडमान यात्रा पर लिखा यात्रा संस्मरण और कविता *ओ अच्छी लड़कियों* कर्नाटक के रानी चेनम्मा विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम में शामिल हैं। उनकी दो कहानियों पर लघु फ़िल्मों का निर्माण हुआ है। उनकी कविताओं का गुजराती, मराठी और अँग्रेज़ी में अनुवाद हुआ है।
सम्पर्क : pratibha.katiyar@azimpremjifoundation.org

पढ़ना : क्या सभी ग़लतियाँ सुधरवाई जाएँ ?

मीनू पालीवाल

बच्चे, इंसान, पढ़ना कैसे सीखते हैं; यह प्रश्न जटिल के साथ-साथ दिलचस्प भी लगता है। जटिल इसलिए, क्योंकि काफ़ी प्रयासों के बाद भी कई बच्चे पढ़ना नहीं सीख पाते। और दिलचस्प इसलिए, क्योंकि बच्चों को पढ़ना सीखना ही है। यही सीखने में उन्हें आत्मनिर्भर बनाने की बुनियाद है। पढ़ना-सीखना जटिल क्यों बन जाता है; और बच्चों को पढ़ना सिखाने में क्या मददगार हो सकता है? यह लेख एक बच्चे के पढ़ने की प्रक्रिया के उदाहरणों को देते हुए इन दोनों प्रश्नों पर अपनी बात रखता है। -सं.

सिखाने की प्रक्रिया काफ़ी पेचीदा होती है। इस प्रक्रिया में बहुत सोच-विचार, आत्मचिन्तन, सही सवाल पूछकर चर्चा को दिशा देने, बच्चों में सवाल पूछने का टेम्परामेंट विकसित करने, बच्चों की बातचीत, उनके लेखन का सूक्ष्म अवलोकन करने सहित और भी बहुत-से कारक शामिल होते हैं। इसीलिए शायद यह कहा जाता है कि हम किसी को कुछ सिखा नहीं सकते, सिर्फ़ सीखने का माहौल बना सकते हैं।

पढ़ना-लिखना सीखना आज भी एक चुनौती है। इसका एक कारण पढ़ना-लिखना सिखाने की प्रक्रिया की कमियाँ हो सकता है। बच्चों को कब मदद दी जाए; कितनी मदद दी जाए; और यह मदद कैसे दी जाए? ये ऐसे प्रश्न हैं जिनका कोई एक उत्तर नहीं है। इन प्रश्नों के उत्तर परिस्थिति के हिसाब से बदलते हैं। आइए, ग़लतियों का विश्लेषण करने और ऊपर आए प्रश्नों के उत्तर की ओर बढ़ने के लिए कक्षा 3 के एक बच्चे द्वारा पढ़ी गई कहानी पर चर्चा करते हैं।

यह चर्चा शिक्षकों की मासिक बैठक में की गई थी। बैठक में एक वीडियो दिखाया गया, जिसमें बच्चा दक्षता उन्नयन टेस्ट पेपर से कहानी पढ़ रहा था। कहानी पढ़ रहे बच्चों का वीडियो देखने के लिए यहाँ क्लिक करें–
https://www.youtube.com/watch?v=JqLHtIw89gY

कहानी दक्षता उन्नयन प्रश्नपत्र में दी गई थी।

"दादाजी और राजू रोज़ नदी की तरफ़ जाते थे। एक दिन दादाजी नदी में तैर रहे थे। राजू किनारे पर बैठा था। उसको भी तैरने का मन हुआ। वह नदी में उतर गया। वह नदी में हाथ-पैर मारने लगा। दादाजी उसे तैरना सिखाने लगे। राजू को बहुत मज़ा आया। अब वह रोज़ तैरने जाता है। कुछ ही दिनों में उसने तैरना सीख लिया।"

बच्चे ने इस कहानी को इस तरह पढ़ा

1. दादाजी और राजू रोज़ ('रोज़' पढ़ने में समय लगा) नदी की तरफ़ ('तरफ़' नहीं पढ़ा) जाते थे ('थे' को 'है' पढ़ा, फिर ख़ुद-से सुधार भी किया)।
2. एक दिन दादाजी नदी ('नदी' पढ़ने में समय लगा) में तैर रहे थे।
3. राजू किनारे ('किनारे' पढ़ने में समय लगा) पर बैठा था।

4. उसको भी तैरने (‘तैरना था’ पढ़ा, फिर ख़ुद-से सुधार कर लिया) का मन हुआ।

5. वह नदी में उतर (‘उतर’ पढ़ने में समय लगा) गया।

6. वह नदी में हाथ (‘और’ पढ़ा, फिर सुधार करने की कोशिश की) पैर मारने लगा (लेकिन आगे का पूरा वाक्य ही ग़लत पढ़ा, ‘पेड़ मरने लगा’)। उस बच्चे ने वाक्य को इस तरह पढ़ा– ‘वह नदी में हाथ और पेड़ मरने लगा।’

7. दादाजी उसे तैरना सिखाने लगे।

8. अब वह रोज़ (‘रोज़’ को ‘राज’ पढ़ा) तैरने जाता (‘तैरने जाता’ को ‘तैरना जानता’ पढ़ा) है।

9. कुछ ही दिनों में उसने तैरना सीख लिया (‘सीख लिया’ को ‘सीखु लगा’ पढ़ा।)

कुछ अन्य अवलोकन

1. बच्चा ‘तैरना’ को हर जगह ‘तेहेरना’ पढ़ रहा था।

2. पढ़ने के दौरान बच्चे को कहीं पर भी टोक कर उससे सुधार नहीं करवाया गया।

3. बच्चा ‘तरफ़’ शब्द पर अटक गया था। उसे यह निर्देश दिया गया कि वह जिन शब्दों को न पढ़ पाए, उन्हें छोड़कर आगे का पढ़े।

सहजकर्ता : (बच्चे के पढ़ने का वीडियो दिखाने के बाद) “क्या आपको लगता है कि बच्चे को समझ आया होगा कि उसने क्या पढ़ा?”

सभी शिक्षक : “नहीं।”

सहजकर्ता : “क्यों नहीं समझा होगा?”

सभी शिक्षक : “बच्चे ने बहुत सारी ग़लतियाँ की हैं।”

सहजकर्ता : “आप बच्चे द्वारा की गई ग़लतियाँ चिह्नित कीजिए।”

इसके बाद बच्चे के द्वारा की गई ग़लतियों को बोर्ड पर लिखा गया। (ऊपर बच्चे का पढ़ना देखें।)

सहजकर्ता : “क्या इन सभी ग़लतियों को कहानी पढ़ने के दौरान सुधरवाना पड़ेगा ताकि बच्चा कहानी समझ सके?”

शिक्षक समूह : “नहीं, एक साथ सारी ग़लतियाँ सुधरवाएँगे तो बच्चे के मनोबल पर नकारात्मक असर होगा।”

सहजकर्ता : “ठीक बात है। फिर कौन-सी ग़लतियाँ अभी सुधरवाना ज़रूरी है?”

(शिक्षक समूह से कोई जवाब नहीं आया।)

सहजकर्ता : “इस शान्ति से शायद मैं यह समझूँ कि हम इतना सोचते ही नहीं हैं कि कौन-सी ग़लती सुधरवाई जाए और कौन-सी नहीं। जैसे ही बच्चे ने कुछ ग़लत पढ़ा, तुरन्त ही सुधार करवा दिया, और वह भी एक ही तरीक़े से, ‘स्वयं पढ़कर बता देना’। पढ़ने में मौखिक भाषा, अनुमान, पूर्वज्ञान जैसे कारकों पर हमें अभी समझ बनाने की ज़रूरत है। दूसरा, हमारे लिए हर ग़लत पढ़ा शब्द एक बराबर महत्ता रखता है, जबकि पढ़ने की रणनीति में महत्त्वहीन शब्दों को छोड़ देना जैसी बातें भी शामिल हैं।

यहाँ पर वीडियो का अगला हिस्सा दिखाया गया। वीडियो के लिए क्लिक करें–

https://www.youtube.com/watch?v=0UDR1lBdUwg&t=14s

इस वीडियो में बच्चे से प्रश्न किया जा रहा है कि कहानी में क्या समझ आ रहा है, बताओ! इसपर बच्चा फिर से कहानी ही पढ़ने लग जाता है। आमतौर पर सभी स्कूलों में ऐसा ही देखने

को मिलता है (ज़रा सोचिए, ऐसा क्यों होता होगा!)। आमतौर पर याद करना और दोहरा देना ही सीख लेना मान लिया जाता है।

कहानी की समझ जाँचने के लिए बच्चे से कुछ प्रश्न किए गए।

मैं : "कहानी में कौन-कौन हैं?"

बच्चा : "राजू और दादाजी।"

मैं : "क्या कर रहे हैं वो दोनों?"

बच्चा : "नदी में नहा रहे हैं।"

मैं : "दादाजी, राजू को कुछ सिखा रहे हैं क्या?"

बच्चा : "हाँ, तैरना सिखा रहे हैं।"

मैं : "क्या राजू तैरना सीख गया?"

बच्चा : "हाँ।"

अब आप देख सकते हैं कि बच्चे को कहानी समझ आ गई थी। इस वीडियो के पहले हिस्से को विभिन्न शैक्षिक सत्रों में 200 से 250 शिक्षकों को दिखाया गया। सभी को लगा कि बच्चे को कहानी समझ नहीं आई होगी। ऐसा क्यों हुआ जो इतने बड़े समूह को लगा कि बच्चे को कहानी नहीं समझ आई होगी? इसका उत्तर पढ़ने की आमतौर पर स्वीकृत परिभाषा में है। पढ़ना, यानी, लिखे हुए के समकक्ष बोल देना। जैसा लिखा है वैसा ही पढ़ा जाना चाहिए, यही अच्छे पठन का पैमाना होता है।

इस छोटी-सी कहानी में कुल 64 शब्द हैं। बच्चे ने 7 शब्द (रोज़, तैरने, पैर, मारने, जाता, सीख, लिया) ग़लत पढ़े; 3 शब्दों (नदी, किनारे, उतर) को पढ़ने में अतिरिक्त समय लिया; 1 शब्द (तरफ़) छोड़ दिया; और 2 जगह ख़ुद-से सुधार भी किया।

यदि इस तरह से देखें, तब समझ आता है कि पढ़ने में ग़लतियों का प्रतिशत ज़्यादा नहीं है। और कहानी को समझने के लिए हर शब्द एक बराबर ज़रूरी नहीं होता।

इन ग़लतियों का यदि हमें विश्लेषण करना है, तब ऐसे कुछ प्रश्नों पर विचार करना होगा :

1. यह बच्चा इन शब्दों को क्यों नहीं पढ़ पाया होगा?
2. क्या ये शब्द, अर्थ निर्माण के लिए बहुत ज़्यादा ज़रूरी हैं?
3. क्या आगे पढ़कर इन शब्दों के, इनके अर्थ के बारे में कुछ अनुमान लगाया जा सकता है?
4. 'रोज़' शब्द कहानी की शुरुआत में पढ़ लिया, पर आख़िर में ग़लत पढ़ा, क्यों?
5. बच्चे द्वारा कुछ शब्दों को पढ़ने में ज़्यादा समय क्यों लिया गया?
6. पहले वाक्य में 'नदी' जल्दी पढ़ लिया गया और दूसरे वाक्य में 'नदी' पढ़ने में समय लगा, क्यों?
7. कई जगह बच्चे ने ख़ुद-से दोबारा पढ़कर सुधार कैसे कर लिया?
8. कोई शब्द जो लिखा ही नहीं था, उसे बच्चे ने कैसे पढ़ लिया? (छठवें वाक्य में 'और' लिखा ही नहीं था, पर पढ़ा गया।)

हो सकता है इन सभी प्रश्नों के उत्तर हमें न मिलें, लेकिन यह बात समझ आती है कि हर ग़लती एक-सी नहीं है। 'तरफ़' कठिन शब्द की श्रेणी में भी नहीं आता, फिर भी बच्चे ने इस शब्द को छोड़ दिया। और इतनी सारी ग़लतियों के बाद भी बच्चे ने कहानी का भावार्थ समझ लिया था।

कार्यशाला में शिक्षक समूह से पूछा गया, क्या हर जगह सुधार करवाते तो बच्चे को समझने में परेशानी होती? एक बड़े समूह की सहमति थी, हाँ, परेशानी होती।

अब इस अन्तर्विरोध को महसूस कीजिए। सुधार हम इसलिए करवाते हैं ताकि बच्चे को समझ आए, और उसका पठन बेहतर हो। और यहाँ पर समूह इस बात से सहमत है कि हर जगह सुधार करवाने से बच्चे को अर्थ तक पहुँचने में परेशानी होती। इस परेशानी पर शिक्षकों ने कहा कि कुछ ही जगह सुधार करवाइए।

इस पृष्ठभूमि में ऐसे कुछ प्रश्न भी ज़रूरी हो जाते हैं :

1. आप कहानी में किन ग़लतियों को सुधरवाएँगे और क्यों?
2. किन ग़लतियों को इस वक़्त नहीं सुधरवाएँगे और क्यों?
3. क्या सुधार करवाने का यही एक तरीक़ा होगा कि आप स्वयं सही पढ़कर बता दें?

मेरे विचार

मैंने अपने कई लेखों में पढ़ने के दौरान अनुमान, अर्थ, सन्दर्भ, शब्द पहचान, मौखिक भाषा के प्रभाव, और ये सभी कारक पढ़ने को किस तरह प्रभावित करते हैं, इन मुद्दों पर विस्तार से बात की है। यहाँ पर भी यह बातें लागू होती हैं। इस लेख में, मैं यह बात रखूँगी कि किस ग़लती पर काम किया जाना चाहिए और किन कक्षा प्रक्रियाओं को अपनी कक्षा में जगह देकर हम बच्चों को अर्थपूर्ण तरीक़े से पढ़ना सिखा सकते हैं। मैं इन ग़लतियों में केवल 'हाथ-पैर मारना' और 'सीख लिया' में सुधार करवाऊँगी, क्योंकि इन ग़लतियों से अर्थ बहुत ज़्यादा प्रभावित होता है। 'हाथ-पैर मारने लगा' एक मुहावरा है और 'सीख लिया' कहानी का अन्त है। बाक़ी जो अनुमान की ग़लतियाँ हैं, उनमें से कई मौखिक भाषा के असर की वजह से हैं। ये ग़लतियाँ इस तरफ़ इशारा करती हैं कि बच्चा अपने पढ़े हुए में से अर्थ निर्माण करने की कोशिश कर रहा है (मौखिक भाषा के असर को ग़लती कहना वैसे भी ठीक नहीं है)। यह इसी बात का सबूत है कि बच्चे ने ख़ुद-से कई जगह सुधार भी किया है। मसलन, चौथे वाक्य में उसने पहले पढ़ा, 'उसको भी तैरना था'; फिर सुधार करके पढ़ा, 'उसको भी तैरने का मन हुआ'। कुछ ग़लतियाँ शब्द के मौखिक रूप से परिचित न होने के कारण, जल्दी पढ़ने की कोशिश में, या थोड़ी घबराहट के कारण भी हो सकती हैं (क्योंकि बच्चा बोलकर पढ़ रहा है और कोई वयस्क उसको सुन रहा है)। और भी कुछ कारण हो सकते हैं। बहुत सम्भावना यह भी है कि जब यही बच्चा इस कहानी को दोबारा पढ़ेगा, वह इसे बेहतर पढ़ेगा। यह मैंने एक दूसरे स्कूल में कुछ और बच्चों के साथ महसूस भी किया है।

यहाँ आमतौर पर कक्षा में पढ़ना बेहतर करने का जो औज़ार है, वह 'तुरन्त सुधार करवाना' है। क्या यह औज़ार असल में बेहतर पढ़ने में बच्चे की मदद करता है? इसपर सोचने की ज़रूरत है। यदि शिक्षक द्वारा तुरन्त सुधार करा दिया जाएगा, तब जैसे इस बच्चे ने ख़ुद-से बहुत-सी जगह सुधार किया है, यह मौक़ा बच्चों को कैसे मिलेगा!

पढ़ना एक रेखीय प्रक्रिया नहीं है

कक्षा 1 और 2 के सीखने के प्रतिफलों में इनपर काम करना अपेक्षित है। (चित्रों को देखें)

- प्रिंट (लिखा या छपा हुआ) में मौजूद अक्षर, शब्द और वाक्य की इकाइयों की अवधारणा को समझते हैं, जैसे– 'मेरा नाम विमला है।' बताओ, इस वाक्य में कितने शब्द हैं?/ 'नाम' शब्द में कितने अक्षर हैं या 'नाम' शब्द में कौन-कौन से अक्षर हैं?

- प्रिंट (लिखा या छपा हुआ) में मौजूद अक्षर, शब्द और वाक्य की इकाइयों को पहचानते हैं, जैसे– 'मेरा नाम विमला है।' बताओ, यह कहाँ लिखा हुआ है?/ इसमें 'नाम' कहाँ लिखा हुआ है?/ 'नाम' में में 'म' पर अँगुली रखो।

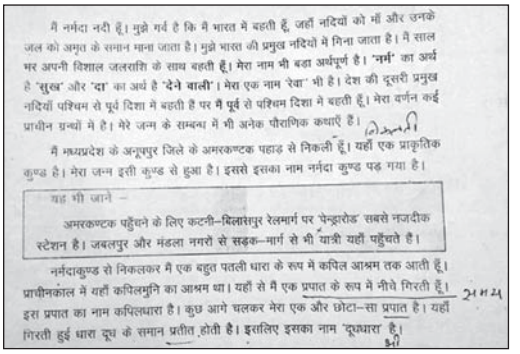
मैं नर्मदा नदी हूँ। मुझे गर्व है कि मैं भारत में बहती हूँ, जहाँ नदियों को माँ और उनके जल को अमृत के समान माना जाता है। मुझे भारत की प्रमुख नदियों में गिना जाता है। मैं साल भर अपनी विशाल जलराशि के साथ बहती हूँ। मेरा नाम भी बड़ा अर्थपूर्ण है। 'नर्म' का अर्थ है 'सुख' और 'दा' का अर्थ है 'देने वाली'। मेरा एक नाम 'रेवा' भी है। देश की दूसरी प्रमुख नदियाँ पश्चिम से पूर्व दिशा में बहती हैं पर मैं पूर्व से पश्चिम दिशा में बहती हूँ। मेरा वर्णन कई प्राचीन ग्रन्थों में है। मेरे जन्म के सम्बन्ध में भी अनेक पौराणिक कथाएँ हैं।

मैं मध्यप्रदेश के अनूपपुर जिले के अमरकण्टक पहाड़ से निकली हूँ। यहाँ एक प्राकृतिक कुण्ड है। मेरा जन्म इसी कुण्ड से हुआ है। इससे इसका नाम नर्मदा कुण्ड पड़ गया है।

यह भी जानें –

अमरकण्टक पहुँचने के लिए कटनी–बिलासपुर रेलमार्ग पर पेन्ड्रारोड सबसे नजदीक स्टेशन है। जबलपुर और मंडला नगरों से सड़क–मार्ग से भी यात्री यहाँ पहुँचते हैं।

नर्मदाकुण्ड से निकलकर मैं एक बहुत पतली धारा के रूप में कपिल आश्रम तक आती हूँ। प्राचीनकाल में यहाँ कपिलमुनि का आश्रम था। यहाँ से मैं एक प्रपात के रूप में नीचे गिरती हूँ। इस प्रपात का नाम कपिलधारा है। कुछ आगे चलकर मेरा एक और छोटा–सा प्रपात है। यहाँ गिरती हुई धारा दूध के समान प्रतीत होती है। इसलिए इसका नाम 'दूधधारा' है।

ये प्रतिफल इस बात को इंगित करते हैं कि अर्थपूर्ण तरीक़े से सीखने के लिए कविता या कहानी जैसी अर्थपूर्ण सामग्री पर काम करना होगा। उस सामग्री पर बहुत-सी बातचीत की जाएगी। इस बातचीत से कुछ शब्दों और वाक्यों के द्वारा पढ़ना सिखाया जाएगा, लेकिन पारम्परिक प्रणाली इसके बिलकुल उलट है।

यह इतना ज़रूरी क्यों है ?

इसी टूल पर काम करते हुए मैंने बच्चे को दो नए वाक्य पढ़ने के लिए कहा।

इसका वीडियो देखने के लिए क्लिक करें–

https://www.youtube.com/watch?v=ixEgGV8MnWs&t=2s

1. घर के बाहर कूड़ा मत फेंको।
2. मेरी गाड़ी का रंग पीला है।

बच्चा, कूड़ा और पीला को अलग तरीक़े से नहीं पढ़ पाया (उसने कूड़ा को 'कूड़' और पीला को 'पिला' पढ़ा)। लेकिन वाक्य में प्रयोग करने पर वह अपने प्रयास से पढ़ पाया, क्योंकि वाक्य ने बच्चे को सन्दर्भ दिया। इस सन्दर्भ से बच्चा अनुमान लगा पाया।

जैसा कि आपने देखा होगा, बच्चा ऊपर लिखे दूसरे वाक्य को पढ़कर अर्थ नहीं समझ पा रहा था। लेकिन जैसे ही बच्चे की वाक्य में आए शब्द 'रंग' को पढ़ने में मदद की गई, उसने पूरा वाक्य पढ़ दिया। जैसे ही रंग शब्द समझ आया, बच्चा 'पीला' शब्द समझ गया और पढ़ पाया। यहाँ आप देख सकते हैं कि किसी शब्द का अर्थ पता होना, किस तरह पढ़ने में मदद करता है। इन दो उदाहरणों से इस बात की सम्भावना नज़र आती है कि अलग से शब्द, वाक्य या अक्षर पढ़ना शायद थोड़ा कठिन होगा। लेकिन कक्षाओं में अक्षर, मात्रा और शब्द पढ़ाने पर ही ज़ोर रहता है। सही मायनों में पढ़ना सीखने में इनपर ज़ोर देना बिलकुल भी मददगार नहीं होता। यह समझने के लिए इसी कार्यशाला के आगे के सत्र में एक शिक्षक द्वारा एक पाठ 'नर्मदा की आत्मकथा' पढ़ा गया।

शिक्षक के पढ़ने में भी कुछ अवलोकन वैसे ही दिखे, जैसे बच्चे के पढ़ने में थे। मसलन,

1. कुछ शब्दों को पढ़ने में अतिरिक्त समय लेना;
2. कुछ शब्दों को बदलकर पढ़ना;
3. कुछ जगह ग़लत पढ़े जाने के कारण दोबारा उन शब्दों पर जाना और उन्हें पढ़ना;
4. जो शब्द लिखा ही नहीं है वह पढ़ा जाना; आदि।

उदाहरण के लिए, पाठ में लिखा था– "मैं मध्यप्रदेश के अनूपपुर ज़िले के अमरकण्टक पहाड़ से निकली हूँ।"

पढ़ा गया– "मैं मध्यप्रदेश के अनूपपुर ज़िले के अमरकण्टक पहाड़ से निकलती हूँ।"

लिखा था– "इसीलिए इसका नाम दूधधारा है।"

पढ़ा गया– "इसीलिए इसका नाम दूधधारा भी है।"

लिखा था– "गुजरात में नवगाँव नामक स्थान पर मुझपर बाँध बनाया गया है।"

पढ़ा गया– "गुजरात में नयागाँव नामक स्थान पर मुझपर बाँध बनाया गया है।"

लिखा था– "मेरे तट पर अनेक गाँव व नगर बसे हैं।"

पढ़ा गया– "मेरे तट पर अनेक गाँव और नगर बसे हैं।"

लिखा था– "कितना प्यार भरा है इस गीत में।"

पढ़ा गया– "जितना प्यार भरा है इस गीत में।"

लिखा था– "यहाँ से मैं एक प्रपात के रूप में नीचे गिरती हूँ।"

('प्रपात' पढ़ने में कुछ क्षणों का समय लिया गया।)

इसी तरह 'प्रतीत' और 'कृत्रिम' शब्दों को पढ़ने में भी थोड़ा समय लगा।

इसी तरह के और भी अवलोकन थे। शिक्षक जब पाठ पढ़ चुके, तब प्रतिभागियों के समक्ष यह प्रश्न रखा गया, क्या अभी आपके साथी द्वारा जो पाठ पढ़ा गया उसमें कुछ ग़लतियाँ हुईं; क्या उन्हें 'ग़लतियाँ' कहा जाना चाहिए; और आप लोगों ने अपने साथी को रोक कर सुधार क्यों नहीं करवाया?

कुछ देर के सामूहिक मौन के बाद मैंने कुछ बातें समूह के सामने रखीं। मैंने कहा कि आपने अपने साथी को शायद इसलिए नहीं टोका होगा क्योंकि शिक्षक के द्वारा किसी शब्द को न पढ़ने से, या जो शब्द नहीं लिखा है उसे जोड़ देने से, अर्थ नहीं बदल रहा था।

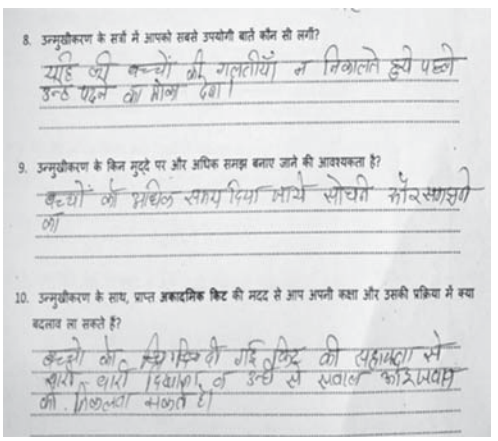

उस वक़्त मेरे मन में यह बात भी आई कि शायद शिक्षक समूह अपने साथी को छोटा महसूस नहीं करवाना चाहते होंगे। यह भी एक कारण हो सकता है सुधार न करवाने का। लेकिन बच्चों के साथ काम करने के दौरान यह संवेदना कम ही देखने को मिलती है।

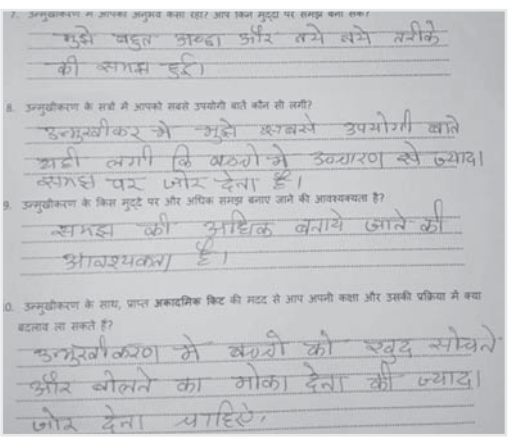

इस पूरी प्रक्रिया का उद्‌देश्य यह था कि शिक्षक पढ़ने की अपनी परिभाषा में बदलाव करें। वे जैसा लिखा है वैसा ही पढ़ने का आग्रह छोड़कर, बच्चे को पढ़ने के दौरान तुरन्त सुधार के डर से आज़ाद होकर, अनुमान के साथ समझते हुए पढ़ने का मौक़ा दें। इसके लिए भाषा शिक्षण में नीचे लिखी गईं पद्धतियों को कक्षा में जगह देने का आग्रह किया गया।

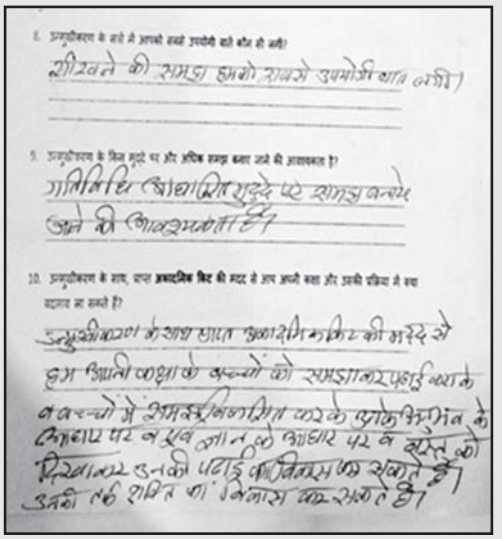

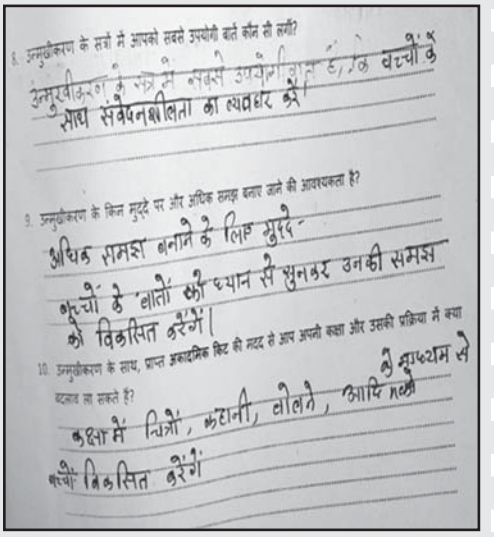

8. उन्मुखीकरण के सत्रों में आपको सबसे उपयोगी बातें कौन सी लगीं?

सीखने की समझ हमको सबसे उपयोगी बात लगी।

9. उन्मुखीकरण के किन मुद्दे पर और अधिक समझ बनाए जाने की आवश्यकता है?

गतिविधि आधारित मुद्दे पर समझ बनाये जाने की आवश्यकता है।

10. उन्मुखीकरण के साथ, प्राप्त अकादमिक किट की मदद से आप अपनी कक्षा और उसकी प्रक्रिया में क्या बदलाव ला सकते हैं?

उन्मुखीकरण के साथ प्राप्त अकादमिक किट की मदद से हम अपनी कक्षा के बच्चों को समझाकर पढ़ाई करा के व बच्चों में समझ विकसित करके अनुभव के आधार पर व पूर्व ज्ञान के आधार पर व [illegible] को सिखाकर उनकी पढ़ाई का विकास कर सकते हैं। उनकी [illegible] शक्ति का विकास कर सकते हैं।

8. उन्मुखीकरण के सत्रों में आपको सबसे उपयोगी बातें कौन सी लगीं?

उन्मुखीकरण के सत्र में सबसे उपयोगी बात है, कि बच्चों के साथ संवेदनशीलता का व्यवहार करें।

9. उन्मुखीकरण के किन मुद्दे पर और अधिक समझ बनाए जाने की आवश्यकता है?

अधिक समझ बनाने के लिए मुद्दे- बच्चों के बातों को ध्यान से सुनकर उनकी समझ को विकसित करेंगे।

10. उन्मुखीकरण के साथ, प्राप्त अकादमिक किट की मदद से आप अपनी कक्षा और उसकी प्रक्रिया में क्या बदलाव ला सकते हैं?

कक्षा में चित्रों, कहानी, बोलने, आदि के माध्यम से बच्चों विकसित करेंगे

1. पढ़ने के दौरान सुधार न करवाएँ। बच्चे के पढ़ने में यदि किसी तरह का पैटर्न दिख रहा है, तो उसे नोट करें।
2. बच्चे को मौखिक पठन के दौरान कोई अनुच्छेद और / या कुछ लाइनें पूरी पढ़ने दें।
3. पढ़ लेने के बाद बच्चे से ज़रूर पूछें कि उसने जो पढ़ा है, शॉर्ट में बताए।
4. न बता पाने की स्थिति में कक्षा के दूसरे बच्चों को इसका उत्तर देने का मौक़ा दें।
5. जिन ग़लतियों से अर्थ बहुत ज़्यादा प्रभावित होता है, शुरुआत में उन्हीं ग़लतियों पर काम करें।

सत्र के अन्त में शिक्षकों से फ़ीडबैक लिया गया। इस फ़ीडबैक में शिक्षकों ने जो कहा, वह आप दिए गए फ़ीडबैक फॉर्म में देख सकते हैं। हमें इस बात कि ख़ुशी है कि हम अपनी बात शिक्षकों तक पहुँचा पाए।

नोट

मध्यप्रदेश में आकलन के लिए दक्षता उन्नयन टूल का इस्तेमाल होता है। इस टूल में पढ़ने का स्तर देखने के लिए पहले अक्षर, फिर शब्द, फिर वाक्य और अन्त में कहानी पढ़ना होता है। इस टूल में आपने देखा कि एक बच्चा कहानी पढ़कर तो समझ लेता है, पर कुछ शब्द पढ़ने में उसे परेशानी होती है। चूँकि पढ़ना एक रेखीय प्रक्रिया नहीं है, इसलिए इस टूल की भी अपनी सीमा है।

मीनू पालीवाल ने अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन में 6 वर्ष काम किया है। आप फ़ेलोशिप प्रोग्राम के ज़रिए अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन से जुड़ीं। इससे पहले उन्होंने 6 वर्ष आईसीआईसीआई बैंक में काम किया। वे अपने मन में आने वाले सवालों की तलाश में शिक्षा और शिक्षण प्रक्रिया से जुड़ीं। उन्हें प्राथमिक कक्षाओं में काम करना अच्छा लगता है।

सम्पर्क : paliwal.meenu@gmail.com

दीवार पत्रिका और अभिव्यक्ति के मौक़े

लवकुश यादव

शिक्षकों ने अपने स्कूल में दीवार पत्रिका बनाने का काम कैसे शुरू किया और उसके क्या प्रतिफल रहे, इस लेख में इसी काम का ब्योरा है। दीवार पत्रिका के बारे में हम सबने सुन ही रखा है और यह अवधारणा बहुत नई नहीं है। लेकिन इस लेख में हुए शिक्षकों के अनुभव, बच्चों के लेखन के नमूने एक नई ताज़गी का अहसास देते हैं। -सं.

यह लेख एक शासकीय प्राथमिक शाला में दीवार पत्रिका पर किए गए कार्य का ब्योरा है। इस दौरान लेखन कौशल पर काम करते हुए यह महसूस हुआ कि बच्चे स्वरचित कहानी, त्योहार मनाने के अनुभव, सन्दर्भ एवं परिवेश के जुड़ाव के बारे में लिख पा रहे हैं।

दीवार पत्रिका क्या है ?

दीवार पत्रिका के कई स्वरूप हो सकते हैं। हमने एक कैलेंडर नुमा आवरण पर चार्ट लगाकर इसे बनाया। दीवार पत्रिका में बच्चों के लिखे हुए को स्थान दिया जाता है। इसमें विविध प्रकार के लेख शामिल किए जा सकते हैं। ये लेख सम्पादकीय, यात्रा-वृत्तान्त, मुहावरे, चुटकुले, पहेली, मौलिक कहानी-कविता, अनुभव, त्योहार, जयन्ती, दिवस विशेष से जुड़े सन्दर्भ पर अनुभव, आदि से सम्बन्धित हो सकते हैं। इसमें शामिल पहलुओं में काफ़ी विविधता हो सकती है। दीवार पत्रिका मज़बूत हो, बच्चों के हाथ लगाने, छू जाने से बिगड़े नहीं, इसके लिए इसके पीछे गत्तों का सपोर्ट भी लगा सकते हैं। पत्रिका के संयोजन, प्रबन्धन, सम्पादन, आदि की ज़िम्मेदारी बच्चे ख़ुद ही ले लें तो अच्छा है। हमारे अनुभव में यह मुमकिन हो पाया। हालाँकि, इस सब काम में थोड़ी सावधानी भी रखनी होती है। मसलन, संयोजन के समय कैंची, कटर, आदि का इस्तेमाल करने में बच्चे ख़ुद को नुक़सान पहुँचा सकते हैं। ऐसी स्थिति से बचने के लिए दीवार पत्रिका तैयार करते समय शिक्षक को बच्चों के साथ रहना चाहिए। यह भी सुनिश्चित करना चाहिए कि अधिक-से-अधिक बच्चों के लेखों, चित्रों और अभिव्यक्ति को पत्रिका में स्थान मिलता रहे। इसी तरह, दीवार पत्रिका बनाने में सभी बच्चों की भूमिका हो, यह भी सुनिश्चित किया जाना चाहिए।

उद्देश्य

- बच्चे अपनी मौलिक अभिव्यक्ति को प्रदर्शित कर पाएँ;
- अपने मन से कविता / कहानी या कुछ नया सोचने और लिखने की ओर बढ़ सकें;
- लेखन के अतिरिक्त मौक़े बनाकर लेखन कौशल को और विकसित कर सकें;
- एक दूसरे के लिखे को पढ़कर ज़्यादा-से-ज़्यादा लिखने को प्रोत्साहित हो सकें; और
- इसके साथ ही, एक दूसरे की रचना को पढ़कर उसपर अपना सुझाव दे सकें और स्व-आकलन भी कर सकें।

प्रक्रिया

यहाँ जिस स्कूल की बात हो रही है, उसमें बच्चे नियमित तौर पर कुछ-न-कुछ स्वैच्छिक लेखन करते रहे थे। इस लेखन में उनकी ख़ुद की लिखीं कहानियाँ, अनुभव, कविताएँ, चित्र आदि थे, और इनका कलेक्शन बनता जा रहा था।

इसी तरह, पुस्तकालय भी एक बेहतर साधन था। यहाँ बच्चे नियमित जो पुस्तकें पढ़ते, उनपर प्रार्थना सभा और बाल सभा में चर्चा करते। कक्षा में शिक्षक भी बच्चों की पढ़ी हुईं पुस्तकों पर सवाल-जवाब करते। इस सबसे भी बच्चों की भाषा, उनके अनुभव, शब्द भण्डार, आदि में बढ़ोतरी हुई। यह सब होने के साथ बच्चों के लिए लेखन के मौक़े बनाना ज़रूरी हो गया था। ये सारे सिलसिले दीवार पत्रिका के लिए ज़मीन तैयार करने का काम कर रहे थे। समझकर सुनना-बोलना, समझकर पढ़ना-लिखना, ऐसे ही सन्दर्भों में मुमकिन है।

अक्तूबर महीने में हमने भाषा समृद्ध कक्षा पर सत्र आयोजित किए थे, जिनमें इस स्कूल के दो शिक्षकों ने भाग लिया था। इन सत्रों में दीवार पत्रिका पर भी बात हुई थी। दोनों शिक्षक साथियों को दीवार पत्रिका का विचार बेहद अच्छा लगा। बातचीत के बाद उन्होंने बच्चों के लिखे लेखों, ख़ासकर कक्षा 4 और 5 के बच्चों के लेख, चित्र, आदि, को विद्यालय की दीवार पर गोंद से चिपकाना शुरू कर दिया। जब उस स्कूल में हम अगली बार गए, कक्षाएँ बच्चों द्वारा लिखी सामग्रियों से सजी थीं। सभी बच्चे ख़ुशी-ख़ुशी अपने चित्र, लेख, आदि दिखा रहे थे। इस विज़िट के दौरान शिक्षक साथियों ने बताया कि मासिक बैठक सत्र में शामिल होने के बाद उन्होंने यह काम शुरू किया है। इसी दिन हमने शिक्षक साथियों से बात की कि इसे और बेहतर करने के लिए कुछ और भी सोच सकते हैं। अभी यह चित्र और लेख टुकड़ों में लगे हैं, अगर हम इन्हें एक साथ एक-दो जगह लगा सकें, यह और आकर्षक हो सकेगा। साथ ही यह भी कि तब ज़्यादा बच्चे इन्हें देख पाएँगे। यह कैसे हो पाएगा, इसका एक सुझाव बैठक में मिला ही था कि बच्चों के लिखे लेखों को चार्ट पर लगाकर प्रदर्शित कर सकते हैं। शिक्षक का कहना था कि चार्ट के पीछे गत्ता लगा सकते हैं। इससे चार्ट टिकाऊ हो सकेगा और फटेगा भी नहीं। दूसरी शिक्षिका ने कहा कि चार्ट को बच्चों द्वारा सजाने एवं लेख चिपकाने में वह उनके साथ मिलकर काम कर सकेंगी। इन ज़िम्मेदारियों को बाँट लेने के बाद बच्चों के साथ मिलकर हमने दीवार पत्रिका को शुरू किया।

बच्चों के साथ अगर नियमित संवाद का माहौल बनाया जाए, तब वे मौखिक अभिव्यक्ति करते हैं। इस अभिव्यक्ति में सिर्फ़ बोलना ही नहीं है, बल्कि बोलकर अपनी बात समझाना भी है। जब हम सुनकर समझने और बोलकर

अभिव्यक्त करने की बात कहते हैं, तब उसमें विचार का बनना भी एक ज़रूरी प्रक्रिया हो जाती है। बच्चा विचार करे, यह भाषा का एक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य भी है। एक बार जब बच्चा विचार करना शुरू कर देगा, वह अभिव्यक्ति के दोनों स्तरों (मौखिक, लिखित) पर ख़ुद को अभिव्यक्त भी कर सकेगा। यह तय किया था कि हमें बच्चों को सीखने और अभिव्यक्त करने के अधिक-से-अधिक मौक़े देने हैं। इसकी शुरुआत प्रार्थना सभा से की गई। अभी तक शिक्षक साथी ही प्रार्थना सभा और प्रस्थान सभा में बच्चों के साथ कविता एवं कहानी सुनाते थे, अब बच्चे भी इस प्रक्रिया में शामिल हुए।

इसी क्रम में कक्षा में, समाचार गतिविधि की गई। इसमें बच्चे स्थानीय एवं परिवेशीय मुद्दों पर अपनी ख़बर बनाकर लाते और कक्षा में प्रस्तुत करते। धीरे-धीरे यह गतिविधि कक्षा में परिवेशीय मुद्दों को स्थान देने का प्रमुख ज़रिया बनी। यह इस मायने में महत्त्वपूर्ण रही कि बच्चे अपने आसपास की घटनाएँ (मसलन, गाँव में बन रही नाली, आसपास लगे मेले, कोई घटना-दुर्घटना, किसी का बर्थडे या कोई त्योहार मनाना, किसी यात्रा पर या कहीं घूमने जाना, आदि) कक्षा में साझा करते। शिक्षक भी इन्हीं बातों को रोज़मर्रा की चर्चा में लाते। माने, नाली कहाँ बन रही है; नाली की ज़रूरत क्यों है; नाली बनने के बाद कई लोग उसमें कूड़ा-करकट डाल देते हैं, इससे क्या नुक़सान होगा; सर्दी की छुट्टियाँ आपको कैसी लगीं; स्कूल बन्द होने पर आपको कैसा लगा; अगर आप मेले में गए तो आपको क्या पसन्द आया; मेले में कोई लड़ाई-झगड़ा तो नहीं हुआ; आप किसके साथ मेला देखने गए; आदि।

यह सब उस चर्चा के बिन्दु थे जिसको रोज़मर्रा की कक्षा प्रक्रिया में संवाद गतिविधि के रूप में शामिल किया गया। इस दौरान सभी बच्चे बेसब्री और उत्साह से संवाद एवं अनुभव रखने की प्रक्रिया में शामिल होते थे।

यही परिवेशीय अनुभव बच्चों के साथ हुई कई चर्चाओं को बेहतर बनाने में भी मदद कर रहा था। मसलन, शिक्षक जब बच्चों को 'संचार माध्यम' पाठ पढ़ा रहे थे, तब उन्होंने कहा कि आप मेला या कहीं और घूमने जाते हो तो मोटरसाइकिल या बाइक से जाते हो। लेकिन पहले के समय में जब मोटरसाइकिल, बाइक, गाड़ी, आदि नहीं थीं, तब लोग कैसे यात्रा करते होंगे? बच्चे इस सवाल पर सोचकर जवाब दे

पाए। बच्चों के साथ बातचीत के दौरान यह भूमिका बनी कि अभी भी पिसी (गेहूँ), उरद (उड़द), सोयाबीन जैसी फ़सलें बैलगाड़ी या घोड़ागाड़ी से लाते हैं। पहले लोग बैलगाड़ियों से चलते थे। बच्चों से पूछा गया, "उस समय सबके पास बैलगाड़ी भी न रही होगी तब?" बच्चे बोले, "किसी एक की बैलगाड़ी होगी और लोग उसपर बैठकर जाते होंगे।" अब शिक्षक ने बताया कि लोग पैदल भी यात्रा करते थे। अगर उन्हें कहीं जाना होता, तब वे राशन-पानी भरकर पैदल समूह में यात्रा को निकल पड़ते थे।

इसी तरह, चित्र पोस्टर पर काम के दौरान बच्चों को अलग-अलग नज़रिए से सोचने के मौक़े दिए गए। मसलन, 'बग़ीचा' पोस्टर पर हमने प्रश्न किया, "ऐसा क्या है, जो इस पोस्टर में नहीं है लेकिन आप उसे जोड़ना चाहते हैं?" लगभग सभी बच्चों ने सोचकर बताया, "यहाँ चौकीदार नहीं है, डस्टबिन नहीं है। अगर कोई कुछ खाएगा तो कूड़ा करकट कहाँ रखा जाएगा? इस पार्क में नल नहीं है। अगर किसी को प्यास लगी, वह पानी कहाँ पिएगा? बग़ीचे में वाशरूम भी नहीं है।" यहाँ बच्चे सोच-विचार करते हुए तुलना भी कर पा रहे थे और अपनी बात को चित्र से जोड़कर भी रख पा रहे थे। ऐसे ही एक बार 'आम' पर चर्चा हुई कि आम से क्या-क्या बनता है। बच्चों ने क्रम से बताया, चटनी, खटाई, मुरब्बा, आदि। एक बच्चा बोला, "आम से आमलेट भी बनता है।" इस बात पर शिक्षिका सहित सभी बच्चे हँस दिए। उस बच्चे से पूछा गया कि आम से आमलेट कैसे बनेगा। उसने बताया, "आम को जब काटते हैं, तो वह पीला-पीला होता है। मैंने देखा है कि आमलेट भी बनते समय पीला-पीला होता है और फिर वह रोटी जैसा हो जाता है।" सभी बच्चों के साथ शिक्षिका भी उसके द्वारा की गई तुलना को सराह रही थीं।

स्कूल में दशहरे व सर्दियों की छुट्टियों और अगर कोई त्योहार आया तो उसपर भी

चित्र पोस्टर पर काम के दौरान बच्चों के लेखन नमूने

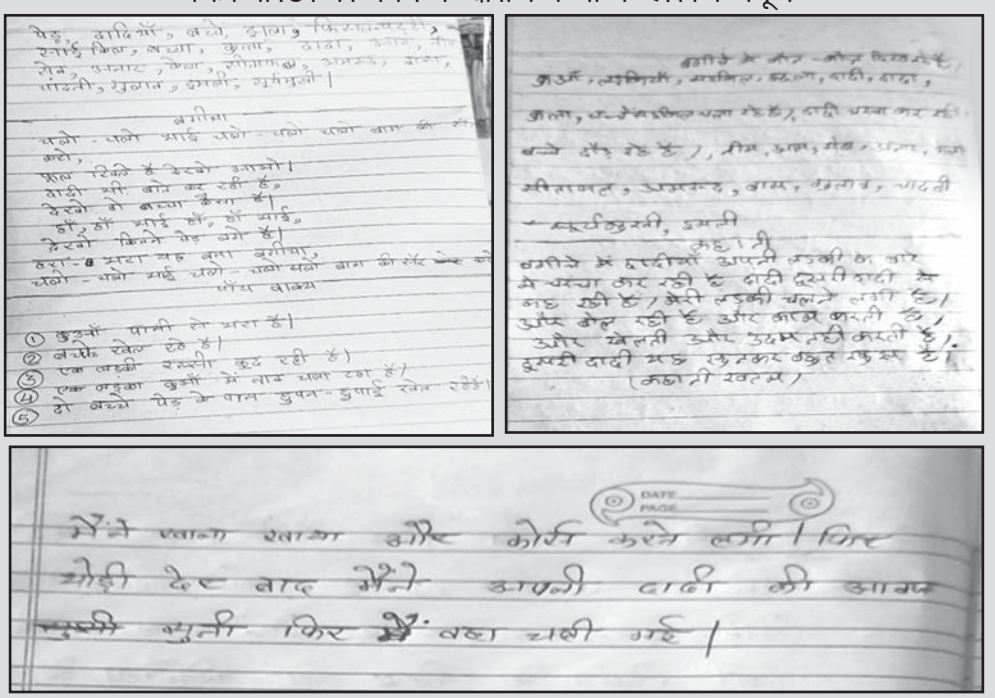

बच्चों से संवाद किया गया। मसलन, उन्होंने इन छुट्टियों में क्या किया, कहाँ गए, कैसे त्योहार मनाया, आदि। ऐसे ही सवाल-जवाब द्वारा बच्चों के अनुभवों को सामने लाकर उन्हें समृद्ध करते हुए लेखन में लाया जाता। हालाँकि, प्रार्थना सभा, बाल सभा और प्रस्थान सभा में सभी बच्चे एक साथ मौखिक अभिव्यक्ति प्रक्रिया में भाग लेते ही थे।

लेखन के स्तर पर यह दीवार पत्रिकाएँ मुख्य रूप से चौथी-पाँचवीं के बच्चों ने बनाई थीं, लेकिन इनको सभी कक्षाओं के बच्चों को दिखाया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि पहली से तीसरी कक्षा के बच्चों ने भी चित्रात्मक अभिव्यक्ति करने की कोशिश की। तीसरी कक्षा के बच्चों ने अपने बनाए चित्रों को दीवार पर चिपकाया, वहीं दूसरी कक्षा के

बच्चों के लेखन के कुछ और नमूने

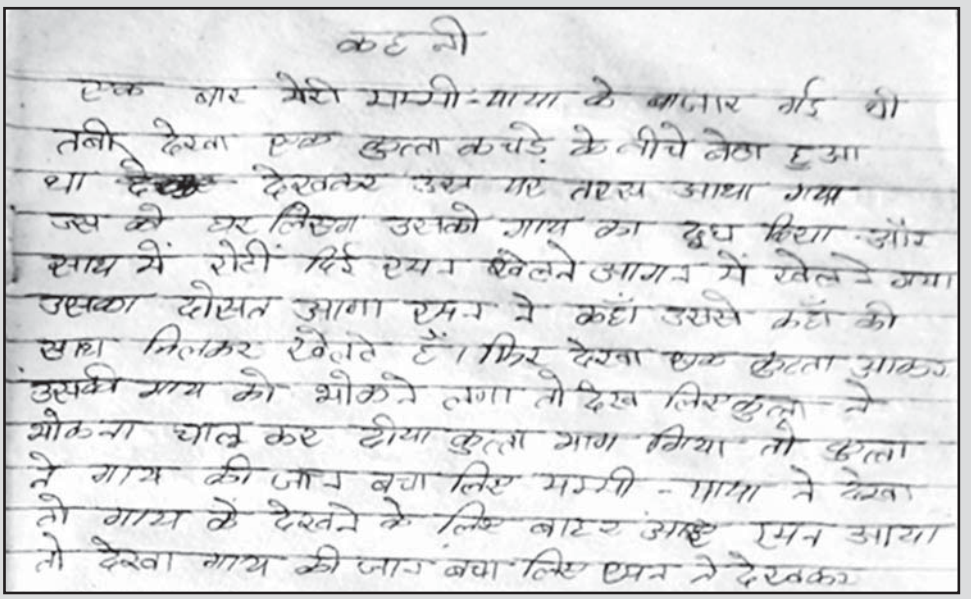

कहानी
एक बार मेरे मम्मी-पापा के बाजार गई थी
तभी देखा एक कुत्ता कचड़े के नीचे बेठा हुआ
था देख देखकर उस पर तरस आया गया
उस को घर लिया उसको गाय का दुध दिया और
साथ में रोटी दिई रमन खेलने आगन में खेलने गया
उसका दोसत आगा रमन ने कहा उससे कहा की
साथ मिलकर खेलते हैं। फिर देखा एक कुत्ता आकर
उसकी गाय को भोकने लगा तो देख लिए कुत्ते ने
भोकना चालू कर दीया कुत्ता भाग गिया तो कुत्ता
ने गाय की जान बचा लिए मम्मी - पापा ने देखा
तो गाय के देखने के लिए बाहर आए रमन आया
तो देखा गाय की जान बचा लिए रमन ने देखकर

पुष्पा - 5
(कहानी)
रमन और पापा घर पर थे।
मम्मी बजार गई थी रमन और पापा
बेठे-बेठे सो गये। और।
गाय और कुत्ते की लड़ाई हो
रही थी। तभी मम्मी आ गई।
और गाय कुत्ते को उठाला किया।
मम्मी ने पापा और रमन को।
जगाया।

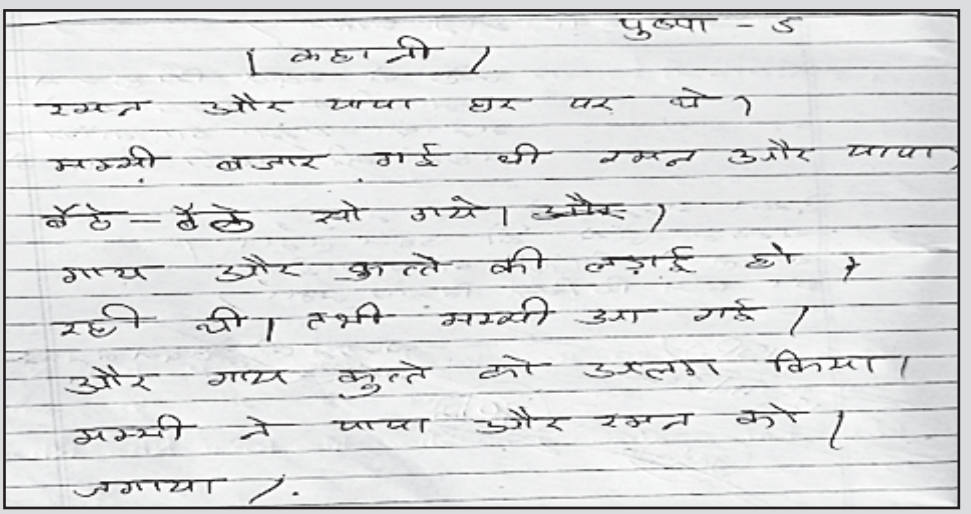

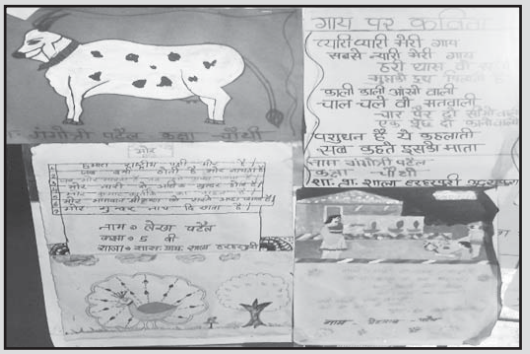

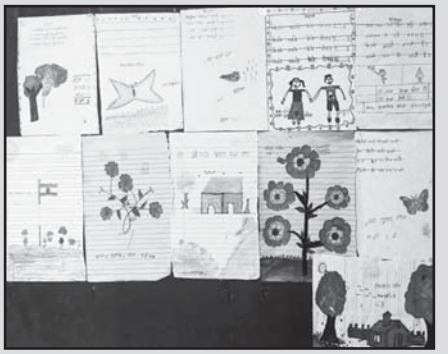

बच्चों द्वारा बनाए गए चित्रों को शिक्षक ने चार्ट शीट पर चस्पा करके दीवार पर लगाया। यहाँ हम देख पा रहे थे कि बच्चे वाक्यों को बेहतर तरीक़े से गढ़कर लिख पा रहे हैं। यह सब नियमित संवाद और लेखन के अवसर देने से सम्भव हो सका।

परिणाम

- बच्चे लिखने-पढ़ने की प्रक्रिया में शामिल हो रहे हैं। यहाँ वह गीत, चित्र, कथा-कहानी, आदि लिख-बना रहे हैं। इन सबको स्थान देने के लिए उन्हें दीवार पत्रिका का इन्तज़ार रहता है।
- इन प्रक्रियाओं में शामिल होकर बच्चों में धैर्य से सुनने और अपनी बात रखने का कौशल विकसित हुआ। दीवार पत्रिका के सामूहिक वाचन द्वारा बच्चे एक दूसरे की ग़लतियों को समझते हैं, और उन्हें सही करवाते हैं। इस तरह बच्चे ख़ुद ही सीखने-समझने में एक दूसरे की मदद कर रहे हैं।
- बच्चों के लिखे को, उनके अनुभवों को स्थान देने से उन्हें प्रोत्साहन मिल रहा है। वे सक्रियता एवं रुचि से पढ़ने-लिखने की प्रक्रिया में शामिल हो रहे हैं।
- बच्चे ख़ुद के और अपने दोस्तों के लिखे को बार-बार देख और पढ़ पाते हैं। यह उन्हें कई तरह से प्रोत्साहित करता है।
- बच्चे पहले जो टुकड़ों में लिखा करते थे, अब वे सुघड़ वाक्य विन्यास और सन्दर्भ के साथ लिख पा रहे हैं।
- शिक्षक साथी इन सब प्रयासों से काफ़ी उत्साहित हुए, और वे दिसम्बर महीने में आयोजित टीएलएम मेले में दीवार पत्रिकाओं एवं ख़ुद की बनाई टीएलएम के साथ शामिल हुए।
- संयुक्त रूप से आयोजित बाल शोध मेले में भी इस दीवार पत्रिका का बच्चों ने प्रदर्शन किया।

लवकुश यादव ने 2019 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय से हिन्दी साहित्य में परास्नातक किया है। पिछले 4 सालों से अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन में कार्यरत हैं। साहित्य पढ़ने एवं लिखने में रुचि है। बच्चों के साथ पढ़ने के अवसर एवं सृजनात्मक अभिव्यक्ति पर काम करने में गहरी रुचि है। वर्तमान में अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, जिला सागर, मध्य प्रदेश टीम में काम कर रहे हैं।

सम्पर्क : lavkush.yadav@azimpremjifoundation.org

स्वतंत्र लेखन के लिए बातचीत ज़रूरी

साहबउद्दीन अंसारी

लिखना अभिव्यक्त करने का एक तरीक़ा है। किसी भी प्रकार की अभिव्यक्ति के लिए, चाहे वह मौखिक हो या लिखित, विचारों का होना पहली शर्त है। लिखित अभिव्यक्ति के लिए लिपि का ज्ञान होना भी ज़रूरी है। लेकिन उससे भी ज़्यादा ज़रूरी है, वैचारिक चिन्तन को सीखना। इसके लिए लोगों से, किताबों से अन्त:क्रिया भी ज़रूरी है, और यह प्रक्रिया धीरे-धीरे आगे बढ़ती है। इस लेख में लेखक, बच्चों में वैचारिक चिन्तन करने की प्रक्रिया की स्कैफ़ोल्डिंग करते हुए उन्हें स्वतंत्र लेखन की तरफ़ कैसे ले जाते हैं, इसका विवरण प्रस्तुत करते हैं। -सं.

लिखना एक कला है। लिखित रूप से अपने मन की बात को अभिव्यक्त करने से लेखक और पाठक के बीच एक रिश्ता बन जाता है। लेखक क्या कहना चाहता है, पढ़ने वाले को समझ में आ जाता है। किसी भी प्रकार की अभिव्यक्ति के लिए विचारों का बनना आवश्यक है। लेकिन लिखते हुए इन विचारों का क्रम भी ज़रूरी होता है। पहले वाक्य एवं दूसरे वाक्य के बीच तारतम्यता होनी चाहिए, यह कार्य अभ्यास से ही हो सकता है। छोटे बच्चों को इस प्रक्रिया में शामिल करना एक चुनौती-भरा काम होता है। हालाँकि, अधिकांश विद्यालयों में बच्चों को लिखने की विभिन्न गतिविधियाँ करवाई जाती हैं। लेकिन इन गतिविधियों में बोर्ड या पुस्तक से देखकर लिखना, पाठ में दिए गए प्रश्नों के उत्तर लिखना, श्रुतलेख, आदि ही शामिल होते हैं।

बच्चों के साथ कार्य करते हुए मैंने यह महसूस किया है कि बच्चे बोर्ड या पुस्तक से देखकर लिखने को ही पढ़ाई-लिखाई मान लेते हैं। अकसर वे कक्षा में कहते हैं कि काम दे दीजिए। जब उनसे किसी कविता / कहानी पर बात की जाती है, वे इस बातचीत को पढ़ने-लिखने का हिस्सा ही नहीं मानते हैं। कक्षा में बच्चे अकसर कॉपी में कुछ-न-कुछ लिखते रहते हैं। इसी को वे कुछ काम करना मानते हैं। इसके पीछे तर्क यह होता है कि अभिभावक भी बच्चों की कॉपी में लिखी गई चीज़ों को ही पढ़ाई-लिखाई मानते हैं। वे सीखने के सिद्धान्त को समझते ही नहीं हैं। इसी तरह, बच्चों से पढ़वाया तो जाता है, पर उन्हें क्या समझ में आया, इसपर बात ही नहीं होती। घर पर भी बच्चे दोहराते ही हैं। इस तरह, बातचीत के अभाव में भाषा के विकास और विचारों के बनने की महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया पीछे छूट जाती है। इसका असर बच्चों के लेखन और पठन पर भी देखने को मिलता है। जिन बच्चों के साथ ज़्यादा बातचीत होती है, उनके लेखन में तारतम्यता और शब्दों का चयन अलग होता है और वे आत्मविश्वास से भरे होते हैं। वहीं, जिन बच्चों के साथ कम बातचीत होती है, उनके पास लिखने के लिए शब्दों का चयन करने में असहजता दिखने के साथ-साथ आत्मविश्वास भी कम देखने को मिलता है।

कुछ शिक्षकों का मानना है कि बच्चों की लिखावट ठीक और सुन्दर होनी चाहिए। उनका

चित्र : साहबउद्दीन अंसारी

मानना है कि बच्चा जितना अभ्यास करेगा, उतना ही उसके लेखन में सुधार आएगा। अभ्यास से सुन्दर लिखना तो सम्भव है, लेकिन जब उन्हें स्वतंत्र रूप से कुछ लिखना हो, तब ऐसा अभ्यास उनकी बहुत मदद नहीं करता। इसमें बच्चों को असहजता महसूस होती है। पुस्तक अथवा बोर्ड से देखकर लिखने (नक़ल करने) और स्वतंत्र रूप से लिखने में अन्तर है। अधिकांश बच्चे मात्रा, शब्द एवं वाक्य विन्यास सम्बन्धी ग़लतियाँ करते हैं। क्या लिखा है, उसे पढ़ने में वे अकसर जूझते दिखाई देते हैं। 'असर' की रिपोर्ट भी इस ओर इशारा करती है।

बच्चों के साथ काम के दौरान, मैंने यह समझने का प्रयास किया कि आख़िर उन्हें लिखने में क्या दिक़्क़त आती है; बच्चे लिखित कार्य करते समय चुनौती क्यों महसूस करते हैं; और वे स्वतंत्र लेखन क्यों नहीं कर पाते हैं? इन सवालों को समझने के लिए बच्चों के साथ अलग-अलग विषयों पर बात की गई। इन विषयों में गाय, पत्र, बारिश के अनुभव, झूला, आदि शामिल थे। इस काम में एनसीईआरटी की हिन्दी की पाठ्यपुस्तकों की भी मदद ली गई।

हमने कक्षा पाँच के बच्चों को 'गाय' विषय पर लिखने के लिए कहा। बच्चों ने अपनी कॉपी पर मात्रिक अशुद्धियों के साथ गाय पर कुछ वाक्य लिखे। जैसे– गाय के चार पैर होते हैं; गाय के दो सींग होते हैं; गाय के दो कान होते हैं; गाय के चार थन होते हैं; आदि। इस कार्य के बाद बच्चों को अरुण कमल द्वारा लिखा गया लेख 'सर्दियों की रात में गाय' पढ़कर सुनाया गया, और इसपर उनसे बात की गई। कहानी कैसी लगी; इसमें क्या बात कही गई है; जिनके घर में गाय-भैंस हैं, उन्होंने क्या अवलोकन किया है; सर्दियों में गाय-भैंस के ऊपर बोरे क्यों ओढ़ा देते हैं; आदि सवाल इस चर्चा में उभरे। अब फिर बच्चों को गाय से सम्बन्धित अपने अनुभव सुनाने को कहा गया। इस चर्चा के बाद बच्चों ने बड़ी उत्सुकता के साथ अपने अनुभव बताए। जैसे–

"जब मम्मी गाय का दूध दुहती हैं, तब कई बार गाय लात मार देती है। कभी-कभी दूध गिर भी जाता है। बरसात के दिनों में जब मम्मी दूध निकालने जाती हैं, वे कीचड़ में सन जाती हैं। गाय की बछिया बहुत प्यारी होती है। उसके बाल बहुत मुलायम होते हैं। कभी-कभी वह हमारा हाथ चाटने लगती है। हमें वह बहुत अच्छी लगती है। हम बछिया से प्यार करते हैं। जब हम गाय को चराने ले जाते हैं, उसे एक खूँटे से बाँध देते हैं और वह खूँटे के चारों ओर घूम-घूमकर घास खाती है। बारिश के दिनों में भी हमें उसके लिए चारा लेने जाना होता है। चारा नहीं होगा तब वह क्या खाएगी! इसलिए हमारे मम्मी-पापा भीगते हुए भी चारा लेने जाते हैं।" बातचीत में अब पहले और बाद में फ़र्क़ देखने को मिलने लगा। इसमें बच्चों के अनुभव भी शामिल हो गए।

इसी प्रकार, *चकमक* में प्रकाशित लेख 'रोशनी का पत्र पिता के नाम' बच्चों को सुनाकर उसपर बात की गई। इसे *रिमझिम* के

पाठ ‘पत्र’ से (विद्या सेतु पाठ्यक्रम से) जोड़ते हुए काम किया गया। शुरुआत में बच्चों के साथ पत्र को लेकर चर्चा हुई। जैसे– क्या उनके घर चिट्ठी आती है; कभी चिट्ठी आई है; किस-किस के घर में चिट्ठी आती है; आदि। इसपर बच्चों ने अपनी-अपनी बातें कहीं। हमने उनसे इसके बाद पूछा, अगर आपको अपने दादा, पापा, नानी या ऐसे किन्हीं दूसरे रिश्तेदारों, जो दूर रहते हैं, को चिट्ठी लिखनी हो, आप उन्हें क्या लिखोगे? इसपर हुई बातचीत में बहुत चीज़ें नहीं आईं। बस कुछ ऐसी बातें ही सामने आईं। जैसे– आप कैसे हो; हम ठीक हैं; हमें आपकी याद आती है; आदि। लेकिन जब *चकमक* में प्रकाशित लेख बच्चों को सुनाया गया, उसके बाद वे अपने मन की बात बताने को ज़्यादा आतुर दिखे। यह इसलिए भी हो पाया, क्योंकि जिन बच्चों के साथ यह काम किया गया था, उनके ज़्यादातर रिश्तेदार बाहर रहते हैं। उनके अभिभावक यहाँ रहकर काम करते हैं। बच्चों ने भाषाई त्रुटियों के साथ अपने अनुभव में लिखा कि उनके पापा सुबह जल्दी काम पर चले जाते हैं; वे उनके साथ खेलते नहीं हैं; आदि। एक बच्ची ने अपनी नानी को चिट्ठी लिखी, “आपसे बहुत दिनों से बात नहीं हुई है। इस बार छुट्टियों में आपसे मिलने आऊँगी।” उसने आगे लिखा, “मेरी प्यारी नानी, मैं आपसे बहुत प्यार करती हूँ। मुझे याद है, जब आप घर आई थीं, आपने मुझे गले लगा लिया था। आप मुझे प्यार करती हैं। और जब मैं कोई ग़लती करती थी, आप मुझे डाँटती भी थीं। जब मैं आपसे मिलती हूँ, मुझे बहुत अच्छा लगता है। मैं हमेशा इन्तज़ार करती हूँ कि कब आपके पास जाऊँगी। मुझे वह भी याद है, जब मैं किसी चीज़ की ज़िद करती थी और मम्मी मुझे डाँटती थीं, नहीं दिलाती थीं, तब आप मुझे दिला देती थीं। नानी, मुझे वह दिन भी याद है, जब मैं कंगन की ज़िद कर रही थी और मम्मी मुझे नहीं दिला रही थीं, तब आपने मुझे दिलाए थे। मैं आपसे बहुत दिनों बाद मिली, मुझे बहुत अच्छा लगा। अब मैं इन्तज़ार कर रही हूँ कि कब आपके पास जाऊँगी। अब लगता है कि जल्दी से आपके पास जाऊँ। आपकी बहुत याद आती है मेरी प्यारी नानी...।”

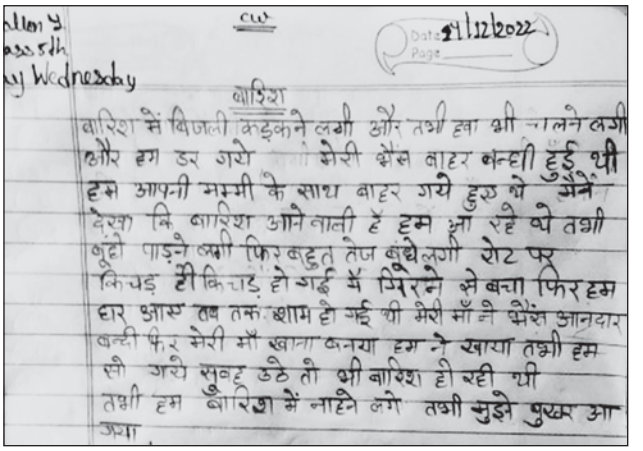

CW
Date 21/12/2022
Wednesday

बारिश

बारिश में बिजली कड़कने लगी और तभी हवा भी चलने लगी और हम डर गये मेरी भैंस बाहर बन्धी हुई थी हम आपनी मम्मी के साथ बाहर गये हुए थे मैंने देखा कि बारिश आने वाली है हम आ रहे थे तभी बूंदे पड़ने लगी फिर बहुत तेज बूंदे लगी रोट पर किचड़ ही किचड़ हो गई मैं गिरने से बचा फिर हम घर आए तब तक शाम हो गई थी मेरी माँ ने भैंस आनदार बन्दी फिर मेरी माँ खाना बनाया हम ने खाया तभी हम सो गये सुबह उठे तो भी बारिश हो रही थी तभी हम बारिश में नाहने लगे तभी मुझे बुखार आ गया

इसी तरह तीसरा विषय ‘बारिश’ था। बारिश के अनुभवों पर बच्चों के साथ बातचीत चल रही थी। कुछ बच्चे ख़ुशी-ख़ुशी अपनी बात रख रहे थे और बता रहे थे कि उन्हें बारिश का मौसम अच्छा लगता है। बारिश

बारिश

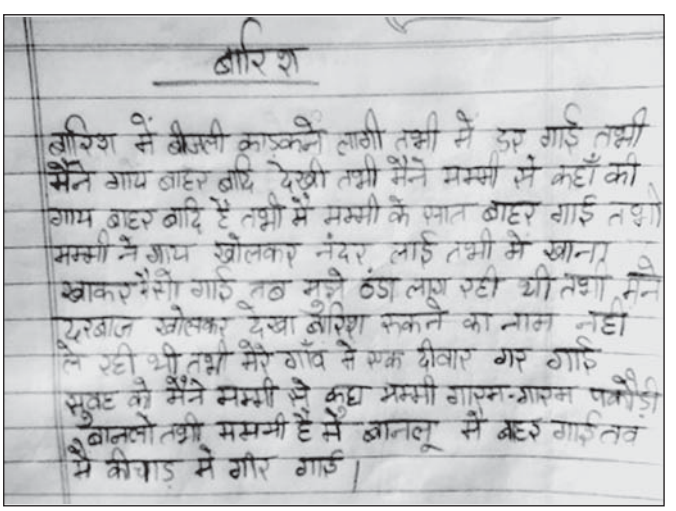

बारिश मे बीजली काड़कने लागी तभी मैं डर गाई तभी मैंने गाय बाहर बांधि देखी तभी मैंने मम्मी से कहाँ की गाय बाहर बांदि है तभी मै मम्मी के साथ बाहर गाई तभी मम्मी ने गाय खोलकर अंदर लाई तभी मै खाना खाकर सो गाई तब मुझे ठंडा लाग रही थी तभी मैंने दरवाज खोलकर देखा बारिश रुकने का नाम नहीं ले रही थी तभी मेरे गाँव मे एक दीवार गर गाई सुबह को मैंने मम्मी से कहा मम्मी गारम-गारम पकौड़ी बानलो तभी मम्मी है मे बानलू मैं बाहर गाई तब मै कीचाड़ मे गीर गाई।

में घूमने, नहाने में उन्हें अच्छा लगता है। मम्मी-पापा ज़्यादा नहाने नहीं देते हैं, क्योंकि इससे बुख़ार हो जाता है। वहीं कक्षा में कुछ बच्चे शान्त बैठे थे। जब बारिश पर उनके अनुभव जानने की कोशिश की गई, उन्होंने बताया कि उन्हें बारिश अच्छी नहीं लगती है। हालाँकि, उन्होंने इसका कारण नहीं बताया। बच्चे क्यों अपनी बात नहीं बता रहे होंगे, इसे समझने की कोशिश की गई। थोड़े प्रोत्साहन के बाद बारिश के अनुभव रखते हुए उन्होंने कुछ बातें कहीं। जैसे– बारिश के मौसम में घेशा (केंचुआ) निकल आता है; कीचड़ हो जाता है; फिसलकर गिर जाते हैं; आदि। बच्चों को अपनी बात रखने के लिए और प्रोत्साहित करने पर उन्होंने कुछ और बातें बताईं। जैसे– बारिश के दिनों में उन्हें मज़ा आता है; भीगने का मन होता है; बारिश में घर के अन्दर पानी भी आ जाता है; आदि। इस बातचीत के बाद बच्चों से कहा गया कि बारिश से सम्बन्धित अपने अनुभवों को लिखें। अपने अनुभव लिखते हुए बच्चों ने अपने साथ घटी घटनाओं को लिखा। जो बच्चे कक्षा में चर्चा के दौरान अपनी बात नहीं कह रहे थे, उन्होंने भी अपने अनुभव लिखे। कुछ बच्चों ने लिखा कि बारिश में अच्छा नहीं लगता है, घर के अन्दर पानी आ जाता है, छत से पानी टपकता है, बारिश से धान गिर जाता है और फ़सल भी ख़राब हो जाती है। उन्होंने लिखा कि एक बार इतनी बारिश हुई कि गाँव में दीवार गिर गई। एक बच्चे ने तो विश्लेषण की क्षमता का इस्तेमाल करते हुए यह भी लिखा कि बारिश का होना सबके लिए अलग होता है, कोई ख़ुश होता है, तो कोई इससे खुश नहीं होता है।

बरखा सीरिज़ की पुस्तक *झूला* पर कार्य करने के सिलसिले में भी लिखने से पहले बच्चों के साथ बातचीत की गई। झूले से सम्बन्धित बच्चों के अनुभव सुने गए। उनसे पूछा गया कि वे किस-किस तरह के झूले में झूले हैं और उन्होंने कहाँ-कहाँ झूला देखा है। बच्चों ने बताया कि उन्होंने मिक्की माउस, बड़े वाले झूले, चकरी, आदि में झूला है। उन्होंने यह भी बताया कि इस तरह के झूले उन्होंने मेले में देखे हैं। कुछ बच्चों ने बताया कि उन्होंने पेड़ की डाली पर रस्सी डालकर और पेड़ की डाल पर लटक कर भी झूला है। बच्चों के साथ बातचीत को आगे बढ़ाते हुए उनसे कुछ और सवाल पूछे गए। जैसे– क्या बड़ों के पैरों पर भी झूले हो; क्या किसी बच्चे को झूला झुलाया है; किस झूले में ज़्यादा मज़ा आया; आदि। इसपर बच्चों ने अपने अनुभव रखते हुए बताया कि दादा, मम्मी, पापा के पैरों में झूलने में ज़्यादा मज़ा आता है। इसके साथ ही उन्होंने बताया कि चारपाई में चुन्नी से बाँधकर छोटे बच्चों को झूला झुलाते हैं। इस बातचीत के बाद उन्हें फिर से 'झूला' पर लिखने के लिए कहा गया। इस

कक्षा - 5
झूला नाम - नमन
जब मैं आँठ साल का था तो मैं अपने बाबा
से मिलने गाँव गया था। मैंने अपने दोस्तो
के साथ झूले में झूलने की सोची लेकिन मेरे
दोस्तो ने कहा की गाँव में एक भी झूला नही है।
तो मैंने अपने बाबा से कहा बाबा मेरे भी झूला
झूलने का मन कर रहा है तो मेरे बाबा ने अपने
घर के पास वाले आम के पेड़ पर एक झूला
बना दिया। मेरे बाबा ने उसपर बैठा कर देखा
की वह मजबूत है या नही तो वह झूला मजबूत
था। तो मैं और मेरे दोस्तो ने उन्हे धन्यबाद किया
और हम सब झूले पर झूलने लगे। एक दिन
हम झूला झूल रहे थे तो हमे मेरे को बहुत जोर से
सिर मे जोर लग गई मेरे लोग चाचा के सादी
के लिए कपड़ा लेने गए थे। तो मेरे दोस्तो ने
मेरे बाबा को बताया फिर बाबा ने

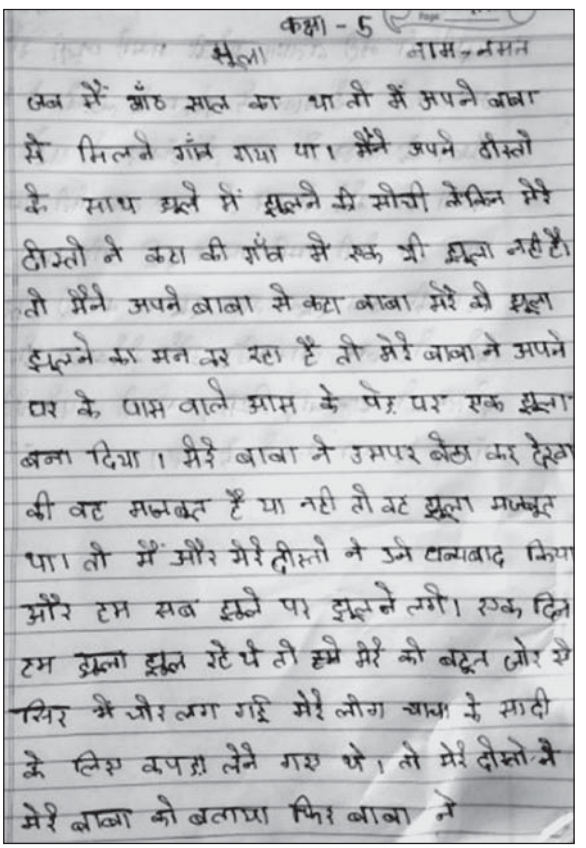

बातचीत का असर बच्चों के लेखन पर दिखा। अब वे समझ के साथ अपने अनुभव लिखने की ओर बढ़ रहे थे।

चित्र : मीनाक्षी आर्या

कक्षा में 'सुनीता की पहिया कुर्सी' कहानी पर काम चल रहा था। बच्चों से कहानी के सम्बन्ध में बातचीत की गई। जैसे– उन्हें कहानी कैसी लगी; क्या अच्छा लगा; सुनीता क्यों ख़ुश थी; आदि। इस चर्चा के बाद उन्हें सुनीता की जगह पर विनीता, दुकानदार, चीनी, पहिया कुर्सी, आदि शब्द देकर अपनी ख़ुद की कहानी बनाने को कहा गया। बच्चों ने इस कहानी को पढ़ा भी था और कक्षा में इसपर काम भी हुआ था, इसलिए उन्होंने इन शब्दों का उपयोग कर वैसी ही कहानी बनाने का प्रयास किया, जैसी पुस्तक में दी गई थी।

इस बातचीत से यह समझ में आया कि बच्चों के पास अनुभव हैं, पर वे उन अनुभवों को कैसे अभिव्यक्त करें, इसकी समझ उनमें नहीं है। बातचीत से पहले जब बच्चों से लिखने को कहा गया, वे पूछते रहे कि क्या लिखना है। इनमें से कुछ बच्चे कुछ ही वाक्य बना पाए। लेकिन बातचीत के बाद चीज़ें बदल गईं। इसलिए लेखन से पूर्व बच्चों के साथ बातचीत का अपना महत्त्व है। चित्रों, पाठों और बच्चों के अनुभवों पर बातचीत करने से उन्हें अपने विचारों को व्यवस्थित करने में मदद मिलती है। मेरा मानना है कि बाल साहित्य को कक्षा प्रक्रिया का नियमित हिस्सा बनाकर भी इस काम को किया जा सकता है। प्रत्येक विद्यालय में बाल साहित्य उपलब्ध होता है। इसे बच्चों को पढ़ने के लिए ज़रूर दिया जाना चाहिए। पढ़ने के पश्चात, उनसे पढ़ी गई सामग्री पर बातचीत करना भी ज़रूरी है। इसके साथ ही उन्हें अपने अनुभव लिखित रूप में अभिव्यक्त करने के मौक़े भी दिए जाने चाहिए।

बच्चे लिखित अभिव्यक्ति करें, इसके लिए उन्हें मौक़े देने के साथ-साथ लिखने के कुछ नमूनों से भी परिचित कराना होता है। इससे बच्चों को समझ में आता है कि लिखना क्या है और कैसे लिखा जाए। इस प्रक्रिया से ही वे यह भी सीखते हैं कि पहले और दूसरे वाक्य को कैसे जोड़ना है, तारतम्यता कैसे बनानी है, आदि। बच्चों को रचनात्मक लेखन के काम में जोड़ने के लिए उनके साथ बातचीत ज़रूरी है। हमें समझना होगा कि हर बच्चा बेहतर करने का प्रयास करता है। आवश्यकता है, बस उन्हें मौक़े देने की।

साहबउद्दीन अंसारी कुमाऊँ विश्वविद्यालय से शिक्षाशास्त्र में स्नातकोत्तर हैं। शिक्षा के क्षेत्र में पिछले 17 वर्षों से कार्यरत हैं, जिसमें अज़ीम प्रेमजी स्कूल दिनेशपुर, ऊधम सिंह नगर में 6 वर्ष शिक्षक के रूप में कार्य किया है। वर्तमान में अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, ऊधम सिंह नगर में रिसोर्स पर्सन के रूप में कार्य कर रहे हैं। बच्चों के साथ कार्य करना अच्छा लगता है। आपके कई लेख विभिन्न पत्रिकाओं व पुस्तकों में प्रकाशित हो चुके हैं।

सम्पर्क : sahabuddin.ansari@azimpremjifoundation.org

सीखने–सिखाने की ओर एक क़दम

सोनिया कुंडू

पाँच-साढ़े पाँच साल के बच्चों को मौखिक भाषा से लिखित भाषा तक कैसे ले जाया जा सकता है; विभिन्न उपकरण इसमें सहायक कैसे हो सकते हैं; और कहानियों, नाटकों या चित्रों की इस प्रक्रिया में क्या भूमिका हो सकती है? यह लेख इन्हीं सवालों का व्यवहारिक जवाब देता है। अपनी कक्षा में बुनियादी भाषा सिखाने की प्रक्रिया में लेखिका ने कहानियों, नाटकों, चित्रों, आदि उपकरणों का इस्तेमाल किया और नतीजतन बच्चों की भाषा सीखने की गति बढ़ी। चार महीने तक चली इन कक्षा प्रक्रियाओं से बच्चे मौखिक भाषा से आगे बढ़ते हुए लिखित भाषा के शब्दों को पहचानना और उनको सरल रूप में लिखना सीख सके। -सं.

नए स्कूल की नई कक्षा थी। मेरे सामने एक चुनौती थी। मुझे लगभग पाँच से साढ़े पाँच साल की उम्र के बच्चों को भाषा के चिह्नों, लिखावट, शब्दों की बनावट, शब्दों के उच्चारण और सुसंगत मौखिक अभिव्यक्ति जैसे आयामों पर काम करना था। इससे पहले भी मैंने बच्चों के साथ इन मुद्दों पर काम किया था, लेकिन वहाँ की परिस्थितियाँ बिलकुल अलग थीं। पहले के अनुभव शहरी क्षेत्रों के नामी प्राइवेट स्कूलों से जुड़े हुए थे। इन स्कूलों में आने वाले ज़्यादातर बच्चे मध्यम वर्गीय कामकाजी पढ़े-लिखे परिवारों से आते थे। ऐसे में अभिभावकों की अपेक्षाएँ और घर का माहौल भी बच्चों की एक स्तर तक मदद कर पाता था, और इनका असर उनकी शैक्षणिक क्षमताओं पर स्पष्ट नज़र आता था। पर यह जगह नई थी, बच्चों का परिवेश और परिस्थितियाँ अलग थीं। एक बड़ी चुनौती यह भी थी कि कोविड के दौरान कक्षाओं का अनियमित संचालन हुआ। इस दौरान बच्चे कम समय के लिए ही कक्षाओं में मिल पाए। पिछले साल ये बच्चे एलकेजी में थे और अब यही यूकेजी में हैं। अब इस स्तर पर उनसे जुड़ी अपेक्षाएँ पिछले वर्ष की तुलना में अधिक हैं। मसलन, बच्चे आम बातचीत और कहानियों को ध्यान से सुनें, छोटी कविताओं व एक्शन गानों को दोहराएँ, और मातृभाषा में संगीत व लयबद्ध गतिविधियों में भाग लें। वे बोलते समय नई शब्दावली का प्रयोग करें, सरल वाक्यों में बोलने में सक्षम हों, और मातृभाषा के साथ-ही-साथ दूसरी भाषा में भी सहजता हासिल करते हुए उसका उपयोग कर पाएँ। बच्चे मौखिक अभिव्यक्ति के साथ-साथ पढ़ने और लिखने में भी सहज होने की ओर अग्रसर हों, ध्वनियों-शब्दों को समझ सकें, उनमें जोड़-तोड़ कर सकें, उन्हें लिख सकें, आदि।

मैं पहले ही कह चुकी हूँ कि इन बच्चों को औपचारिक स्कूली परिवेश में ढलने के उतने अवसर नहीं मिले जितने मिलने चाहिए थे। इसका परिणाम इस रूप में सामने आया कि बच्चे अभी भी स्कूल आने, लम्बे समय तक एक स्थान पर बैठने जैसे बुनियादी मसलों से ही जूझ रहे थे। कहने का तात्पर्य यह कि सबकुछ शुरुआत से ही करना था। चुनौती व्यक्तिगत स्तर पर भी थी। इतनी छोटी उम्र के बच्चों के

साथ काम का कोई अनुभव न होना कोई कम बड़ी चुनौती तो है नहीं!

कक्षा में किए गए प्रयास

अब तक मैं यह पढ़ती आई थी कि भाषा शिक्षण के लिए सबसे कारगर पद्धति समग्र भाषा शिक्षण है। मैंने इसी प्रक्रिया से पढ़ाने की शुरुआत की। यह तरीक़ा शुरुआत में कारगर भी नज़र आया, लेकिन जैसे ही बात मौखिक भाषाई कौशलों से आगे बढ़ते हुए पढ़ने और लिखने की ओर बढ़ी, मुझे कुछ और चुनौतियाँ भी नज़र आने लगीं। बात जब ध्वनियों के साथ अक्षर की पहचान पर आई, वहाँ मुझे ख़ुद के द्वारा अपनाई जाने वाली प्रक्रियाओं में कुछ गैप महसूस होने लगा क्योंकि अपेक्षित सफलता नहीं मिल रही थी।

अब तक अपनाई जा रही प्रक्रिया में मैंने कुछ और गतिविधियों को जोड़ा, विशेषकर ध्वनि की पहचान के लिए। इसके लिए एक कहानी का चयन कर उसके ज़रिए बच्चों के साथ अक्षरों की बनावट, ध्वनि और उनसे जुड़े शब्दों पर काम किया गया। कहानी से वाक्यों, वाक्यों से शब्दों और शब्दों से ध्वनियों तक आने का यह सफ़र रोचक और महत्त्वपूर्ण रहा। इस अनुभव का संक्षिप्त रूप प्रस्तुत है।

अभी तक के अनुभवों के आधार पर मैंने पाया कि कहानी पठन प्रारम्भिक कक्षाओं के बच्चों के लिए सबसे मज़ेदार चीज़ों में से एक है। इसी सोच के साथ एक कहानी ली गई। यह कहानी मेरे लिए होल लैंग्वेज अप्रोच से काम करने की शुरुआत का एक नमूना बनकर सामने आई।

इसके लिए सबसे पहले कहानी का चयन करना था। यहाँ ज़्यादा सोचने की ज़रूरत नहीं पड़ी क्योंकि एनसीईआरटी की थीमों के आधार पर ही हमने अपनी वार्षिक योजना बनाई थी। इन्हीं थीमों में से एक उप-थीम 'जानवर' को मैंने चुना। इसी के मुताबिक़ एक ऐसी कहानी ('मिठाई' *बरखा* सीरीज़) का चयन किया गया जिसमें कई प्रकार के जानवर थे। चूँकि छोटे बच्चे खेलना पसन्द करते हैं, इसलिए कक्षा में खेल पद्धति का प्रयोग किया गया। अगले दिन बच्चे जैसे ही कक्षा में आए, उन्होंने दीवारों पर कुछ जानवरों के मास्क लटके देखे। मास्क देखते ही बच्चे उन्हें छूने, पकड़ने और उनसे खेलने के लिए उतावले होने लगे। जैसे ही तरह-तरह के ये फ़ेस मास्क उन्हें मिले, उन्होंने उनके इर्द गिर्द अपनी ही खेल कहानियाँ बनानी शुरू कर दीं। इस दौरान उन्हें एक दूसरे से बात करने, समझने-समझाने और अपनी कल्पनाओं को उड़ान देने का मौक़ा मिला।

इस खेल के दौरान मैंने पाया कि बच्चे ज़्यादातर मास्क वाले जानवरों की ख़ासियतों को ही केन्द्र में रखकर खेल रहे थे। दो बच्चे

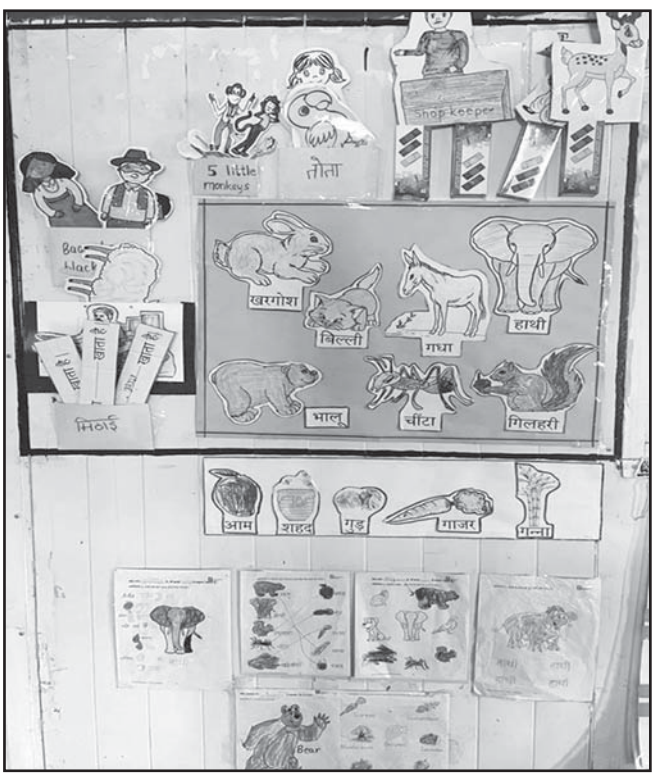

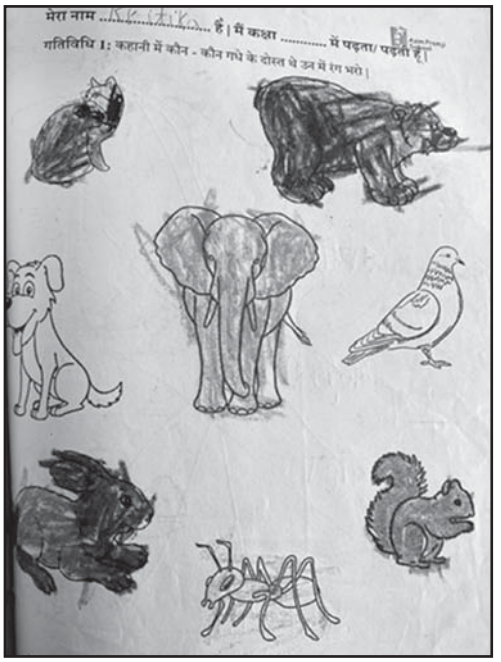

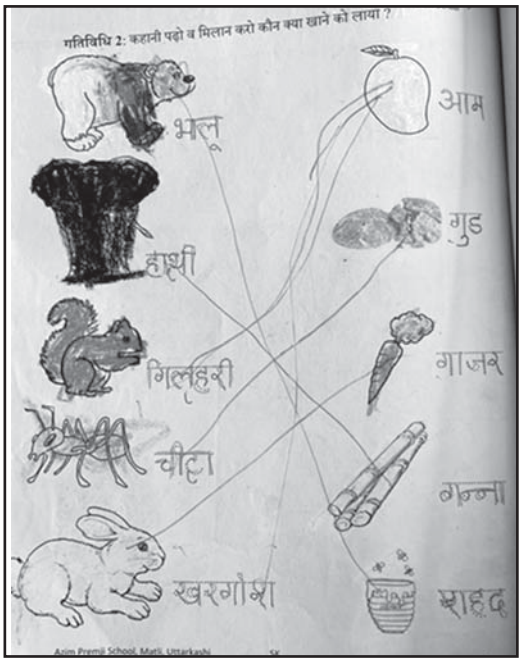

एक रोल-प्ले जैसा करते दिखे। इनमें एक बच्ची मालिक बनी और दूसरा बच्चा गधा। फिर मालिक बनी बच्ची अपने गधे को नदी से रेत ढोने ले जाती है। वहाँ गधे को भूख लगती है और मालिक बनी बच्ची भागकर कुछ खाने को लाती है। जो बच्चा गधा बना था वो खाने में आना-कानी करता है, तब मालिक बनी बच्ची बड़े प्यार से अपने गधे से कहती है, "अभी ये खा ले मेरे दोस्त, फिर मैं तुझे अच्छी-अच्छी मिठाई दूँगी।" इस खेल को देखकर यह अनुमान लगा पाना बेहद सरल था कि बच्चे अपने परिवेश से जो सीखते हैं, वो उनकी कल्पनाओं को बुनने और आगे ले जाने में मदद करता है। एक और ज़रूरी बात यह रही कि कक्षा की एक बच्ची, जो आमतौर पर दूसरे बच्चों के साथ शायद ही किसी गतिविधि में हिस्सा लेती हो, इस दौरान गधे के संवेदनशील मालिक के रूप में नज़र आई। उसने गधे को मनाने के अलग-अलग उपाय किए। ध्यान देने वाली एक और बात यह भी हुई कि बच्ची ने रोल-प्ले में अपने गधे को मिठाई ही खिलाने का वादा किया। इसका कारण है, कक्षा में उपलब्ध कहानियों की किताबें, जहाँ बच्चे अपनी इच्छा से कोई भी किताब ले सकते हैं। ज़ाहिर-सी बात है, वे अपनी ओर से उस कहानी को पढ़ ही रहे होते हैं लेकिन चित्रों के माध्यम से। संयोग की बात है कि जिस कहानी को मैंने चुना था, उसे ये बच्चे पहले ख़ुद-से पढ़ चुके थे।

अब बारी आई फ़्री प्ले के दौरान किए गए प्रयास को आकार देने की। सभी बच्चों ने सर्कल टाइम में जानवरों से जुड़े अपने-अपने अनुभव साझा किए। इन सभी की बातों में गधे, बिल्ली और बाघ से जुड़े अनुभव ज़्यादा थे, वहीं बच्चे गिलहरी से ज़्यादा परिचित नहीं थे।

अब आते हैं कहानी पर। सबसे पहले कहानी पूरे हाव-भाव और फ़ेस मास्क की मदद से सुनाई गई। कहानी सुनाने के बाद बच्चों को यह किताब भी दी गई। ऐसा करने के पीछे इस छोटी-सी कहानी के ज़रिए कुछ बड़े उद्देश्यों की ओर बढ़ना था। मसलन, सुनी हुई कहानी को मूर्त रूप से चित्रों के माध्यम से देख पाना और लिखे हुए शब्दों को बाईं से दाईं ओर पढ़ पाना। यहाँ पढ़ने से तात्पर्य, प्रिडिक्ट रीडिंग से

है। जब बच्चे इन शब्दों को चित्रों के ज़रिए पढ़ पाते हैं, तब उनमें यह आत्मविश्वास जागता है कि वे भी पढ़ सकते हैं।

इन उद्देश्यों के लिए किए गए प्रयास व गतिविधियाँ

अब उस कहानी में आए जानवरों व खाने की चीज़ों के बड़े फ़्लैश कार्ड बनाकर कक्षा में लगा दिए गए। ये फ़्लैश कार्ड उनके लिए चित्र और शब्द के सम्बन्ध बनाने के सन्दर्भ के रूप में काम आए। इनसे बच्चे चित्र के साथ जोड़कर नाम भी पढ़ने लगे। जैसे– हाथी, भालू, आदि।

आगे इसी कहानी के इर्द गिर्द कुछ स्तरों में बाँटकर कई वर्कशीटें बनाई गईं। इन वर्कशीटों में बच्चों को सबसे पहले हाथी के चित्र को पूरा करना; वह क्या खाता होगा, यह सोचकर चित्र बनाना; कहानी में गधे के दोस्त कौन-कौन थे, यह पहचानकर रंग भरना; और चित्र से उनके नाम को मिलाना था। इस गतिविधि का उद्देश्य परिवेश में उपलब्ध सन्दर्भों व चित्रों के अनुसार छपी हुई सामग्री को देख / पढ़कर समझ पाना और पढ़ी हुई कहानी का समझ के स्तर पर आकलन कर पाना था।

कहानी और वर्कशीट के साथ ही बच्चों में हिन्दी वर्णों की पहचान बनाने के लिए रेत पर लिखने और मिट्टी से वर्णों की आकृति बनाने जैसे काम किए गए। इनका उद्देश्य कहानी से शब्द और शब्दों से वर्णों / ध्वनियों पर समझ (मौखिक और लिखित) बना पाना था।

आओ नाटक खेलें

इस कहानी को नाटक के रूप में भी बच्चों के साथ खेला गया। बच्चों से जानवरों के नाम के कार्ड को धागे से बाँधकर गले में पहनने को कहा गया। इससे वे अपने पात्र को याद रख पाने में सक्षम रहे। इस गतिविधि में बच्चों ने कहानी के सभी किरदारों के साथ बहुत अच्छे-से खेला और अपने शब्दों में नाटक प्रस्तुत किया। इस दौरान मैंने बच्चों में कहानी को लेकर एक खेल का भाव भी पाया। जिन बच्चों ने नाटक में भाग नहीं लिया था, वे भी नाटक को समझे थे, और बाद में वैसा ही करने की कोशिश कर रहे थे। शायद वे इसे खेल और सेल्फ़ गाइडेंस की तरह ले रहे होते हैं। इससे कहानी में रुचि उत्पन्न हुई और बच्चों के मन में जानवरों व खाने-पीने की चीज़ों के नामों की एक प्रतीकात्मक छवि बन गई थी, क्योंकि अब वे शब्दों की बनावट के आधार पर यह बता पा रहे थे कि दी गई वस्तु का नाम क्या है। इसी दिशा में एक और गतिविधि की गई। इस गतिविधि में कहानी के वाक्यों से शुरू करते हुए बच्चों को यह समझना था कि वाक्य कई शब्दों से मिलकर बना है, और शब्द अलग-अलग वर्णों / ध्वनियों के एक साथ आने से। कहानी में आईं बातों, जो वाक्यों में लिखी गई थीं, के सार्थक टुकड़े करके बच्चों को यह समझना था कि वाक्य शब्दों के सार्थक मेल से बनते हैं। साथ ही, ध्वनि की पहचान के लिए शब्दों में अन्तर स्पष्ट होना बेहद ज़रूरी है। जब छोटे बच्चे अपने आसपास बोली जाने वाली भाषा अर्जित करते हैं, वे उसे पूरी-की-पूरी अर्जित करते हैं न कि ध्वनियों,

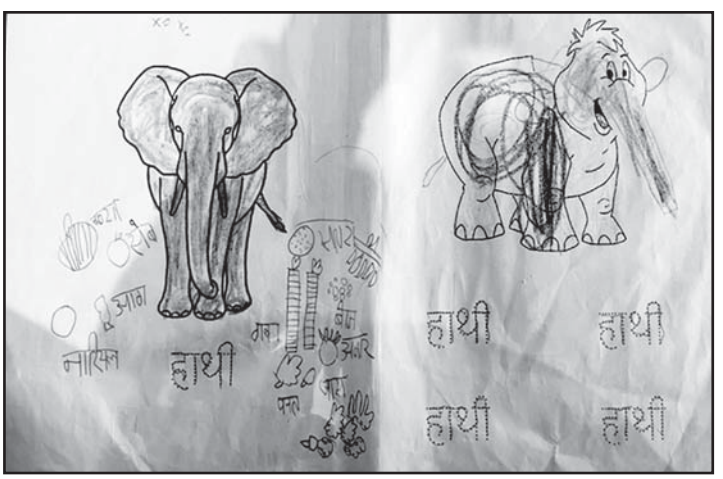

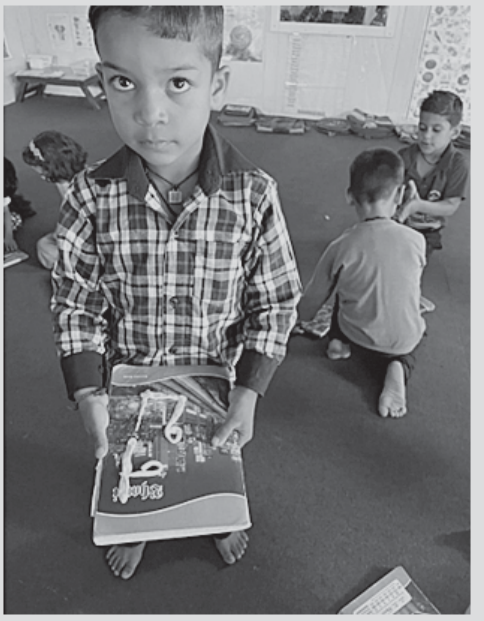

शब्दों या वाक्यांशों के रूप में। लेकिन मौखिक से लिखित भाषा की तरफ़ बढ़ते हुए यह ज़रूरी हो जाता है कि बच्चे ध्वनियों और उनके उपयोग को समझें। "बच्चे यह समझें कि बोली जाने वाली भाषा को छोटी-छोटी इकाइयों में तोड़ा जा सकता है, और इन्हीं छोटी इकाइयों में हेर-फेर कर या उन्हें संयोजित कर शब्द और वाक्य बनाए जा सकते हैं।" (यॉप एवं यॉप 2000)

गोले में कूद लगाओ

इसी सन्दर्भ में एक खेल और खेला गया। इसमें ज़मीन पर चॉक का इस्तेमाल करके गोले बनाए गए। बच्चों से कहा गया कि हर शब्द बोलने के साथ उन्हें एक गोले में कूदना है। जैसे– "मेरी लाल छतरी खो गई बाज़ार में"। यह वाक्य बोलते समय बच्चे को 7 गोलों में कूदना था। जब बच्चों ने इस खेल को मज़े के साथ खेलना शुरू किया, खेल को एक स्तर और बढ़ाया गया, अब उन्हें 'लाल' की जगह रंग बदलना था और 'छतरी' की जगह कोई अन्य वस्तु। फिर इसके अगले स्तर में जगह (बाज़ार) को भी बदलकर कहना था। यह खेल खेलते समय जब कोई बच्ची अटक रही थी तब उसके साथी उसकी मदद भी कर रहे थे, ताकि वो आसपास की चीज़ों के नाम जोड़कर आगे वाक्य बना ले।

अब बच्चों के साथ इस खेल का अगला स्तर खेला गया। मैंने उन्हें दो कार्ड दिए और कहा कि आपको इन दो शब्दों का प्रयोग करते हुए एक वाक्य भी बनाना है। मसलन, यदि किसी बच्चे के पास 'हाथी' और 'पेड़', ये दो शब्द आएँ, तब उसे एक वाक्य इस तरह से बनाना था जिसमें ये दोनों शब्द आ जाएँ। यानी, हाथी पेड़ के नीचे बैठा है; हाथी ने पेड़ के पत्ते खा लिए; आदि। बच्चों को अलग-अलग शब्द बोलते हुए एक-एक गोले के अन्दर कूदना था। बच्चों जो शब्द कार्ड दिए गए थे, उनमें 'मिठाई' कहानी से सम्बन्धित कार्ड ही थे, जैसे– 'हाथी और गन्ना', 'शहद और भालू', आदि। इस खेल के पीछे मेरा उद्देश्य यह था कि बच्चे वाक्य बोलते हुए उस वाक्य में आई भाषा को शब्द इकाइयों की स्पष्टता के साथ समझ सकें और उनकी भाषिक क्षमता विकसित हो सके। वे अपनी अभिव्यक्ति को स्पष्ट रूप से और समझ के साथ ज़ाहिर कर सकें। इसके साथ ही, वे

किसी कविता या गीत को सुनकर उसमें आई शब्द इकाइयों को समझते हुए अपना भाषिक शब्दकोश विकसित कर सकें।

आओ मिलकर ताली बजाओ

इसी तरह से खेलते-खेलते हम शब्दांशों के प्रति जागरूकता की ओर आगे बढ़े। अगले खेल का नाम रखा गया– 'ताली बजाओ नाम बताओ'। उदाहरण के लिए, मैंने कहा 'हाथी'। इसमें दो ताल हैं– 'हा' और 'थी', मतलब मैं दो ताली बजाऊँगी। अब बच्चों को कहा गया कि अपना नाम बोलो और ताली बजाकर ताल बताओ। मसलन, आभा– 'आ' और 'भा' दो ताली; कृतिका– कृ-ति-का; आरुष– आ-रु-ष

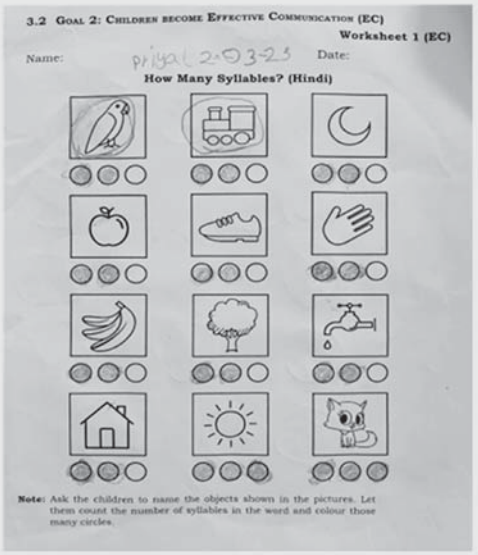

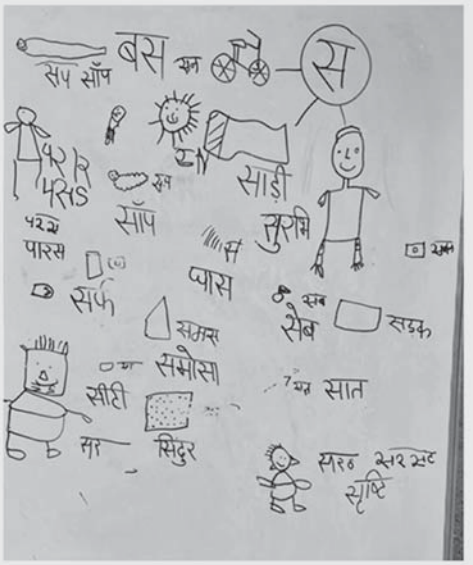

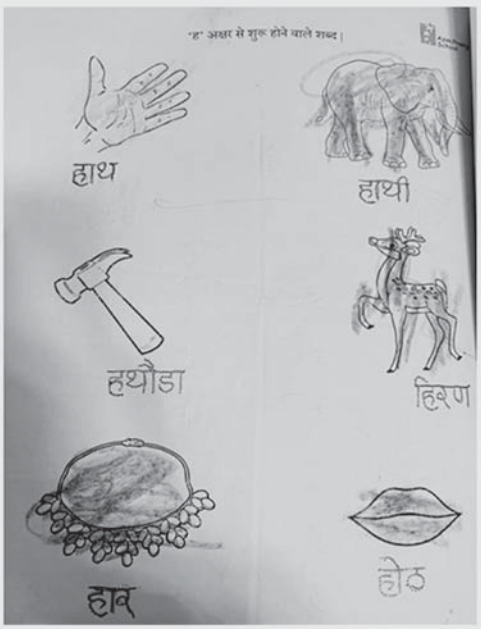

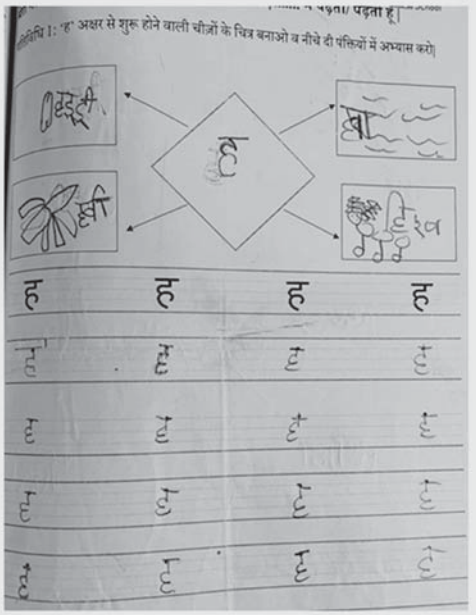

तीन ताली; आदि। इस गतिविधि से बच्चों को ध्वनियों को अलग-अलग समझने और उनकी पहचान करने में मदद मिली। अब इस गतिविधि को पहली और आख़िरी ध्वनियों की ओर ले जाया गया। इसमें बच्चों को ही पहचानना था कि किसी भी दिए गए कार्ड पर बने चित्र का नाम क्या है; उसके नाम में कितनी तालियाँ बजेंगी; और उसमें पहली व आख़िरी ध्वनि क्या थी? इसमें बच्चों से यह अपेक्षा नहीं की गई थी कि वे मात्रा को भी अलग करें। मैंने उन सभी के नामों का पहला अक्षर बताया। अब इसी खेल को कहानी के फ़्लैशकार्डों की मदद से आगे बढ़ाया गया। इनमें हाथी, गधा, गाजर, गिलहरी, हलवाई, भालू, गुड़, आदि जैसे कहानी कार्ड थे। इन सभी कार्डों में से वो कार्ड लिए गए जिनमें 'ह' वर्ण की आवृत्ति शुरुआत में थी। मैंने हाथी की पहली ध्वनि बोलकर सुनाई और बच्चों को निर्देश दिया कि अब ऐसे नाम सोचो जो 'ह' से शुरू होते हों। सबसे पहले एक बच्चे ने कहानी में ही आया शब्द 'हलवाई' बताया और दूसरे ने उससे मिलता-जुलता हुआ शब्द 'हलवा' कहा। इसी कड़ी में जब एक बच्चे ने 'गिलहरी' कहा, तब सीधा जवाब देने की जगह मैंने सभी बच्चों से कहा कि गिलहरी की तालियाँ गिनो और पता लगाओ, पहली ताली में 'ह' की आवाज़ सुनाई पड़ रही है क्या? यह पता लगाने के लिए सभी बच्चे बेहद आतुर दिखाई दिए और बार-बार शब्द को बोलते हुए ताली बजाकर पता लगाने के खेल में जुट गए। इसी बीच एक आवाज़ आई, "मैम, इसमें तो 'ह' की ताली पहले बज ही नहीं रही!"

यह समझ जाने के बाद, कि गिलहरी शब्द के उच्चारण में पहली ध्वनि 'ह' नहीं है, बच्चे एक बार फिर से सही शब्दों की तलाश में जुट गए। वे इस काम में एक दूसरे की मदद करने लगे। इस प्रक्रिया से गुज़रते हुए बच्चे अपने पसन्दीदा शब्दों में से एक 'हल' तक पहुँचे। अब इसी तरह, अगली बार जो कार्ड लिए गए (मसलन, गधा, गाजर, गुड़, आदि), उनमें बच्चों ने 'ग' अक्षर पर फ़ोकस किया। इसके साथ ही, हर बार बच्चे जब किसी एक अक्षर से जुड़े शब्द बोलते, मैं उन चीज़ों के चित्र भी बनाती। चित्रों के साथ उनके नाम भी लिख दिए जाते थे। जब बच्चों के काम करने की बारी आई, सबसे पहले उन्होंने चित्रों के माध्यम से अपने शब्दकोश को लिखित रूप में दर्शाया, और बड़े ही चाव से उनमें रंग भरा। इस तरह से लगभग 4 महीनों तक कार्य करने का परिणाम यह हुआ कि इस कक्षा के अधिकांश बच्चे इनवेंटेड स्पैलिंग लिख पाते हैं। (पिछले पृष्ठ पर चित्र देखें) मसलन, यदि कोई बच्चा समोसा लिखना चाहता है, तो वह 'समस' तो लिख ही लेता है। इस प्रक्रिया से गुज़रने के बाद अब बच्चे दो अक्षरों के सार्थक शब्दों को पढ़ और लिख लेते हैं।

सभी चित्र : सोनिया कुंडू

सोनिया कुंडू ढाई साल से अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन स्कूल, उत्तरकाशी, उत्तराखंड में अध्यापन कर रही हैं। आपको पूर्व प्राथमिक कक्षाओं के विद्यार्थियों के साथ काम करने का अच्छा अनुभव है।

सम्पर्क : sonia.kundu@azimpremjifoundation.org

पुस्तकालय कालांश और बच्चे

जिया शकूर अंसारी

इस लेख की लेखिका एक लाइब्रेरियन हैं। वे बताती हैं कि उनके स्कूल में सभी बच्चों के लिए पुस्तकालय जाना ज़रूरी है। हर कक्षा के लिए सप्ताह में लगभग 2 घण्टे का समय पुस्तकालय के लिए दिया गया है। बच्चे पुस्तकालय आएँ, उनमें पढ़ने के प्रति दिलचस्पी पैदा हो, यह सुनिश्चित करने के लिए वे कई प्रकार के काम करती हैं। जैसे– बच्चों के लिए किताबें चुनकर उनको पहले से ही मेज़ पर रख देना; कभी-कभार बच्चों के साथ मिलकर पढ़ना और कहानियाँ सुनाना; आदि। वे कहती हैं कि एक बार जब बच्चे पुस्तकालय के प्रति आकर्षित हो जाते हैं, वे उसके लिए अलग से समय निकाल ही लेते हैं। -सं.

पुस्तकालय एक बौद्धिक प्रयोगशाला है। यह कहा जा सकता है कि पुस्तकालय हमारे मस्तिष्क को स्वच्छ एवं पोषक भोजन प्रदान करने वाला व्यवस्थित भोजनालय है। यह हमारी सोचने की क्षमता में वृद्धि करने का केन्द्र है। शैक्षणिक पुस्तकालय में सबसे अधिक महत्त्व स्कूल पुस्तकालय का है। यही पुस्तकालय विद्यार्थी के प्रारम्भिक शैक्षणिक जीवन में अध्ययन के प्रति अभिरुचि जागृत करने में सहायक सिद्ध होता है। स्कूल पुस्तकालय का उद्देश्य विद्यार्थियों को पढ़ने के लिए सामग्री के साथ समय भी उपलब्ध कराना है। वैसे किसी भी शैक्षणिक संस्थान का एक मुख्य उद्देश्य यह सुनिश्चित करना भी होता है कि विद्यार्थी पठन-पाठन में दिलचस्पी लें और इसके लिए पुस्तकालय की भूमिका अहम है।

पुस्तकालय कई प्रकार के होते हैं। जैसे– राष्ट्रीय पुस्तकालय, सार्वजनिक पुस्तकालय, विशिष्ट पुस्तकालय, शैक्षणिक पुस्तकालय, इत्यादि। शैक्षणिक पुस्तकालय के अन्तर्गत विश्वविद्यालय पुस्तकालय, महाविद्यालय एवं स्कूल पुस्तकालय

आते हैं। स्कूल पुस्तकालय स्कूल के शिक्षण और सीखने के माहौल का महत्त्वपूर्ण हिस्सा हैं। अपने इस लेख में, मैंने शैक्षणिक पुस्तकालय के अन्तर्गत अज़ीम प्रेमजी स्कूल के पुस्तकालय की बात की है। हमारे स्कूल में कक्षा 3 से लेकर कक्षा 10 तक की सभी कक्षाओं के लिए पुस्तकालय में आने का समय निर्धारित किया गया है। प्राथमिक कक्षाओं के लिए 55 एवं माध्यमिक कक्षाओं के लिए 50 मिनट का समय, सप्ताह में दो बार निर्धारित है। प्रत्येक कक्षा में लगभग 30 विद्यार्थी होते हैं। इससे प्रत्येक विद्यार्थी को अपनी पसन्द की पुस्तक पढ़ने एवं उसे अपने लिए जारी कराने के भरपूर अवसर मिलते हैं। जैसा कि हम सब जानते हैं, प्रत्येक कक्षा में विद्यार्थियों के पढ़ने एवं समझने का स्तर एक दूसरे से अलग होता है। इसलिए प्राथमिक एवं उच्च माध्यमिक कक्षाओं के विद्यार्थियों के साथ पुस्तक को पढ़ने के लिए विभिन्न प्रकार की गतिविधियों का सहारा लिया जाता है।

लाइब्रेरियन के पास पुस्तकालय में उपलब्ध सभी पुस्तकों की जानकारी होती है। वह अपनी इस जानकारी के साथ विद्यार्थियों को उनकी सन्दर्भ पुस्तक तक पहुँचने में मदद करता है। विद्यार्थी (पाठक) को सीखने में मार्गदर्शन और समर्थन करने व उन्हें स्वतंत्र पाठक और शिक्षार्थी के रूप में पढ़ने एवं आगे बढ़ने के लिए सदैव तत्पर रहने को हम स्कूल पुस्तकालय प्रभारी के प्रभावी कामकाज के रूप में देख सकते हैं।

उच्च माध्यमिक कक्षाओं के विद्यार्थियों को उनकी पसन्द एवं स्तर की पुस्तकें उपलब्ध कराने के साथ उनमें पुस्तकों के प्रति लगाव एवं रुचि पैदा करने के लिए कुछ गतिविधियाँ की जाती हैं। नई किताबों से मुलाक़ात कराने के लिए डिस्प्ले वाले स्थान पर किताबें रखने, कुछ किताबों के आवरण को अलमारी या डिस्प्ले बोर्ड पर लगाने से विद्यार्थियों को विषयवार पुस्तकों के बारे में पता चल जाता है।

पुस्तकालय का माहौल स्कूल की दूसरी कक्षाओं से अलग होता है। यहाँ बच्चे अपनी पसन्द की पुस्तक चुन सकते हैं, और स्वतंत्र रूप से पढ़ सकते हैं। पाठक के रूप में पुस्तकालय ही एकमात्र ऐसी जगह है, जहाँ पाठक सभी रूढ़ियों से मुक्त रहकर पढ़ते हैं। पढ़ना व्यक्तिगत पसन्द का मामला है और पुस्तकालय विद्यार्थियों को अपनी व्यक्तिगत पसन्द के अनुसार पुस्तकें चुनने का मौक़ा देता है। जब विद्यार्थियों को पढ़ने का अभ्यास हो जाता है और शुरुआत में ही पढ़ने की आदत पक्की हो जाती है, तब उनमें पढ़ने के प्रति स्थाई रुचि बन जाती है।

लाइब्रेरियन की भूमिका संसाधनों, सूचना, कौशल और ज्ञान के साथ पाठक को सशक्त बनाने की है। मैं पहले ही कह चुकी हूँ कि पढ़ना व्यक्तिगत चयन का मामला है। इसमें शिक्षण प्रणाली को लचीला बनाए रखना महत्त्वपूर्ण हो जाता है। शिक्षण स्टाफ़ के रूप में साक्षरता का समर्थन करने और विद्यार्थियों की शिक्षा को सकारात्मक तरीक़े से प्रभावित करने में लाइब्रेरियन की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। लाइब्रेरियन के पास पुस्तकालय में उपलब्ध सभी पुस्तकों की जानकारी होती है। वह अपनी इस जानकारी के साथ विद्यार्थियों को उनकी सन्दर्भ पुस्तक तक पहुँचने में मदद करता है। विद्यार्थियों का सीखने में मार्गदर्शन और समर्थन करने व उन्हें स्वतंत्र पाठक और शिक्षार्थी के रूप में पढ़ने एवं आगे बढ़ने के लिए सदैव तत्पर रहने को, स्कूल पुस्तकालय के प्रभारी के प्रभावी काम के रूप में देख सकते हैं।

पुस्तकालय में पढ़ने के लिए बहुत सामग्री होती है। लेकिन ख़ुद के लिए पाठ्य सामग्री का चयन करना कुछ विद्यार्थियों के लिए कठिन कार्य है। उपयुक्त पुस्तक के चयन की प्रक्रिया भी जटिल होती है। विद्यार्थी को ऐसी पुस्तक मिले, जिसे पढ़ने से उसे आनन्द

मिल सके और उचित समय भी मिले ताकि उसकी जिज्ञासा शान्त हो सके, इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए मैं पुस्तकालय में विद्यार्थियों के आने के पूर्व कुछ तैयारी कर लेती हूँ। मैं विभिन्न विषयों, साहित्य, भाषा, कक्षा एवं स्तर को ध्यान में रखते हुए 30-40 किताबों का चयन करके मेज़ पर रख देती हूँ। इन किताबों में अकसर कहानी, कविता, विज्ञान की रोचक जानकारी, व्यंग्य, डायरी लेखन, आत्मकथा, आदि शामिल होती हैं। जब विद्यार्थी पुस्तकालय के कालांश में आते हैं, वे अपनी पसन्द की किताब को मेज़ से ढूँढ़कर पढ़ने लगते हैं। यदि किसी विद्यार्थी को किसी विषय विशेष की पुस्तक पढ़नी होती है, वह अलग से अपनी पुस्तक की माँग कर सकता है और विद्यार्थी ऐसा करते भी हैं। अकसर वे अलमारी पर जाकर अपनी पुस्तक को ढूँढ़ते हैं। लाइब्रेरियन होने के नाते मैं भी पुस्तक ढूँढ़ने में विद्यार्थियों की मदद करती हूँ। कई बार विद्यार्थी कोई अवधारणा / प्रकरण लेकर आते हैं, जिससे सम्बन्धित लेख या पुस्तक उन्हें पढ़नी होती है। ऐसी परिस्थिति में उनको उचित सामग्री का चयन करने देना महत्त्वपूर्ण कार्य होता है। इस अवधारणा / प्रकरण को लेकर विद्यार्थियों के साथ बातचीत होती है, ताकि उन्हें उनकी माँग के अनुसार सामग्री मिल जाए। जब विद्यार्थियों को अपनी पसन्द की पुस्तक, लेख या जानकारी मिल जाती है, वे उस सामग्री को अपने नाम से जारी कराके पढ़ने के लिए अपने घर भी ले जाते हैं।

इसके साथ ही, लाइब्रेरियन को भी पुस्तकालय के नियमों को हमेशा ध्यान में रखना चाहिए, ताकि विद्यार्थियों को उचित सामग्री सही समय पर मिल सके। विद्यार्थियों को उचित सामग्री प्रदान करने के लिए उनके साथ संवाद करना भी आवश्यक है, ताकि उनकी जिज्ञासा शान्त की जा सके।

हम यह मानते हैं कि विषयों का अध्ययन सीमाओं तक निर्धारित नहीं होना चाहिए। पुस्तकालय इन विषयों की सीमाओं को व्यापक करने का माध्यम होते हैं। मैंने पाया है, बहुत-से विद्यार्थियों की इच्छा ज़्यादा-से-ज़्यादा पुस्तकें पढ़ने की होती है। उनकी जिज्ञासा शान्त करना भी ज़रूरी है। पाठ्यक्रम के अलावा विभिन्न प्रकार की पुस्तकों के बारे में जानने से विद्यार्थी को अपनी रुचियों का पता लगाने में मदद मिलेगी।

पढ़ने की व्यस्तता / पढ़ने के लिए माहौल

प्राथमिक कक्षाओं में सबसे पहले विद्यार्थियों की पुस्तकों से मुलाक़ात कराना आवश्यक है। मैं सबसे पहले पढ़ने के लिए माहौल बनाने का कार्य करती हूँ। इस क्रम में किताबों को मेज़ या दरी पर फैला देते हैं, ताकि बच्चों को किताबों के आवरण दिख सकें। इसके साथ ही, नई किताबों के डिब्बे को सामने रख देते हैं, जिससे बच्चे अपनी पसन्द की किताबें ढूँढ़ लें। एक बार जब पाठ्यक्रम से अलग पुस्तकें पढ़ने का चस्का लग जाता है, ये नन्हे विद्यार्थी भी पुस्तकालय में आने के बहाने ढूँढ़ने लगते

हैं। मैं भी विद्यार्थियों के साथ किताबें पढ़ने, उनपर बातचीत करने, एवं उनको सुनने के लिए तैयार रहती हूँ। मैंने देखा है, विद्यार्थियों की कल्पनाओं की सीमा का कोई मानक तय करना काफ़ी कठिन कार्य है। विद्यार्थियों के साथ काम करते समय मुझे कई मुद्दों पर नए सिरे से सोचने का मौक़ा मिला। इन मुद्दों में एक अहम बात यह थी कि बच्चे कहानियों को अपने जीवन एवं नए दौर के साथ जोड़ने का प्रयास करते हैं, और कुछ बेहतरीन पंक्तियों को (जो उन्हें अच्छी लगती हैं) हूबहू अपनी भाषा में जोड़ लेते हैं।

मैंने देखा है कि जब विद्यार्थी पढ़ने के आनन्द के महत्त्व को समझ जाते हैं, वे किसी भी समय पुस्तकालय में आने को बेताब रहते हैं। कुछ विद्यार्थी मध्याह्न भोजन के समय भी पुस्तकें पढ़ने एवं उनपर अपने विचार बताने के लिए बेताब रहते हैं। वे भोजन करके पुस्तकालय में पढ़ने के लिए आ जाते हैं, और पढ़ने के साथ-साथ अपनी पढ़ी गई सामग्री को मेरे साथ साझा करते हैं और उसपर मेरी राय भी जानने का प्रयास करते हैं। उसमें सवालों के साथ तीखे विचार भी आ जाते हैं। चर्चा में जुड़ने से पढ़ने वाली सामग्री उनके सोचने-समझने के विविध आयाम खोलती है।

पढ़ने की गतिविधियाँ

प्राथमिक और कुछ माध्यमिक कक्षाओं के उन विद्यार्थियों, जो पढ़ नहीं पाते या जिनकी पढ़ने में कम दिलचस्पी है, के लिए ख़ासतौर पर कुछ गतिविधियाँ पुस्तकालय में की जाती हैं। इन गतिविधियों में, विद्यार्थियों के साथ कहानी को पढ़कर सुनाना (रीड अलाउड); उन्हें स्वतंत्र रूप से किताबों को उलटने-पलटने के अवसर देना; जो कुछ (कहानी, कविता, लेख) उन्होंने पढ़ा या समझा है, उसको अन्य साथियों के साथ साझा करने के अवसर देना; आदि शामिल है। यह सुनिश्चित किया जाता है कि प्रत्येक विद्यार्थी को मौक़ा मिले। ऐसी कुछ गतिविधियाँ करने का अवसर भी मुझे प्राप्त हुआ। धीरे-धीरे बच्चे बेहतर ढंग से अपनी पुस्तक को पढ़ने के साथ-साथ अपनी कहानी का भी आनन्द लेने लगे थे। कभी-कभी जब विद्यार्थियों को किसी कहानी में कोई अपरिचित शब्द मिलता है जिसे पढ़ने में उन्हें कठिनाई होती है, तब उनको शब्द में आने वाले वर्णों को देखने के बाद मिलाकर पढ़ने का प्रयास करने के लिए कहा जाता है। विद्यार्थियों को इस प्रकार का प्रोत्साहन मिलने से वे पढ़ने की कोशिश में लगे रहते हैं। यदि कोई विद्यार्थी कुछ पढ़ते समय बार-बार अटकते हैं, मैं उनके नाम नोट कर लेती हूँ ताकि बाद

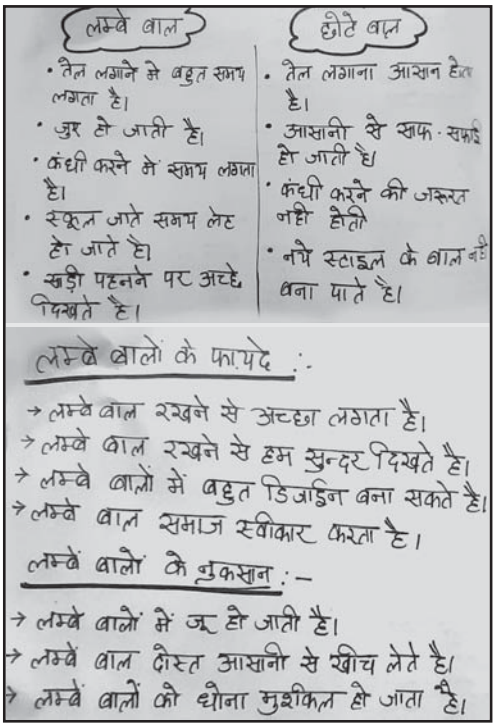

में उनकी स्पष्ट पढ़ने में मदद कर सकूँ। साथ ही, मैं विद्यार्थियों के पढ़ने को देखते हुए उनके लिए ख़ासतौर पर कुछ किताबें चुन लेती हूँ। जब विद्यार्थी अगली बार पुस्तकालय आते हैं, मैं उनसे कहती हूँ कि वे इन चुनी हुई किताबों को भी पढ़कर देख सकते हैं। विद्यार्थियों के पढ़ने के दौरान, मैं कभी-कभी उनके साथ बैठकर किताब के कुछ हिस्सों को पढ़ने में उनकी मदद भी कर देती हूँ, ताकि उनके पढ़ने की दिक़्क़त कम हो सके। ऐसा करने से उनकी पढ़ने की क्षमताओं में सुधार होने की गुंजाइश सबसे ज़्यादा होती है।

जो विद्यार्थी स्वतंत्र रूप से पढ़ने का कार्य करते हैं, उनके लिए भी हम कुछ गतिविधियाँ करते हैं। जैसे– कभी-कभार कहानी पढ़ने के बाद उसपर आधारित कुछ लिखित काम करने को कहना। इस काम में, कहानी में उल्लेख किए गए चित्रों के सभी रंगों को नोट करना; मुख्य घटनाओं को याद रखना; संवाद तैयार करना या कहानी का अन्त बदलकर उसे फिर से लिखना; चित्र या वस्तुएँ देकर किसी दूसरे नज़रिए से कहानी को दोबारा पढ़ना; विद्यार्थियों के साथ मिलकर कहानी का विश्लेषण; कल्पना या घटनाओं की बात करते हुए कहानी को मिलकर पढ़ना; आदि शामिल होता है। मैंने पाया कि पहली बार कहानी को मेरे साथ मिलकर पढ़ने के बाद उसे दोबारा पढ़ने में विद्यार्थियों को आसानी हो जाती है। इससे उनका आत्मविश्वास बढ़ता है, और बच्चे ख़ुद-से भी पढ़ने लगते हैं। इस सबका नतीजा यह होता है कि विद्यार्थी अगली किताब को ख़ुद पढ़ने का प्रयास करते है। वे स्वयं की कहानियाँ तैयार भी करते हैं, और स्कूल असेम्बली में इन्हें उत्साह के साथ सुनाते भी हैं। कुछ विद्यार्थियों की कहानियों को हम स्कूल के डिस्प्ले बोर्ड पर भी प्रदर्शित करते हैं। ऐसे में, जब पढ़ने-लिखने का चस्का लग जाता है, विद्यार्थी पढ़ने के लिए नए साहित्य की तरफ़ बढ़ जाते हैं। पुस्तकालय उनको विभिन्न साहित्य से रूबरू कराता है, और विद्यार्थी यहाँ आने के लिए हमेशा तैयार रहते हैं।

किताब : *चुटकिया की चुटिया*, लेखन: शीतल पॉल और सोनिया मंडल, चित्रांकन : तापोशी घोषाल, प्रकाशक : एकलव्य, पाठक आयु–वर्ग : 8+ वर्ष

चुटकिया की चुटिया किताब गुणिया की कहानी है। उसके पापा को उसकी लम्बी–काली चोटी बहुत पसन्द थी। इसीलिए वे उसे राजकुमारी कहते थे। लेकिन इस चोटी ने गुणिया के लिए आफ़त कर रखी थी। सुबह जल्दी उठो, बाल धो, तेल लगवाओ, और चोटी बनवाओ। उसे लगता था, ऐसी भी क्या राजकुमारी जो नींद भी पूरी न ले सके। एक दिन तो कौवों ने भी उसके सिर पर हमला कर दिया। ख़ैर! आख़िर उसे चुटकिया कहकर चिढ़ाने वाले पड़ोसी बोका ने तरक़ीब लगाई और कैंची से उसकी दोनों चोटी काट दीं। जब मम्मी आईं, तब क्या हुआ? इस शानदार कहानी को तापोशी घोषाल ने सुन्दर चित्रों से सजाया है।

पुस्तकालय में की गई गतिविधि की झलक

जब मैंने *चुटकिया की चुटिया* कहानी की किताब पढ़ी, मुझे यह समाज एवं घर-परिवार से जुड़ती लगी। इस कहानी को सभी विद्यार्थियों के साथ मिलकर पढ़ने एवं चर्चा करने का विचार मन में बिजली की तेज़ी से कौंधा। मैंने कक्षा 6 के 30 बच्चों के साथ मिलकर इसे पढ़ा। मैंने इस कहानी को पढ़ने से पहले सिर्फ़ इसके चित्रों की फ़ोटोकॉपी करा ली थी। चित्र देखकर सभी विद्यार्थियों ने अनुमान के साथ कहानी का नाम बनाने का प्रयास किया। चित्रों को देखकर विद्यार्थियों के मन में जो ललक और आतुरता दिखी, उसे मैं बयाँ नहीं कर सकती। मैंने कहानी पढ़ना प्रारम्भ किया। पढ़ते समय विद्यार्थियों को चर्चा का खुला अवसर दिया गया था। इसमें बालों के प्रति विद्यार्थियों के मन की भावना एक अलग ही रूप लेने लगी। विद्यार्थियों ने लम्बे बालों वाली लड़की की तस्वीर देखकर बहुत-सी बातों का अनुमान लगाया। उन्होंने कई बातें बताईं। जैसे– लड़की के बाल 'उलझे' जैसे दिख रहे थे; उसे बिजली का झटका लगा था; वह किसी से लड़ाई करके आई थी; आदि। इसके बाद विद्यार्थियों को कहानी की ही कुछ दूसरी तस्वीरें दिखाई गईं। जैसे– लड़की अपने पिता के साथ स्कूटर पर आ रही है और उसके बाल उड़ रहे हैं; फिर कौवे ने उसके बालों पर हमला किया; आख़िरी फ़ोटो में दिखाया जा रहा है कि उसके बालों में से एक 'चोटी' सामने फ़र्श पर है और एक पंखे के सामने।

विद्यार्थियों का अनुमान था कि वह अपने बालों को खो देने से दुखी थी, क्योंकि पंखे के अन्दर उसकी चोटी चली गई और उसके बाल कट गए। कहानी के समाप्त होने के बाद विद्यार्थियों से कहानी के बारे में प्रतिक्रिया ली गई। यह प्रतिक्रिया इस प्रकार थी :

- अन्त में चुटकिया का सपना सच होता है, और उसको अपने लम्बे बालों से छुटकारा मिल जाता है।
- लम्बे बालों के कारण कई लड़कियाँ असहज और कम आत्मविश्वास महसूस करती हैं।

- इन दिनों लड़के भी लम्बे बाल रखते हैं। वे लड़कियों से जलन इसलिए महसूस करते हैं, क्योंकि लम्बे बाल सुन्दर लगते हैं।
- आजकल के लड़के लम्बे बाल रखते हैं, क्योंकि उनको अच्छा लगता है।
- बालों को लम्बा रखना किसी एक विशेष वर्ग को दर्शाता है।
- लम्बे बाल रखना किसी विशेष समूह को नहीं दर्शाता है।
- यह हमारा व्यक्तिगत चुनाव होना चाहिए। किसी के ज़ोर या दबाव पर आधारित नहीं होना चाहिए।
- यह आजकल का चलन है। व्यक्ति को उसके व्यक्तित्व से पहचानना चाहिए न कि उसके लिबास से।
- लड़कों द्वारा कान में रिंग पहनना उनका मौलिक अधिकार है।

इस तरह चर्चा जेंडर पर पहुँच गई।

एक लाइब्रेरियन के रूप में, मैंने पाया कि यह सत्र विद्यार्थियों के लिए कल्पना कौशल विकसित करने में मददगार होगा। शुरुआत में विद्यार्थियों को चित्र देखकर कहानियों के बारे में सोचने के लिए कहा गया। इससे उनमें एक संज्ञानात्मक असंगति पैदा होती है, और वे कक्षा में ध्यान देना शुरू कर देते हैं। इस काम में, विद्यार्थियों की तरफ़ से बहुत सारे चिन्तनशील और सकारात्मक प्रयास शामिल हैं। इसलिए मेरा मानना है कि इस सबसे विद्यार्थियों को ध्यान केन्द्रित करने के साथ-साथ सीखने में भी मदद मिलेगी, और यह भविष्य में उनके सोचने की क्षमता के विकास में मददगार साबित होगा।

स्कूल एक ऐसा संस्थान है, जहाँ से विद्यार्थी पाठक बनने की तरफ़ अपने क़दम बढ़ा सकते हैं। बतौर शिक्षक, हम सभी इस बात को जानते हैं कि बच्चों को पढ़ने के लिए प्रेरित करना काफ़ी महत्त्वपूर्ण है। यह न केवल उनकी पढ़ाई के लिए आवश्यक है, बल्कि एक ऐसी दक्षता है जो सारी उम्र उनके काम आएगी।

सभी चित्र : ज़िया शकूर अंसारी

ज़िया शकूर अंसारी ने लखनऊ विश्वविद्यालय से मास्टर ऑफ़ लाइब्रेरी साइंस और इनफ़ॉर्मेशन टेक्नोलॉजी में परास्नातक की पढ़ाई की है। 2011 से अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन से जुड़ी हैं। उनका पढ़ने-लिखने के दौरान चीज़ों को देखने का नज़रिया पुख़्ता हुआ है। वर्तमान में अज़ीम प्रेमजी स्कूल, ऊधम सिंह नगर, उत्तराखंड में लाइब्रेरियन के रूप में कार्यरत हैं।

सम्पर्क : zia.ansari@azimpremjifoundation.org

दक्षिण एशियाई कला में सीखना–सिखाना

अवधेश त्रिपाठी

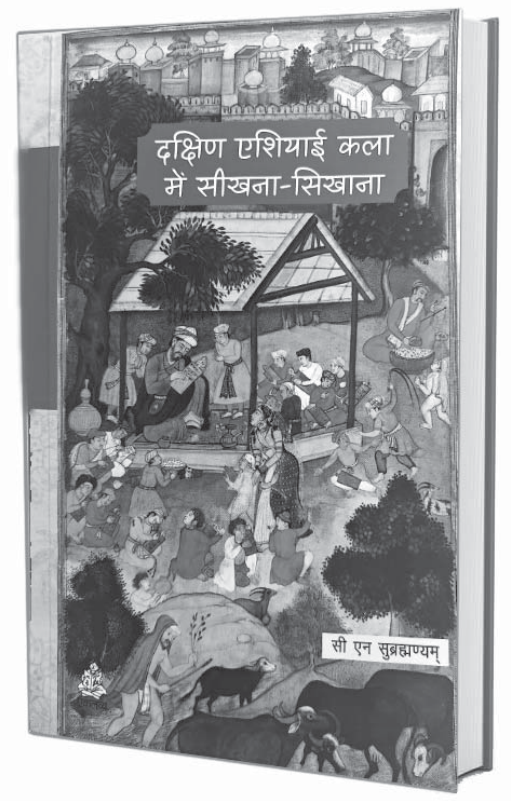

दक्षिण एशियाई कला में सीखना-सिखाना

लेखक : सी एन सुब्रह्मण्यम्

प्रकाशक : एकलव्य प्रकाशन

सी एन सुब्रह्मण्यम् की किताब दक्षिण एशियाई कला में सीखना-सिखाना लोकप्रिय ढंग से इतिहास लेखन का एक बेहतरीन उदाहरण है। यह किताब जहाँ किशोरों के लिए अत्यन्त उपयोगी और रोचक पाठ है, वहीं शिक्षा व कला के इतिहास पर काम करने वाले लोगों के लिए ज़रूरी सन्दर्भ पुस्तक भी। सुब्रह्मण्यम् अपने पाठकों को मूर्तिकला और चित्रकला के उन प्राचीन व मध्यकालीन उदाहरणों की यात्रा पर ले जाते हैं, जिनमें शिक्षक और विद्यार्थी दर्ज हैं। यह यात्रा पाठकों के लिए बहुत रोचक है, और लेखक की ज़बरदस्त मेहनत की गवाही भी देती है।

यह किताब अब तक प्राप्त दुनिया के प्राचीनतम स्कूलों की चर्चा के साथ शुरू होती है। सुमेरियन सभ्यता के उत्खनन से प्राप्त इन स्कूलों में लिपिक तैयार किए जाते थे, जिन्हें गीली मिट्टी की पट्टियों पर पढ़ना-लिखना सिखाया जाता था। यह लगभग चार हज़ार साल पुरानी बात है। ज़ाहिर है, ये स्कूल समाज के सारे लोगों को शिक्षा देने के लिए नहीं बनाए गए थे। उस समय तक शिक्षा कुछ ही लोगों के लिए थी। बाक़ी लोग अपने बुज़ुर्गों के साथ काम करते हुए सीखते थे। यहाँ से शुरू करके सुब्रह्मण्यम् आधुनिक और सार्वभौम शिक्षा से जुड़ी छवियों तक की यात्रा करते हैं।

शिक्षा से जुड़े किसी भी व्यक्ति के लिए 'पेडगॉजी' (शिक्षण विधि) और 'पेडगॉग' (शिक्षक) रोज़मर्रा इस्तेमाल होने वाले शब्द हैं। शायद ही हम कभी ठहरकर सोचते हों कि कहाँ से चलकर ये शब्द हमारी ज़ुबान में दाख़िल हुए हैं, और इनका इतिहास क्या है? सुब्रह्मण्यम् चित्रों के माध्यम से पाँचवीं शताब्दी ईसा पूर्व में यूनानी भाषा में मौजूद इन शब्दों की जड़ों की ओर हमें ले जाते हैं। उस दौर में, अभिजात वर्गों के बच्चों के लिए ही स्कूल

होते थे। इन बच्चों को स्कूल ले जाने, वहाँ उनके सीखने के समय निगरानी करने, उन्हें वापस घर लाने, और इस तरह बच्चों के साथ सबसे ज़्यादा समय बिताने के लिए नियुक्त दास को यूनानी भाषा में 'पेडगॉग' कहा जाता था। बाद में यह शब्द शिक्षक के लिए इस्तेमाल होने लगा। दास के साथ सम्बन्धित यह शब्द शिक्षक के रुतबे को कम नहीं करता। दुनिया की लगभग सारी सभ्यताओं में शिक्षण एक ताक़तवर और सम्माननीय पेशा बनकर और शिक्षक ऐसे ज्ञान के मालिक के रूप में उभरता है, जिसके पास इहलोक और परलोक दोनों को सुधारने की शक्ति है।

गुरु और शिष्य, मथुरा संग्रहालय

सीखने-सिखाने से जुड़ी तमाम छवियों के बारे में यह किताब विस्तार से बात करती है। इन छवियों में शिक्षा के लिए बौद्ध और वैदिक परम्पराओं में 'अनुशासन' शब्द का प्रयोग लगभग शिक्षा के पर्याय के रूप में होता है। आज जब कक्षा में अनुशासन बनाए रखने पर बहुत ज़ोर दिया जाता है, यह किताब हमें बताती है कि अनुशासन का भी एक इतिहास रहा है– वह वांछनीय है या अवांछनीय, यह एकदम अलग बात है। इस किताब में शिक्षा से जुड़ी जिन छवियों की चर्चा की गई है, उनमें सबसे मज़ेदार है अजंता की गुफा नं. 2 में मौजूद एक चित्र। यह चित्र बच्चों के रखवाले देवी-देवता हारिति और पंचिक के आसन के नीचे खुदा है। छड़ी के साथ मौजूद गुरुजी की इस कक्षा के चित्र की व्याख्या करते हुए सुब्रह्मण्यम् लिखते हैं :

"पहले दो बच्चे तो तल्लीनता के साथ लिख रहे हैं, मगर तीसरा बच्चा कुछ 'बोर'-सा हो रहा है। वह अपनी तख़्ती को ढीला छोड़कर सामने की ओर देख रहा है। उसके पीछे एक चौथा बच्चा है जो उठ खड़ा हुआ है, और अपने एक और साथी के बुलावे पर वहाँ से खिसकने की मुद्रा में है। पटल के बाईं ओर दो बकरे आकर्षण का केन्द्र बने हुए हैं। दो बच्चे उनपर सवारी करने की कोशिश कर रहे हैं और तीन दूसरे बच्चे उन्हें उकसा रहे हैं। शायद वे अपनी बारी का भी इन्तज़ार कर रहे हैं। इसी मज़े में भाग लेने के लिए बच्चे कक्षा से धीरे-धीरे खिसक रहे हैं।"

अजंता की गुफा नं. 2 के शिल्प के आसन के हिस्से का डीटेल

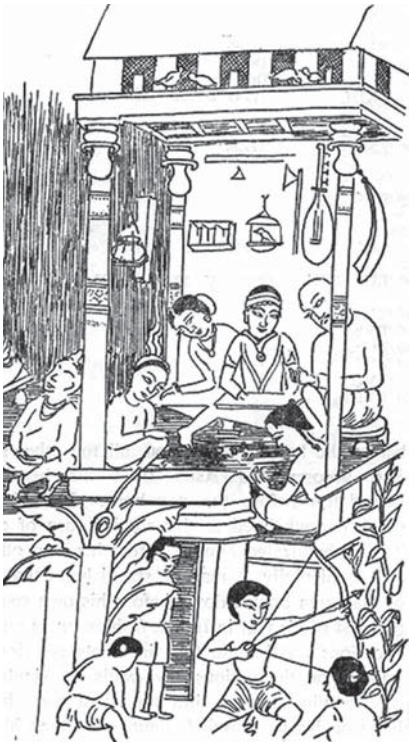

अजंता गुफा में शिक्षा प्राप्त करते सिद्धार्थ गौतम

यह कक्षा में बच्चों की बोरियत और बाहरी दुनिया की मज़ेदार गतिविधियों को दर्ज करने वाला शायद पहला चित्र है। ''ज़ाहिर है, छड़ी और अनुशासन की बोरिंग दुनिया के बरअक्स बकरे की सवारी ज़्यादा मज़ेदार काम है। बकरा गिरा दे, सींग मार दे या भाग जाए, तब भी ख़ुद कुछ कर सकने और निगरानी से बाहर होने के सुख का कोई मुक़ाबला नहीं है।''

अगले अध्याय में लेखक ने पूर्व-आधुनिक भारत में छवियों के माध्यम से शिक्षा के बदलते स्वरूप की चर्चा की है। मुग़लकालीन चित्रों में शिक्षण गतिविधि जिन रूपों में दर्ज है, वह काफ़ी महत्त्वपूर्ण है। यहाँ तक आते-आते चित्रण की शैली के ज़रिए गुरु के केन्द्रीय स्थान और उसके महत्त्व को दर्शाया जाने लगा था। लेखक ने ऐसे चित्रों को दिखाया है, जिनमें शिक्षक एक क़िस्म का आध्यात्मिक रुतबा भी हासिल कर लेता है। वह गुरु, उस्ताद या पीर का दर्जा रखता है। भक्ति कविता में गुरु का जैसा माहात्म्य वर्णित है, उसकी झलक इस दौर के चित्रों में भी मिलती है। इन चित्रों के अंकन की तकनीक ऐसी है कि गुरु को चित्रों में अन्य की अपेक्षा काफ़ी बड़ा और केन्द्रीय रूप से दिखाया गया है।

इस किताब के आख़िरी अध्याय में आधुनिक दौर में शिक्षा के स्वरूप को दिखाया गया है। आधुनिक दौर में शिक्षा में जो सबसे बड़े बदलाव हुए, उनमें से एक था समाज के बड़े हिस्से को शिक्षा के दायरे में ले आना। और यह सम्भव हुआ यूरोप में औद्योगिक क्रान्ति के बाद। ज़ाहिर है, औपनिवेशिक शिक्षा व्यवस्था के आगमन के पहले भी भारत में एक शिक्षा की व्यवस्था मौजूद थी। इस अध्याय में, उत्तर भारतीय पाठशालाओं और मदरसों से लेकर दक्षिण भारत तक के स्कूलों का उल्लेख और विश्लेषण है।

'क़िले के बाहर एक शाला', *रज़्मनामा*

छात्र और गुरुजी (istock इमेज गैलरी)

शिक्षा के इन देशज संस्थानों में सबसे ज़्यादा ग़ौर करने वाली बात है, कक्षाओं में गुरुजी के पास छड़ी की उपस्थिति। शायद कक्षा में अनुशासन बनाए रखने का सशक्त माध्यम छड़ी ही थी। कुछ चित्रों में छड़ी छात्रों को दण्ड देने के लिए इस्तेमाल हो रही है, वहीं कुछ में उसका इस्तेमाल किसी चीज़ की ओर संकेत करने के लिए हो रहा है। कुछ चित्र ऐसे भी हैं, जिनमें छड़ी बस रखी-भर है। अजंता की गुफाओं के चित्रों से लेकर आधुनिक कक्षाओं तक छड़ी की यह उपस्थिति बहुत कुछ कहती है। यह अनायास नहीं है कि कुछ वर्ष पहले तक उन्हीं अध्यापकों को अच्छा माना जाता था, जो बच्चों को पीटते थे। यह एक तरह का शक्ति प्रदर्शन था, और बच्चों के मन में बैठा दिया जाता था कि शिक्षक के कहर से उसे कोई नहीं बचा सकता। माता-पिता तो चाहते ही थे कि बच्चों के भले के लिए अध्यापक उन्हें दण्डित करें।

तीन अध्यायों में विभाजित यह छोटी-सी पुस्तिका चित्रकला और शिल्पकला के ज़रिए शिक्षा और शिक्षण का रोचक इतिहास हमारे सामने पेश करती है। यदि आपकी रुचि इस विषय में कम भी है, तब भी बहुत सुन्दर गद्य पढ़ने के लिए इस किताब को पढ़ा जा सकता है।

अनुशासन और दण्ड

अवधेश त्रिपाठी अध्यापक, आलोचक और अनुवादक हैं। विद्यार्थी साहित्य के हैं, पर इतिहास में दिलचस्पी है। कई विश्वविद्यालयों में अध्यापन के बाद फ़िलहाल अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय की अनुवाद पहल के साथ जुड़े हैं।

स्कूल में सीखने-सिखाने की ज़रूरत है पुस्तकालय

शिक्षक वरुण कुमार से पुरुषोत्तम ठाकुर की बातचीत

पुरुषोत्तम : आपका संक्षिप्त परिचय चाहूँगा।

वरुण : मेरा नाम वरुण कुमार साहू है। मैं सहायक शिक्षक के तौर पर शासकीय प्राथमिक शाला बेलतरा, संकुल केन्द्र सरम, विकासखण्ड धमतरी, ज़िला धमतरी में पदस्थ हूँ। मुझे स्कूल में काम करते हुए लगभग 2 दशक हो गए हैं।

पुरुषोत्तम : आपसे स्कूल के पुस्तकालय के सन्दर्भ में बात करना चाहूँगा। कृपया बताएँ, आपने अपने स्कूल में पुस्तकालय की शुरुआत कब की?

वरुण : हमारे स्कूल में पुस्तकालय की शुरुआत 2019 में हुई। जैसा कि अमूमन होता है, स्कूल में पुस्तकें तो थीं, लेकिन अलमारी में बन्द। मैंने अलमारी खोलकर कुछ पुस्तकें टटोलीं, और पाया कि उनमें अच्छी पुस्तकें थीं। मुझे लगा कि सभी पुस्तकों को निकालकर इस्तेमाल में लेना चाहिए। साथी शिक्षकों से भी इस सन्दर्भ में बात की। और तब इन पुस्तकों को एक कक्ष में व्यवस्थित तरीक़े से रखने–सजाने का काम हुआ। इसके बाद सबसे महत्त्वपूर्ण काम था बच्चों को इसमें जोड़ना। पुस्तकालय कक्ष, जिसको हम अब मुस्कान पुस्तकालय कहते हैं, में बच्चे जाने भी लगे, लेकिन वहाँ उन्हें पढ़ने–लिखने के लिए बहुत कम समय मिल पाता था।

हम सभी जानते हैं कि अकसर स्कूल में फ़ोकस पाठ्यपुस्तकों पर ही रहता है, और हमारे स्कूल में भी ऐसा ही था। लेकिन हमें यह भी लगता था कि बच्चे दूसरी पुस्तकें पढ़ पाएँ, इसके लिए भी कुछ समय देना चाहिए। इसलिए हमने समय सारणी में इसकी जगह बनाई, और 30–40 मिनट का एक पुस्तकालय कालखण्ड शुरू किया। कुछ ही समय में हमने पाया कि इन 30–40 मिनटों में बच्चे कुछ ख़ास नहीं पढ़

पाते थे। ऐसा शायद इसलिए भी था, क्योंकि पुस्तकालय और पुस्तकों में उनकी दिलचस्पी भी कम थी।

फिर हमने अपने प्रयासों को और व्यवस्थित व कुछ नया भी करने का सोचा। बच्चों में पुस्तकों के प्रति दिलचस्पी पैदा करने के लिए हमने सबसे पहले उन पुस्तकों को छाँटा जो हमें लगा कि उन्हें रोचक व मज़ेदार लगेंगी। इन्हें छाँटने का एक मानदण्ड यह था, क्या पुस्तकें हमें भी अच्छी लग रही हैं? जब हम पुस्तकें देख रहे थे, हमें भी कई पुस्तकें काफ़ी अच्छी लगीं। फिर हमने इन पुस्तकों को कक्षा के स्तर के अनुसार बाँटा, और कक्षा 1 से 5 तक हर कक्षा में पुस्तकें रखी गईं। मुझे लगता है, अलग–अलग स्तर के बच्चों के लिए अलग–अलग स्तर की पुस्तकों का रहना ज़रूरी है। चूँकि कक्षा पाँच के स्तर के बच्चे अनुच्छेद या कहानी पढ़ सकते हैं, इसलिए इस स्तर पर ज़्यादा पुस्तकें ऐसी रखीं जिनमें थोड़ी बड़ी कहानियाँ–कविताएँ थीं। हमारा मानना था, यदि इन बच्चों के लिए सिर्फ़ चित्रात्मक पुस्तकें ही रखते हैं, तब बच्चों के लिए वह कुछ ख़ास रुचिकर नहीं होंगी। एकबारगी वे उन्हें देख सकते हैं, लेकिन फिर उन्हें लग सकता है कि वे यह पुस्तकें क्यों पढ़ें। इनमें बस एक–एक लाइन लिखी है।

तब पुस्तकों को अलग–अलग स्तर में बाँटकर उनको कक्षाओं में पहुँचा दिया। हमारा सोचना था, यदि पुस्तकें बच्चों की पहुँच में रहेंगी, तब उन्हें देखने की इच्छा भी होगी और वे किताबों के पन्नों को उलटेंगे–पलटेंगे भी, और ऐसा हुआ भी। धीरे–धीरे बच्चे किताबों से जुड़ने लगे।

अब कई बार ऐसा होता है, जब हम कोई ऐसा सवाल देते हैं जिसमें बच्चों को किताबों को देखने की ज़रूरत हो सकती है या कभी शिक्षकों के लिए अचानक कोई काम आ जाता है, तब बच्चे कक्षा में रखी पुस्तकों का इस्तेमाल कर लेते हैं। बच्चे अपनी पसन्द की पुस्तकें उठाते हैं। जो बच्चे ख़ुद पढ़ सकते हैं वो ख़ुद, और बाक़ी अपने साथियों की मदद से पढ़ते हैं। पढ़ने के बाद वे पढ़ी गई पुस्तकों के बारे में चर्चाएँ भी करते हैं। कक्षा में ही नहीं, बल्कि स्कूल में ख़ाली कालखण्ड में भी वे एक दूसरे को कहानी सुना रहे होते हैं, या किसी पात्र पर चर्चा कर रहे होते हैं। बच्चे यह भी बताते हैं कि किसने कौन–सी किताब पढ़ी; उस किताब में क्या था; किसने लिखी है; कौन–सा चित्र पसन्द आया; आदि।

इसीलिए अब हमारे यहाँ पुस्तकालय के लिए कोई विशेष कालखण्ड की व्यवस्था नहीं है। जब भी बच्चों को समय मिलता है, ख़ाली होते हैं, उन्हें पुस्तकालय का इस्तेमाल करने की आज़ादी है। बच्चे किताबें घर भी ले जा सकते हैं।

पुरुषोत्तम : घर ले जाने के लिए किताबें जारी कैसे होती हैं?

वरुण : हमारे यहाँ पुस्तकें जारी करने के लिए यह व्यवस्था है कि बच्चे अपनी पसन्द

की पुस्तकें उठा सकते हैं। उसके लिए किसी प्रकार की मनाही नहीं है। बच्चे अपनी पसन्द की पुस्तक लेने के बाद उसे घर ले जा सकते हैं और वहाँ भी उसको पढ़ सकते हैं। पढ़ने के बाद बच्चे उन पुस्तकों के अनुभव लिखते हैं, और उनकी पसन्दीदा पुस्तक के बारे में बताते भी हैं।

पुरुषोत्तम : कक्षा में किताबें रखने से बच्चों का किताबों से जुड़ाव बना, यह आपने बताया। लेकिन उनको पढ़ने का चस्का लगे, इसके लिए आपने क्या किया?

वरुण : शुरुआत में, मैं सभी बच्चों को अपने हाथ से पुस्तक देता था। एक पुस्तक मैं ख़ुद लेकर उनके साथ बैठता था, और हम सभी मिलकर पढ़ते थे। मिलकर यानी, मैं अपनी उस पुस्तक को पढ़ता था और बच्चे अपनी पुस्तक में उसे देखते जाते थे। पढ़ने के बाद उस पुस्तक में क्या बातें कही गई हैं, उनपर बातचीत होती है। कुछ बातें वे बताते, कुछ मैं भी। लगभग डेढ़ महीने तक लगातार मेरा यह प्रयास जारी था। कई तरह की पुस्तकें इस दौरान पढ़ी गईं। बच्चे के परिवेश से, विज्ञान से जुड़ी हुईं पुस्तकें, कहानियाँ, आदि। कभी–कभी बच्चे पुस्तकें चुन लेते थे, उनके पृष्ठ देखकर उनको उलटा–पलटा कर बैठ जाते थे, इसलिए मैंने उनको भी पढ़ना शुरू किया। ऐसा करके बच्चों में रुचि बनने लगी। फिर बच्चों ने ख़ुद–से पुस्तक चुनना शुरू किया, और वे उन्हें घर भी ले जाने लगे। यहाँ मैंने हर कक्षा के लिए निर्धारित किया कि कुछ बच्चे सोमवार को, और कुछ बच्चे अगले दिन पुस्तकें घर ले जाएँ। ऐसा इसलिए कि हम उन पुस्तकों पर बात कर पाएँ। बच्चे पुस्तकें पढ़कर आते हैं। प्रार्थना सभा के बाद जब वे गोल घेरे में बैठते हैं वहाँ वो बच्चा, जो पुस्तक घर ले गया था, उसे बीच में रखकर बाक़ी बच्चों को उसके बारे में बताता है। बच्चे उसमें सवाल भी करते हैं। ऐसे कुछ प्रयास बच्चों की किताबों में रुचि विकसित करने के लिए किए गए हैं और अभी जारी हैं।

पुरुषोत्तम : पुस्तकालय की किताबों को पढ़ना क्या कक्षा में विषय शिक्षण के दौरान मदद करता है?

वरुण : अपने शिक्षण कार्यों के दौरान मैंने पाया है कि भाषा शिक्षण में पुस्तकालय काफ़ी मदद करता है। पढ़ने में, लिखना सीखने, अपने अनुभवों को व्यक्त करने, आदि में कई तरह से। कई सारी पुस्तकें ऐसी हैं जिनको मैंने नहीं पढ़ा, पर बच्चों ने पढ़ लिया है। कभी मैं उस पुस्तक पर बात करता हूँ, बच्चे कहते हैं कि उन्होंने उसे पढ़ लिया है। वे बता भी देते हैं कि क्या पढ़ा है। मैं उन्हें उनके अनुभव दर्ज करने के लिए ए–4 साइज़ के चार पेजों की एक पुस्तिका बनाकर दे देता हूँ। उसमें बच्चे पढ़ी गई पुस्तक के अनुभव दर्ज करते हैं। कौन–सी पुस्तक उन्हें अच्छी लगी; उसमें ऐसी क्या बातें हैं जो वो सबको बताना चाहते हैं; आदि। इस तरह से हमारे पास उस पुस्तक से जुड़े अनुभव जमा होते जाते हैं। नए बच्चों के लिए इन्हें पढ़ना एक नया अनुभव होता है। इस तरह सीखने के लिए हमारा बाल पुस्तकालय

बहुत अच्छा काम कर रहा है। हम इसको और बेहतर बनाने के प्रयास कर रहे हैं। हमने स्कूल की प्रधान पाठिका मैडम से पुस्तकालय को और बेहतर बनाने की कार्ययोजना पर बात की है। हम सारी पुस्तकों को क्रम से दीवार में एक पट्टी और खण्ड बनाकर उन्हें प्रदर्शित करें, ताकि हर पुस्तक बच्चे की नज़र के सामने हो और वो चाहे तो आसानी से उसे ले सके। हमारी योजना है कि पुस्तकालय बेहतर तरीक़े से काम करे, और पुस्तकों को भी संरक्षित रखा जाए। प्रशिक्षणों में मैंने कई शिक्षकों को यह कहते सुना है कि पुस्तकें फट जाती हैं। मेरे यहाँ भी स्थिति ऐसी ही है। हमारे पुस्तकालय में सफ़ेद वाला मोटा टेप, गम, कैंची, स्टेपलर जैसी चीज़ें रहती हैं, और सप्ताह में एक दिन पुस्तकों को सुधारने के लिए निश्चित है। उस दिन हम उन सारी पुस्तकों की मरम्मत करते हैं जिनका जिल्द निकल गया हो, या कवर पेज निकला हो, या कुछ पेज फट गए हों। इस तरह वो पुस्तक बच्चों के इस्तेमाल के लिए फिर से नई हो जाती है। वैसे भी अलमारी में दीमकों द्वारा खाए जाने से ज़्यादा बेहतर यही है कि ये बच्चों के द्वारा इस्तेमाल में ख़राब हों! कुछ किताबें रैक में और कुछ कक्षा में हैं। जैसा कि मैंने पहले कहा हमने सभी किताबों को स्तरवार बाँट दिया है और काम कर रहे हैं।

पुरुषोत्तम : आपके पुस्तकालय में कितनी, और किस तरह की पुस्तकें हैं, और आपने इन्हें कैसे इकट्ठा किया है?

वरुण : मेरे यहाँ वर्तमान में लगभग 650 पुस्तकें हैं। इनमें से कुछ शासन स्तर से मिली हैं, और कुछ छोटी पुस्तकें हैं जो समाचार–पत्रों के साथ आती हैं। मसलन, *बाल भास्कर*, आदि। कुछ पुस्तकें स्कूल में पहले से ही रखी हुई थीं। उन पुस्तकों को हमने ठीक किया और अब इस्तेमाल में ला रहे हैं। कभी बच्चे और शिक्षक भी कुछ पुस्तकें घर से ले आते हैं। जैसे– मेरे पास की कुछ छोटी–छोटी बाल कहानी की पुस्तकें और अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन से भी *संदर्भ* और *चकमक* जैसी कुछ पुस्तकें मिली हैं। इस तरह से हमने अपना पुस्तकालय बनाया है, और यह अभी भी बन रहा है।

पुरुषोत्तम : ये बताइए कि पुस्तकालय का विद्यालय में क्या योगदान है?

वरुण : पुस्तकालय बच्चों को रचनात्मक रूप से सोचने में काफ़ी मदद करता है। पाठ्यपुस्तकों से वो सारी चीज़ें पूरी नहीं हो पातीं जो एक पुस्तकालय कर सकता है। पुस्तकालय बच्चों की कल्पनाशीलता को बढ़ाता है, उनको नई–नई चीज़ों के बारे में जानकारियाँ मिलती हैं, और यह एक तरह से बच्चों को सीखने में आत्मनिर्भर बनाता है। बच्चे जब आत्मनिर्भर होने लगते हैं, यह जानने लगते हैं कि वे भी कुछ जानते हैं, तब वे खुलकर बोलने भी लगते हैं। मेरा मानना है कि यदि विद्यालय में पुस्तकालय नियमित रूप से संचालित होते हैं, बच्चे वहाँ जाते हैं, और पढ़ते हैं, यदि शिक्षक भी वहाँ जाते हैं, मैं मानूँगा कि वो विद्यालय जीवन्त है। दूसरे शब्दों में, विद्यालय को जीवन्त रखने के लिए पुस्तकालय या पुस्तक का कोना होना आवश्यक है, क्योंकि एक ही तरह की पुस्तकें पढ़कर बच्चे बोर हो जाते हैं। बच्चों को नवीनता चाहिए, और इस नवीनता की भरपाई पुस्तकालय बख़ूबी

करता है। एक पुस्तकालय में कई तरह की पुस्तकें होती हैं, बहुत सारे लेखन होते हैं, और कई सारे लेखकों के अनुभव रहते हैं। उन सभी लेखकों, कहानीकारों, कवियों–कवित्रियों का अनुभव बच्चों को मिलता है। मैं मानता हूँ कि सीखने और बच्चों को एक ऊँची उड़ान देने के लिए विद्यालय में पुस्तकालय का होना ज़रूरी है।

पुरुषोत्तम : आपके पुस्तकालय में कमी क्या है?

वरुण : जैसा मैंने कहा, अभी ज़्यादातर पुस्तकें कक्षा में ही हैं। यदि व्यवस्था के तौर पर देखा जाए, मैं चाहता हूँ कि मेरे विद्यालय में पुस्तकालय के लिए एक अलग से कमरा हो। अलग से स्वतंत्र कक्ष होने से हम ज़्यादा किताबें रख सकते हैं, और उनकी देखरेख व सार–सँभाल आसान हो जाती है। इसमें हम डिजिटल लाइब्रेरी भी स्थापित कर सकते हैं। आजकल मैंने देखा है कि यूट्यूब वग़ैरह कुछ सोशल मीडिया में डिजिटल लाइब्रेरी भी हैं, उनमें भी कई पुस्तकें होती हैं। अगर एक अलग कमरा, पुस्तकों को व्यवस्थित और सुसज्जित करने के लिए रैक, आदि मिल जाएँ, तो अभी जिन पुस्तकों को हम टेबल पर सजाकर रखते हैं उन्हें क्रम से जमाकर रख सकते हैं। आने वाले सत्र में यदि कुछ राशि आती है या कहीं और से कोई मदद मिलती है, तब हम पुस्तकालय को बेहतर करने का काम करेंगे।

पुरुषोत्तम : अपने स्कूल पुस्तकालय और उसकी प्रक्रियाओं के बारे में बताने के लिए आपका बहुत–बहुत धन्यवाद।

सभी चित्र : पुरुषोत्तम सिंह ठाकुर

वरुण कुमार साहू तक़रीबन दो दशक से प्राथमिक कक्षाओं में शिक्षण कार्य कर रहे हैं। उन्हें आदिवासी अंचल के स्कूलों में भी शिक्षण का लम्बा अनुभव है। वर्तमान में प्राथमिक शाला बेलतरा, ज़िला धमतरी, छत्तीसगढ़ में शिक्षक के पद पर कार्यरत हैं। उन्हें बच्चों के साथ नवाचारी तरीक़े से काम करना बहुत अच्छा लगता है।

सम्पर्क : varunkumarsahu77@gmail.com

पुरुषोत्तम सिंह ठाकुर, 2012 से अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन से जुड़े हैं। फ़िलहाल छत्तीसगढ़ के रायपुर संस्थान में कार्यरत हैं। फ़ाउण्डेशन से जुड़ने से पहले पुरुषोत्तम का पत्रकारिता में 20 साल का अनुभव है, जिसमें 7 साल एनडीटीवी के राज्य प्रतिनिधि के बतौर भुवनेश्वर में कार्य किया है। अभी भी वह PARI और Down to Earth जैसी पत्रिकाओं में शिक्षा और ग्रामीण भारत की कहानियाँ लिखते हैं।

सम्पर्क : purusottam.thakur@azimpremjifoundation.org

पढ़ने की संस्कृति के वाहक हैं पुस्तकालय

इस बार का संवाद पुस्तकालय विषय पर है। इस संवाद में हमारे साथी हैं– मनोज कुमार, अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय, बेंगलूरु, संगीता, शिक्षिका, सितारगंज ब्लॉक, ऊधम सिंह नगर, उत्तराखंड; ख़ुशबू कश्यप, प्रधान पाठक, शासकीय प्राथमिक शाला लोहर्सी, जांजगीर, छत्तीसगढ़; वर्तुल ढ़ौंडियाल, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, देहरादून उत्तराखंड; शीशपाल, स्टेट रिसोर्ट सेंटर, ज्ञान विज्ञान समिति, हरियाणा और सुनील साह, राज्य प्रमुख अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, रायपुर, छत्तीसगढ़। सुनील ने इस संवाद को फैसिलिटेट किया है। –सं.

सुनील : आज की चर्चा पुस्तकालय के इर्द गिर्द है। पुस्तकालय अपने-आप में एक बहुत बड़ी परिकल्पना है। हम सभी लोगों का अपने जीवन में, अलग-अलग तरीक़े से पुस्तकालय के साथ वास्ता रहा होगा। स्कूली जीवन में, कॉलेज के समय, या अभी भी। हमारे मन में जो सवाल उठते हैं, उनके जवाब खोजने की कोशिश में हमें लगता है कि पुस्तकालय चलते हैं। शायद वहाँ कोई ऐसी कोई सामग्री मिल जाए जो मददगार हो। पुस्तकालय की कल्पना अकसर ऐसी होती है कि यह कोई बहुत बड़ी जगह होगी, जहाँ व्यवस्थित रूप से बहुत सारी किताबें और टेबल-कुर्सी रखी होंगी, और वहाँ सन्दर्भ सामग्री खोजकर उसको पढ़ सकते हैं। मैं अपने स्कूल-कॉलेज के दिन याद करता हूँ, अकसर मेरे शहर की एक बड़ी लाइब्रेरी भी मुझे याद आती है। शाम को सब्ज़ी लाने की ज़िम्मेदारी मेरी थी। लाइब्रेरी के पास ही सब्ज़ी की दुकान भी थी। हम वहाँ जाते, पहले एक घण्टा पढ़ते, फिर सब्ज़ी लेकर आते थे। आशय यह है कि शहर के बीच बना यह पुस्तकालय दिनचर्या में शामिल था। आज फ़र्क़ स्थितियाँ हैं।

आज की चर्चा में हम वर्तमान परिस्थिति में पुस्तकालय को समझना चाहते हैं। आज के स्कूली वातावरण में हम पुस्तकालय को कैसे देखते हैं; कैसे समझते हैं; और स्कूल में पुस्तकालय होने के मायने क्या हैं? मैं चर्चा की शुरुआत मनोज के साथ करना चाहता हूँ।

मनोज : मैं दो-तीन बातें रखूँगा। पहली, हमारे नीति दस्तावेज़, या जो शिक्षा की नीति है वह स्कूल पुस्तकालय को कैसे देखती है। दूसरी बात, स्कूल, ख़ासकर प्राथमिक विद्यालय, के पुस्तकालय का एक महत्त्वपूर्ण काम है; साक्षरता, माने लिटरेसी। और लिटरेसी के काम के लिए स्कूल पुस्तकालय की भूमिका कहाँ से आई? और तीसरी बात, पुस्तकालय एक संस्था के रूप में हमारे नागरिक जीवन से कैसे जुड़ता है; और ऐसे नागरिक जीवन की शुरुआत स्कूल में कैसे हो सकती है? यह एक व्यापक मुद्दा है।

हाल ही के नीतिगत दस्तावेज़ में, जो अधिनियम है, जो कानूनी प्रावधान हैं, उनमें पुस्तकालय को स्कूल का अनिवार्य अंग माना गया है। उनमें कहा गया है कि प्राथमिक विद्यालय सहित सभी स्कूलों में पुस्तकालय होना चाहिए। उसमें सभी विषयों और साहित्य की किताबें होनी चाहिए। असल में, सभी शिक्षक मानते हैं कि स्कूल में पुस्तकालय का होना अच्छा है। लेकिन स्कूलों में कमरा ही ठीक नहीं है, जो बहुत ज़रूरी शिक्षण सामग्री है, उसी का

अभाव है, तब इस स्थिति में पुस्तकालय बहुत दूर की चीज़ लगती है। जो पुस्तकालय हमने अपने वयस्क जीवन में देखे हैं, उनको अगर हम स्कूल में देखने की कोशिश करते हैं, तब हम उसकी कल्पना नहीं कर पाते। मैं ऐसा नहीं कह रहा कि एक भव्य पुस्तकालय हो, लेकिन हम कम-से-कम ऐसे पुस्तकालय की कल्पना करें जो बच्चों के लिए एक्सेसिबल हो और उन्हें आमंत्रित करे।

स्कूल से जुड़े कई लोग इसकी ज़रूरत समझते ही नहीं हैं, क्योंकि अकसर पुस्तकालय की अनिवार्यता पर बहुत बात नहीं होती है। आमतौर पर प्राथमिक विद्यालय की सबसे पहली ज़िम्मेदारी साक्षरता ग्रहण करने और साक्षरता सम्बन्धित कौशल के विकास की मानी जाती है।

शिक्षा से जुड़े पदाधिकारियों की कल्पना में प्राथमिक विद्यालय एक ऐसी जगह है जो बच्चों को सामान्य तौर पर पढ़ना-लिखना सिखा दे। जो लोग साक्षरता के कार्यक्रम चलाते हैं उनका एक अलग नज़रिया है, और वह यह कि असल में अगर आप किसी को साक्षर बनाना चाहते हैं, उसके कम-से-कम तीन पहलू हैं। सबसे पहला, उसमें साक्षरता का कौशल होना चाहिए। यहाँ साक्षरता कौशल मैं व्यापक अर्थ में कह रहा हूँ। बच्चे को पढ़ना-लिखना आना चाहिए, वो भी मायने सहित।

लेकिन उसके साथ दूसरी चीज़ है पढ़ने की रुचि, और तीसरी है पढ़ने की संस्कृति। पढ़ने की रुचि व्यक्तिगत तौर पर, लेकिन पढ़ने की संस्कृति, यानी सभी का मिलकर, एक जगह बैठकर पढ़ना। पुस्तकालय में पढ़ना इस रुचि को पैदा और पोषित करने में मदद करता है, और इसी अर्थ में पुस्तकालय महत्त्वपूर्ण है। वाक्य को पढ़ना आ गया, और कोई तकनीकी तौर पर साक्षर बन गया, लेकिन उसमें कभी पढ़ने की इच्छा ही नहीं जागी, कभी पढ़ने की आदत ही विकसित नहीं हुई। उसके आसपास पढ़ने की संस्कृति भी नहीं है जिससे इस आदत का विकास हो पाए, तब वह साक्षरता अधूरी है। यदि इस व्यापक नज़रिए से साक्षरता को देखें, हम पाते हैं कि विद्यार्थी-केन्द्रित कक्षा बनाने की कोशिशों के बावजूद साक्षरता का कार्यक्रम शिक्षक-निर्देशित ही है।

चित्र : हीरा धुर्वे

पुस्तकालय ऐसी जगह है जहाँ पढ़ने की आदत का विकास होता है, अभ्यास होता है, और पढ़ने की सामान्य संस्कृति बनती है। पुस्तकालय में मन में आए सवालों का जवाब मिलता है, वहीं यह मन में सवाल भी पैदा करता है। इसका एक बड़ा उद्देश्य यह है कि लोग ख़ुद-से पढ़ना शुरू करें, और सीखने में स्वायत्त हों। सीखने में स्वायत्तता के लिए दो-तीन पूर्व शर्तें हैं। पहली, आपके मन में सवाल आने

चाहिए। माने, ऐसा माहौल बने कि मन में सवाल आएँ, और आपको यह भी लगना चाहिए कि इसपर किसी और से बात करने से पहले मैं ख़ुद देखूँ कि उस सवाल की खोजबीन कैसे की जा सकती है। शिक्षा का एक बड़ा उद्देश्य सीखने में आत्मनिर्भर होना है। इसी से आप जीवनपर्यन्त सीखने वाले बनते हैं। जीवनपर्यन्त स्वप्रेरणा से सीखने की शुरुआत स्कूल में ही हो सकती है, क्योंकि अभी तक स्कूल ही एक ऐसी जगह बन पाई है जहाँ सभी बच्चे आते या आ पाते हैं। स्कूल से आगे कॉलेज तक बहुत कम ही बच्चे पढ़ पाते हैं। इसीलिए स्कूल ही वो जगह है, जो सबके लिए है। इसलिए भी पुस्तकालय का स्कूल में होना महत्वपूर्ण हैं क्योंकि स्वप्रेरणा से सीखना, सीखने में आत्मनिर्भरता और ज़िम्मेदारी लेने का जो भाव है, वह पुस्तकालय में ही आता है।

इन तमाम चीज़ों को जोड़कर देखने से यह समझ आता है कि शिक्षा का अधिकार अधिनियम में पुस्तकालय की बात सजावटी बात नहीं है। पुस्तकालय होना ही चाहिए। यह किसी स्कूल के लिए उतना ही अनिवार्य है जितना कि दूसरी सुविधाएँ।

सुनील : कैसे हम पढ़ने की संस्कृति विकसित करें, और साथ-ही-साथ जो सीखने की स्वायत्तता है, इसको कैसे सुनिश्चित करें? मुझे लगता है, यह बहुत महत्त्वपूर्ण बात है अगर हम स्कूलों में पुस्तकालय के सन्दर्भ में इसको समझें। इस सन्दर्भ में वर्तुल आप प्रकाश डाल पाएँ, हमें मदद मिलेगी?

वर्तुल : अगर स्कूल अवलोकन के मेरे अनुभवों के आधार पर कहूँ, आज से क़रीब 10-12 साल पहले तक स्कूल में पुस्तकें या पुस्तकों के ऊपर बातचीत लगभग नहीं ही थी। अभी कुछ सालों से उत्तराखंड में हर 2 साल में स्कूल को पुस्तकों के लिए सरकार द्वारा फ़ण्ड दिया जाता है। हालाँकि, ख़रीदी जाने वाली पुस्तकों का चयन कैसे हो, उसके आधार स्पष्ट नहीं हैं। लेकिन आज पुस्तकालय को स्कूल के एक अनिवार्य हिस्से के रूप में देखा जाता है। यह बात एकदम सही है कि पुस्तकालय होना बच्चों के बहुमुखी विकास के लिए आवश्यक है। नई शिक्षा नीति के बाद हो रहे एफ़एलएन (फ़ाउण्डेशनल लिटरेसी व न्यूमरेसी) के प्रशिक्षणों में भी पुस्तकालय, और पढ़ने की घण्टी को एक मुख्य हिस्से के रूप में देखा गया है। शिक्षक को अब पता है कि बच्चों को सिर्फ़ पढ़ने का समय भी मिलना चाहिए। कितना समय वे उपलब्ध करा पाते हैं, यह अलग बात है।

सुनील : यह सवाल बार-बार उठता है कि पढ़ने के लिए पुस्तकें किस तरह की हों, पुस्तकों का चयन कैसे करें?

वर्तुल : इसका एक उदाहरण *बरखा* सीरीज़ की किताबें हैं। इनको हम ग्रेडेड टेक्स्ट भी कहते हैं। यह किताबें बच्चों के पढ़ने के स्तर, इस स्तर पर उनकी शब्दावली, आयु, आदि को ध्यान में रखती हैं।

जहाँ तक हमारा अनुभव है, यह किताबें काफ़ी हद तक सफल भी हैं। हालाँकि, एक आलोचना यह है कि इनकी भाषा कृत्रिम हो जाती है, कृत्रिम-सी कहानी हो जाती है। यह जैसा साहित्य होना चाहिए, वैसा नहीं है और बहुत हद तक ऐसा है भी, लेकिन हमने देखा है कि तब भी शुरुआती सीखने वालों को उनमें आनन्द भी आता है।

तूलिका, कथा, प्रथम जैसे बहुत सारे प्रकाशनों की किताबों में भी ऐसी रचनाएँ हैं, जिनमें नियंत्रित / सीमित शब्दावली का प्रयोग है। और ये भी अच्छी पुस्तकें साबित हुई हैं। पुस्तकालय पाठ्यचर्या के विषयों को सीखने में मददगार होते हैं। साथ ही, ये अलग-अलग रचनाओं, लेखन शैलियों, अलग-अलग तरह के मुद्दों और सामाजिक ताने-बाने से परिचित कराने का भी एक मौक़ा है। अकसर बच्चों का एक सीमित एक्सपोज़र होता है। इस तरह के टेक्स्ट उनको दुनिया से भी जोड़ते हैं।

किस तरह की किताबें हों? इसमें एक बात यह है कि विविध तरह की किताबें हों, कई

चित्र : प्रशांत सोनी

भाषाओं में हों, और जहाँ तक सम्भव हो, बच्चों की पहली भाषा में भी किताबें हों। *स्कूली शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2023* में यह बात कही गई है, और इससे पहले *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005* ने भी इस बात पर बहुत ज़ोर दिया था। इस बात के क्रियान्वयन के लिए उत्तराखंड में शुरुआती *बरखा* सीरीज़ का कुमाऊँनी और गढ़वाली में अनुवाद भी किया गया है। कुछ अन्य पहाड़ी भाषाओं में भी इनका अनुवाद हो रहा है। कहने का मतलब है, ऐसी किताबें हों जिनमें अलग-अलग समुदायों का रिप्रेजेंटेशन हो, जेंडर सेंसिटिविटी और लोककथाएँ भी हों। लेकिन हमें यह भी देखना होगा कि बहुत सारी बाल कथाओं, लोककथाओं में काफ़ी फ़्यूडल वैल्यूज़ (सामन्ती मूल्य) भी हैं, तब क्या हम इनको फ़िल्टर कर सकते हैं? अगर दो-तीन बिन्दुओं में कहूँ, पुस्तकों में भाषाओं का समावेश हो, बच्चों को कई तरह की भाषाओं, ख़ासकर उनके घर की भाषा, को पढ़ने के अवसर मिलें। दूसरा, विभिन्न विधाओं या लेखन शैलियों की किताबें हों। जैसे– विज्ञान गल्प, नॉन-फ़िक्शन, कोई कहानी-कविताएँ, आदि। तीसरा, संस्कृति, विविधता, सभी का एक्सपोज़र मिले। ऐसी पुस्तकें भी होनी चाहिए, जो पढ़ने की शुरुआत में मदद करें। कई प्राथमिक स्कूलों में पुस्तकालय के लिए जगह ही नहीं है। उसके विकल्प के तौर पर हमने मोबाइल पुस्तकालय, पोटली पुस्तकालय, आदि के बारे में सोचा। 30 किताबें आएँगी 45 दिनों के लिए। फिर 45 दिन बाद 30 नई किताबें दी जाएँगी। ऐसे करके सालभर में 150 से ऊपर किताबें स्कूल को मिलेंगी। दूसरा विकल्प है– रीडिंग कॉर्नर। स्कूल में इस तरह से किताबें डिस्प्ले हों जहाँ बच्चों की पहुँच हो, पढ़ने की घण्टी सुनिश्चित हो। एक घण्टा, जिसमें बच्चे अपनी पसन्द से फ़्री रीडिंग टाइम में अपनी इच्छा से पढ़ सकें।

सुनील : धन्यवाद वर्तुल। शीशपाल को लिटरेसी प्रोग्राम, जिसमें गाँव-गाँव में पुस्तकालय स्थापित करने का काम किया गया था, और अनौपचारिक स्कूल चलाने के भी अनुभव हैं। आपसे हम समझना चाहते हैं कि स्कूल में एक अच्छे पुस्तकालय को विकसित करने के क्या तरीक़े हो सकते हैं। ये महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि हमारे अधिकांश स्कूल ग्रामीण क्षेत्रों में हैं जहाँ संसाधन उपलब्ध नहीं हो पाते। मसलन, पर्याप्त कमरे, बैठने की सुविधा, आदि नहीं होती। इन

सारी परिस्थितियों में स्कूल में पुस्तकालय का संचालन कैसे हो?

शीशपाल : यह बात पहले आई है। लेकिन मैं रेखांकित करना चाहूँगा कि शुरुआती स्तर के लिए ऐसी किताबें हों जो चित्रात्मक हों, चित्र के साथ एक-दो शब्द वाली और कुछ शब्दों के दोहरान वाली किताबें हों। मिसाल के तौर पर, एकलव्य, प्रथम, रूम टू रीड की किताबें। ये किताबें सबसे ज़्यादा पसन्द की जाती हैं। मुझे आजकल बच्चों की कुछ किताबों में बच्चों के बनाए हुए चित्र भी दिखते हैं। फिर चाहे वो कुछ पत्रिकाओं में हों, किताबों में हों और यहाँ तक कि कुछ किशोर साहित्य में बच्चों की लिखी हुई कहानियाँ या कविताएँ भी प्रकाशित हुई हैं। विशेष रूप से, मुस्कान और एकलव्य के काम में ऐसा दिखता है। उनमें वही बच्चा आता है, वही उसका पाठक बनता है, और वही उसका लेखक भी है। इससे वो शब्दावली, वो भाव-भंगिमाएँ, जो उसके जीवन में घटित हो रहा है, सब ओरिजिनल होता है। आज से कुछ सालों पहले जो साहित्य उपलब्ध था, उसमें सिर्फ़ मध्यम वर्गीय बच्चा ही दिखाई देता था। अन्य समुदायों के बच्चे दिखाई नहीं देते थे और दलित व वंचित तो मिलते ही नहीं थे। हालाँकि, प्रेमचंद जैसे कुछ साहित्यकारों ने समाज का सच्चा चित्रण करने के प्रयास किए, और उनकी कहानियों में अल्पसंख्यक व ग़रीबों की व्यथा और पीड़ाएँ भी हैं, लेकिन बच्चों और शुरुआती पाठकों के लिए ऐसा साहित्य कम ही था। अब ऐसा साहित्य उपलब्ध है। दूसरा सवाल है, क्या साहित्य स्कूल की पहुँच में है; क्या स्कूल के पास इतना बजट है; 5000 या 10000 रुपए के बजट में कितनी विविध किताबें ख़रीदी जा सकती हैं? साथ ही, बच्चों की रचनाओं को भी काम में लिया जा सकता है। जैसे– बच्चों ने कहानी बनाई, कोई कविता लिखी। इस तरह की चीज़ भी हम सहेजकर रख सकते हैं। कुछ शिक्षक ऐसी कुछ चयनित रचनाओं को लेमिनेट करवाकर कक्षा में पढ़ने-लिखने के लिए काम में लेते हैं। यह एक तरीक़ा हो सकता है बच्चों की रचनाओं को जगह देने और काम लेने का।

सुनील : हमारे साथ शिक्षिका साथी भी हैं। आप दोनों ने अपने विद्यालय में पुस्तकालय को लेकर काफ़ी काम किया है। बच्चों में पढ़ने के लिए ललक पैदा करना, बहुत सारी किताबों में से अपनी पसन्द की किताब चुनना, उसे पढ़ना, फिर नई किताब का आग्रह करना। माने, पढ़ने की संस्कृति कैसे विकसित होती है; बच्चों में पढ़ने की ललक कैसे पैदा होती है; और इसके लिए आप अपने विद्यालय में क्या करती हैं? पहले संगीताजी से सुनते हैं, फिर ख़ुशबूजी से।

संगीता : मैं पढ़ने की घण्टी पर अपनी बात केन्द्रित करूँगी। हमारे स्कूल में बच्चों के पढ़ने के लिए घण्टी है। हमने पढ़ने की घण्टी का समय 1:00 से 2:00 बजे तक निर्धारित किया है। लेकिन बच्चे केवल उसी समय वहाँ पढ़ने जाएँगे, ऐसा प्रतिबन्ध नहीं है। जब भी उनकी इच्छा हो, वे जाकर किताबें पढ़ सकते हैं। जैसे– प्रार्थना सभा से पहले, खाने की छुट्टी, खेल के समय, आदि। कुछ बच्चे किताबें पढ़ने के लिए बहाने ढूँढ़ते हैं कि उनको किस तरह से पुस्तकालय में जाने का मौक़ा मिले। वे वहाँ की किताबें अपनी रुचि से पढ़ते हैं। आप ललक की बात कर रहे हैं। इसके लिए ज़रूरी है कि कभी-कभार हम किसी किताब का चयन करें और उस किताब के कुछ हिस्से बच्चों को पढ़कर सुनाएँ। बातचीत में बच्चों के लिए इतनी जगह हो कि वे अपने अनुभव जोड़ पाएँ, चर्चा के लिए हम जो प्रश्न बनाएँ, वह ऐसे हों कि बच्चे उनसे जुड़ पाएँ, उनको सोचने, कल्पना करने का अवसर मिले। जब हम बच्चों को किताबें पढ़कर सुनाते हैं, मैंने पाया है कि शुरुआती पाठक, विशेष रूप से कक्षा एक-दो के बच्चे, अकसर उसी किताब को पढ़ना पसन्द करते हैं, जो पढ़कर सुनाई गई है, चाहे वह पुस्तकालय में पढ़ें या घर जाकर। उनको कभी पढ़कर सुनाने, उनसे किताबों के बारे में बातचीत करने से वे किताबें पढ़ने की ओर प्रेरित होते हैं। किताब कैसी लगी; कहानी कैसी लगी; इसमें क्या अच्छा लगा; कौन-सा

चित्र अच्छा लगा? कभी-कभार इन सब चीज़ों पर बच्चों से बात करना भी उन्हें पढ़ने के लिए प्रेरित करता है। दूसरा, कक्षा का माहौल फ़र्क़ होता है। वहाँ एक पाठ्यपुस्तक होती है, और बच्चों को भी शायद यह लगता है कि पाठ्यपुस्तक के सवालों का सही जवाब देना है। इससे भी उनमें भय की भावना रहती है। लेकिन पुस्तकालय में बातचीत के हिस्से के तौर पर सवाल होते हैं। वहाँ वे स्वतंत्र होकर अपनी बात रख पाते हैं। हमारे कक्षा 3 के बच्चे अभी *बरखा* सीरीज़ की किताबें पढ़ रहे हैं। वे उन्हें घर ले जाते हैं, पढ़ते हैं और पढ़कर नई कहानी भी बनाते हैं। इसके साथ ही, पुस्तकालय हो या सवेरे प्रार्थना सभा, यदि वहाँ भी बच्चे कहानी सुनाना चाह रहे हैं, या जो पढ़ा है उस सन्दर्भ में कुछ कहना चाहते हैं, वे कह सकते हैं।

सुनील : ख़ुशबू, आप कुछ कहें!

चित्र : हीरा धुर्वे

ख़ुशबू : आज के समय में प्राथमिक विद्यालय में एक आकर्षक पुस्तकालय की परिकल्पना कर पाना सम्भव नहीं लगता है। मैंने अपने विद्यालय में एक अच्छा पुस्तकालय बनाने का प्रयास किया है, उसी के बारे में कहूँगी। मेरे स्कूल में भी जगह की कमी है। इसलिए मैंने अपने कार्यालय में ही पुस्तकालय बनाया है और उसे आकर्षक बनाने का भी प्रयास किया है। मैं सुनिश्चित करती हूँ कि प्रतिदिन बच्चों को पढ़ने के लिए एक घण्टा मिले। जैसा संगीताजी ने बताया कि उसमें कोई निर्धारित समय नहीं है। किसी दिन लंच के बाद, या किसी दिन पहले कालांश में ही बच्चे पुस्तकालय में आते हैं। अलग-अलग कक्षा के बच्चे अलग-अलग दिन आते हैं। इस पुस्तकालय में बच्चों की आयु के अनुरूप कई प्रकार की पुस्तकें हैं जिनके बारे में ऊपर भी बात हुई है। एक अनुभव बताना चाहूँगी। तीसरी कक्षा के एक बच्चे को ठीक-से पढ़ना नहीं आता है। एक बार पुस्तकालय कालखण्ड में वह पुस्तक ले गया और उस कहानी को लिखने लगा। जब कालखण्ड समाप्त हुआ, उसने पुस्तक रख दी। अगले दिन फिर वही पुस्तक ढूँढ़ने लगा। मैंने कहा, 'दूसरी ले लो।' उसने कहा, 'नहीं, मुझे लोमड़ी वाली पुस्तक ही चाहिए।' फिर मैंने वह पुस्तक उसको ढूँढ़कर दी। इस तरह उसमें पढ़ने की रुचि पैदा हो रही है। वह बच्चा अब काफ़ी पुस्तकों को पढ़ पा रहा है। यह भी कि हम बच्चों को पुस्तकालय में ही बाँधकर नहीं रखते हैं। यदि वे कहते हैं कक्षा में ही पढ़ना चाहेंगे, तब उनको कक्षा में पुस्तकें दे दी जाती हैं। पुस्तकालय में भी, वह बैठकर पढ़ना चाहें, लेटकर पढ़ना चाहें, साथ में पढ़ना चाहें, यह सब कर सकते हैं। इसपर कोई रोक-टोक नहीं रहती। पूरी स्वतंत्रता है उनको पढ़ने की। बच्चे ख़ुद-से पुस्तकों को चुनते हैं, और पुस्तकालय में पढ़ते हैं। अब हमें यह भी नहीं बोलना पड़ता है कि आज पुस्तकालय का कालखण्ड है, और पढ़ना है। बच्चे ख़ुद हमारे पास आते हैं, अपनी मनपसन्द पुस्तक ले जाते हैं। कभी-

कभार घर ले जाने के लिए भी किताब देते हैं। इससे यह होता है कि बच्चे तो पढ़ते ही हैं, साथ ही उनके माता-पिता, दादी-दादा इन सबको भी कहानी सुनने का मौक़ा मिलता है। पिछले 2 सालों से हम कहानी उत्सव का आयोजन भी कर रहे हैं। इसमें हम बच्चों के माता-पिता, दादा-दादी को भी बुलाते हैं, और उनसे कहानी भी सुनते हैं। पुस्तकालय की ये पुस्तकें बच्चों, उनके माता-पिता, सभी के लिए लाभदायक हैं।

सुनील : मनोज, अकसर ये सवाल होता है स्कूलों में, कि पाठ्यपुस्तक पढ़ाएँ या पुस्तकालय की किताबें, इस द्वन्द्व से शिक्षक साथी गुज़रते हैं। एक अच्छे पुस्तकालय की परिकल्पना में यह महत्त्वपूर्ण सवाल है। शिक्षक अपनी भूमिका कैसे देखें; और उनको क्या करना चाहिए? स्कूल में पाठ्यपुस्तक और पुस्तकालय की किताबें एक दूसरे की पूरक हैं, इसपर यदि कुछ कह पाएँ?

मनोज : यह बहुत ज़रूरी सवाल है। यह द्वन्द्व है, और मेरा मानना है कि पुस्तकालय पढ़ने-लिखने की एक व्यापक दुनिया का एक छोटा-सा प्रतिनिधित्व करता है। पाठ्यपुस्तक भी पढ़ने-लिखने की दुनिया का एक अंग है, लेकिन वह एकमात्र अंग नहीं है। पाठ्यपुस्तक और पुस्तकालय की पुस्तक दोनों में फ़र्क़ ज़रूर है। लेकिन दोनों का सम्बन्ध ऐसा है कि जहाँ पुस्तकालय किताबों का एक बड़ा सेट है, वहीं पाठ्यपुस्तकें उसका एक सबसेट है। दूसरी बात थी कि शिक्षक अपनी भूमिका को कैसे देखें।

सबसे अच्छी बात पुस्तकालय की यह होती है कि चाहे आप शिक्षक हों या विद्यार्थी, माता-पिता हों या बच्चे, पुस्तकालय में हम सबकी पहचान एक ही होती है। हम सभी पाठक होते हैं। इसलिए पुस्तकालय को किस हद तक कक्षा जैसा दिखना चाहिए, यह एक बड़ा सवाल है।

कभी लगता है कि यदि पुस्तकालय में रीड अलाउड जैसी गतिविधि नहीं करते हैं, वह बेहद सुस्त-सी संस्था हो जाती है। कई बार शिक्षक या वयस्क के रूप में हमको लगता है कि हमें ऐसी गतिविधियाँ करनी चाहिए, तभी पुस्तकालय को एक सजीव संस्था के रूप में रख पाएँगे। लेकिन दूसरी तरफ़, अगर वहाँ पर भी हम शिक्षक के तौर पर ही जाते हैं और हमेशा शिक्षक ही बने रहते हैं, फिर दिक़्क़त हो जाती है। इससे पुस्तकालय और कक्षा में फ़र्क़ नहीं रह जाता है। इन दोनों के बीच तालमेल बैठना बहुत ज़रूरी है कि हमें वहाँ जाकर कुछ करना भी है, क्योंकि बच्चों का पुस्तकालय है जो बहुत शान्त जगह नहीं है। एक लेखिका हैं एनी कॉर्रोल मूर। उन्होंने 1916 में एक किताब लिखी और पहली बार यह धारणा तोड़ी थी कि बच्चों का पुस्तकालय कोई शान्त जगह नहीं होना चाहिए, और उसको सजीव, जीवन्त बनाए रखने के लिए हमारा वहाँ कुछ-कुछ करना ज़रूरी है। लेकिन किस हद तक वहाँ पर जाएँ, और उसे एक ऐसी जगह बनाएँ जहाँ बराबरी हो! यदि शिक्षक वहाँ भी अपनी पारम्परिक भूमिका में ही रहेंगे, पुस्तकालय भी कक्षा जैसी जगह बन जाएगी।

सामग्री को लेकर भी हमेशा सवाल होता है कि कैसी सामग्री रखें। स्कूल में हमारे पास संसाधन भी सीमित हैं और जगह भी। एक सार्वजनिक पुस्तकालय जैसी जगह स्कूल में नहीं है। पुस्तकालय की भूमिका साक्षरता के निर्माण के अलावा उससे आगे भी है। इसलिए हमें सुचिन्तित तरीक़े से विचार-विमर्श कर किताबें रखनी होंगी। किताब रखने में थोड़ा-सा खुलापन दिखाएँ। यानी, हर विषय की किताबें रखें। कहानियों की, संस्कृति को प्रतिबिम्बित करने वाली और ऐसी किताबें, जिनके ज़रिए बच्चे बाहर की दुनिया भी देख सकें।

एक और द्वन्द्व है, और इसे अगर रूपक के तौर पर देखें, यह कहा जाता है कि 'एजुकेशन एज़ अ विंडो' और 'एजुकेशन एज़ अ मिरर'। इसी तरह, 'लिटरेचर एज़ अ विंडो' और 'लिटरेचर एज़ अ मिरर'। एजुकेशन हो या लिटरेचर या लाइब्रेरी हो, इन्हें खिड़की की भी भूमिका निभानी है और दर्पण की भी।

यह बात सही है कि पहले जो पत्रिकाएँ छपती थीं, ख़ासतौर पर *पराग*, उनमें पूरा शहरी जीवन होता था। ग्रामीण जीवन शैली का उनमें कोई प्रतिबिम्ब नहीं था। यह दिक़्क़त थी। अगर आप बच्चों के साथ लम्बे समय से काम कर रहे हैं, आप जानते होंगे कि उनको अपना प्रतिबिम्ब दिखता है, लेकिन साथ ही उनका बाहर की दुनिया के बारे में जानने का भी मन करता है।

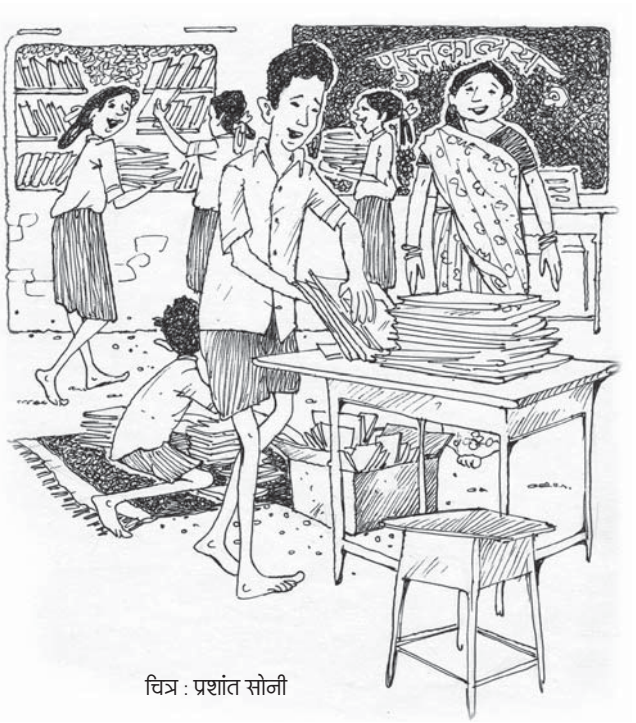

चित्र : प्रशांत सोनी

ऐसे बहुत-से लोग हैं जिन्होंने अपने बचपन में रूसी बाल साहित्य पढ़ा, और उसे सराहा भी। जबकि वह फ़र्क़ सन्दर्भ था। लेकिन कुछ चीज़ें थीं जिनसे हम कनेक्ट कर पाते थे। ये भी अच्छा लगता था कि दुनिया में दूसरी जगह भी बच्चे रहते हैं। उनका कुछ जीवन हमारी तरह है, लेकिन कुछ अलग भी है। वहाँ माता-पिता और बच्चों के सम्बन्ध कुछ हमारे यहाँ जैसे हैं और कुछ अलग भी। यह तालमेल बैठाना होता है।

यह भी महत्त्वपूर्ण है कि पुस्तकालय में बच्चों को कितनी स्वतंत्रता है, और कैसे वहाँ पर अलग-अलग पहचान को माता-पिता, शिक्षक, आदि कम कर सकें। हमारी महत्त्वाकांक्षा ऐसी होनी चाहिए कि स्कूल पुस्तकालय में शिक्षकों के लायक़ सामग्री भी हो, और अगर वह मिडिल स्कूल है, तब यह होना ही चाहिए।

एक स्कूल के पुस्तकालय में, मैं 3-4 साल पहले गया था। वहाँ मैंने एक अद्‌भुत चीज़ देखी। वह पुस्तकालय बहुत व्यवस्थित था। चूँकि वह मिडिल स्कूल था, पुस्तकालय के लिए वहाँ एक अलग कमरा था जिसमें शिक्षक भी बैठते थे, और वह पुस्तकालय गाँव के लोगों के लिए भी था। गाँव के लोग भी रजिस्टर में साइन करके मनचाही किताब जारी करा सकते थे, पढ़ सकते थे, और फिर निश्चित समय पर उनको किताब लौटानी होती थी। यह उस स्कूल का चलन था, विभाग का नहीं। यह एक पुराना स्कूल है, और बहुत पहले से ऐसा चल रहा है। लेकिन इससे पूरे गाँव में पढ़ने-लिखने की संस्कृति बनी है। बच्चे, उनके माँ-बाप, गाँव के दूसरे लोग, सभी पढ़ते हैं। अतः पुस्तकालय में शिक्षक सिर्फ़ रीड अलाउड या बच्चों को निर्देशित करने के लिहाज़ से जाता है, यह फ़र्क़ बात होती है। लेकिन अगर शिक्षक उस ललक के साथ जाता है जिसके साथ बच्चे जाते हैं, तब एक दूसरी संस्कृति वहाँ पर बनेगी, क्योंकि वहाँ उसके लिए भी कुछ सामग्री है।

ऐसे में, पुस्तकालय एक ऐसी जगह बनेगी जहाँ सब अपनी-अपनी ज़रूरत के हिसाब से पढ़ने जाते हैं। अभी की वास्तविकता में ऐसी गुंजाइश बहुत सारे स्कूलों में नहीं है। लेकिन कम-से-कम हमारी महत्त्वाकांक्षा ऐसी होनी चाहिए कि स्कूल के पुस्तकालय में शिक्षकों के

लिए भी सामग्री हो और विद्यार्थियों के लिए भी, और ये दोनों एक ही भूमिका में वहाँ जाएँ।

हाँ, कभी-कभी ज़रूर कुछ इस तरह की गतिविधि करें, ताकि वह एक जीवन्त जगह बन पाए। एक बहुत महत्त्वपूर्ण लाइब्रेरी एजुकेटर हुए हैं डॉक्टर एस आर रंगनाथन। उन्होंने अच्छे पुस्तकालय के सन्दर्भ में ये पाँच बातें कही हैं :-

(1) किताबें पढ़ने के लिए होती हैं;

(2) हर किताब के लिए एक पाठक होना चाहिए;

(3) हर पाठक के लिए एक किताब होनी चाहिए;

(4) अगर आप पुस्तकालय संचालित करते हैं, आपको इस बात का ध्यान रखना होगा कि आपका पुस्तकालय और किताबें इतनी एक्सेसिबल हों कि आसानी से वहाँ किताब मिल जाए जो पाठकों का समय बचाए; और

(5) सबसे महत्त्वपूर्ण बात जो उन्होंने कही कि पुस्तकालय एक लिविंग आर्गनिज़्म, ग्रोइंग आर्गनिज़्म है। जिस तरह किसी जीवित वस्तु का लगातार विकास होता है, वैसे ही पुस्तकालय का भी विकास होना चाहिए। यह सारे सिद्धान्त हमारे काम के हैं। शायद इन सबका पालन हम अपने स्कूल में नहीं कर पाएँ! एक स्कूल पुस्तकालय की तमाम सीमाओं के बावजूद हम अगर इन चीज़ों का ध्यान रखें कि यह एक बढ़ते रहने वाली और जीवन्त जगह है, इससे मदद मिलेगी। आपने द्वन्द्व के बारे में पूछा है। मैं कह रहा हूँ कि यह द्वन्द्व वास्तविक है, और इसलिए इस बारे में लगातार संवाद, समन्वय और सन्तुलन की ज़रूरत है। पुस्तकालय दुनिया को देखने की खिड़की भी हो और दर्पण भी। वहाँ शिक्षक, शिक्षक के रूप में भी जाएँ, लेकिन बहुत बार वे बस एक पाठक के रूप में वहाँ जाएँ तभी पुस्तकालय का उद्देश्य सध पाएगा।

सुनील : पिछले 20-30 साल में तकनीकी बहुत आगे बढ़ गई है। ख़ास करके मोबाइल आया और उसका प्रयोग भी बढ़ गया है। पढ़ने की संस्कृति काफ़ी पीछे चली गई है। जब लोगों ने ख़ुद किताब ख़रीदना बन्द किया, स्वाभाविक है लोगों ने ख़ुद-से पढ़ना बन्द कर दिया। ऐसे में, हम वयस्क और शिक्षक साथी किताबों के साथ अपना रिश्ता कितना जोड़ पाते हैं / पाएँगे?

मनोज : एक बात जोड़ना चाहता हूँ। यह बात आई थी कि बच्चे ने कहानी की किताब ली, उसको पूरा कॉपी किया और अगले दिन वह उसी किताब को खोज रहा था। अगर इस पूरी गतिविधि को देखें, लगता है कि इस तरह बच्चे अर्थ की अनेक परतों में चले जाते हैं। यह दूसरे तरीक़े का पढ़ना है। यह पढ़ना लिटरेसी का सतही स्तर नहीं है। यह उच्च संज्ञानात्मक क्षमता और अर्थ बनाने की प्रक्रिया है, और बच्चे उस प्रक्रिया में चले गए हैं। ये अनुभव वास्तविक है, इसलिए यह देखना ज़रूरी है कि पुस्तकालय में कितनी सम्भावनाएँ हैं। मसलन, जब हम साहित्य के शिक्षक के तौर पर कहानी पढ़ाते हैं तब भी अर्थ की परतों में जाना होता है, लेकिन इसके अवसर कक्षा में बहुत सीमित हैं। इसलिए क्योंकि एक साथ पूरी कक्षा को पढ़ना है, और इसलिए भी कि अर्थ की परतें सन्दर्भित साहित्य को पढ़ते हुए, दोस्तों से बात करते हुए भी खुलती हैं। हम जानते हैं कि पुस्तकालय इनको खोलता है, स्वयं के नज़रिए से भी और दूसरों के नज़रिए से भी। इसलिए ऐसे अनुभवों को पोषित किया जाना चाहिए, और सही सन्दर्भ में इनकी व्याख्या भी होनी चाहिए।

सुनील : वर्तुल, आपसे समझना चाहता हूँ कि शिक्षक पुस्तकालय के महत्त्व को समझें, इस सन्दर्भ में तैयारी के क्या बिन्दु हो सकते हैं?

वर्तुल : यह कहना ग़लत नहीं होगा कि हमारे समाज में पढ़ने-लिखने की संस्कृति नहीं है। यह संस्कृति कैसे विकसित हो? इस दिशा में पहली ज़रूरत यह है कि किताबें उपलब्ध हों। जैसा मैंने पहले बताया, पोटली कार्यक्रम के

तहत हमने कुछ किताबें स्कूल में दीं। 45 दिन बाद यह किताबें नई किताबों से बदल जाती थीं। हम शिक्षकों से भी इन किताबों को पढ़ने का आग्रह करते थे। शिक्षकों ने पढ़ा भी। इसी तरह, हम कुछ और मौक़े तलाशते हैं। प्रेमचंद जयन्ती पर हमने एक पूरे सप्ताह प्रेमचंदजी की कहानियों को बच्चों और शिक्षकों के साथ पढ़ा। तीन-चार बार वेबिनार भी किए। जैसे मौक़े हम बच्चों के लिए सोच रहे हैं वैसे ही शिक्षकों के लिए भी बनाने होंगे। जब वे ख़ुद पढ़ेंगे उनको स्मरण होगा कि पढ़ने का क्या आनन्द है, क्या अनूभूतियाँ हैं, तभी वे बच्चों को भी ऐसा आनन्द, अनुभूतियाँ और मौक़े देंगे, वरना उनकी पूरी दृष्टि कोर्स कम्प्लीट करने पर रहेगी।

सुनील : यह प्रश्न भी यहाँ आता है कि पाठ्यपुस्तक का विस्तार कैसे करें? उससे परे जाने के क्या मौक़े हैं? वो शिक्षण पद्धतियाँ क्या हों जो बच्चों को पुस्तकालय जाने, वहाँ से सन्दर्भ किताबें लेने व उनको पढ़ने के मौक़े बनाएँ? शीशपाल, आपने भी पुस्तकालय पर शिक्षकों के साथ काम किया है। आप साथियों को कैसे प्रेरित कर पाते थे?

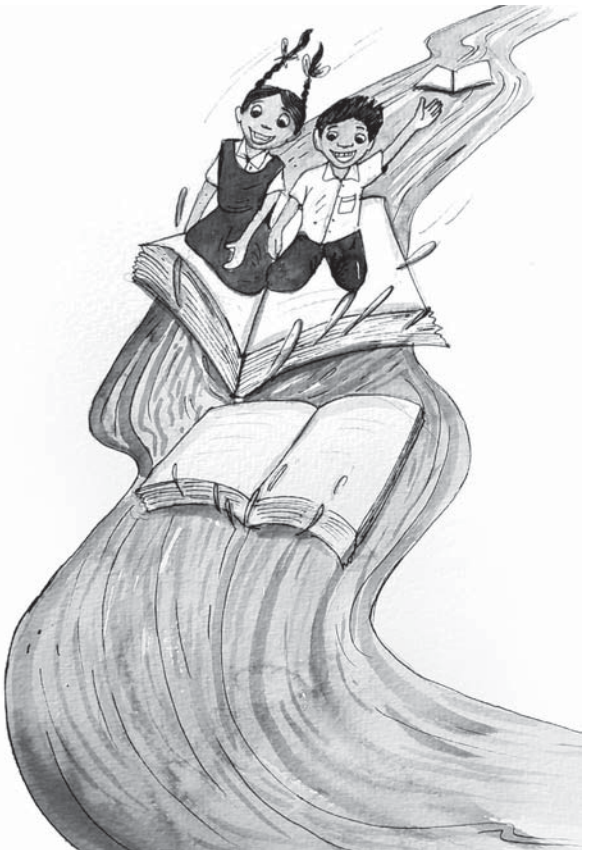

चित्र : हीरा धुर्वे

शीशपाल : एक तरीक़ा तो यही होता है कि शिक्षकों के साथ बातचीत में हम किताबों का ज़िक्र करते हैं। कभी-कभी स्कूल और कक्षा अवलोकन के दौरान या जब हम मॉडल शिक्षण कर रहे होते हैं, तब ऐसे मुद्दे निकलकर आते हैं जिनके बारे में हम किताबों का ज़िक्र कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, एक बार कक्षा 2 में हम जैसे ही पहुँचे, हमने पाया कि बच्चों की पिटाई हो रही थी। बच्चे शिक्षिका की बात शायद समझ नहीं पा रहे थे, लेकिन तब भी शरारत से बाज़ नहीं आ रहे थे। शिक्षिका काफ़ी परेशान भी थीं। बाद में जब ऑफ़िस में हम मिले, हमने बात की। उन्होंने कहा, 'मेरी ग़लती है। मुझे ऐसा नहीं करना चाहिए था।' उस समय हमने उन्हें *दिवास्वप्न* और *तोत्तोचान* पढ़ने को कहा। हमने कहा कि इससे शायद आप समझ पाएँ कि बच्चे शरारतें क्यों करते हैं, या समझ क्यों नहीं पाते।

एक और चीज़ जो काफ़ी कारगर रही है, वह यह कि किसी किताब का लेख ले लिया। जैसे– भाषा शिक्षण की प्रक्रिया क्या हो सकती है? बच्चे शरारतें क्यों करते हैं? और तब उसको शिक्षकों के साथ मिलकर पढ़ा और उसपर चर्चा भी की। या एक-दो पैरा पढ़े और पूरे लेख पर चर्चा की। इसमें उन्हें कुछ नए आयाम मिले, तब वो आगे भी पढ़ते हैं। कभी हम किताबों का संक्षिप्त परिचय भी उनको देते हैं। बहुत-से शिक्षक हैं जो पढ़ते-लिखते हैं। हम जिनके साथ काम कर रहे हैं, उनमें कई शिक्षक हैं जिन्होंने किताबें पढ़ी हैं और उनपर हमारे साथ चर्चा

भी की है। *दिवास्वप्न, बच्चे असफल कैसे होते हैं,* या प्रेमचंद, शरतचंद्र, आदि की साहित्य की पुस्तकें। हम उनके साथ लिखने को लेकर भी बात कर रहे हैं। लेकिन वह अभी हौसला नहीं दिखा पा रहे। लिखने के लिए उनको प्रेरित करने की दिशा में कुछ सोचना होगा।

यह भी अनुभव हुए हैं कि स्कूल में काम करते हुए शिक्षकों से पुस्तकों के बारे में बात करना, कभी-कभार मिलने के दौरान बात करना, माने, अनौपचारिक बातचीत ज़्यादा मददगार होती है।

सुनील : मैं एक-दो छोटे-छोटे सवाल ख़ुशबूजी से पूछना चाह रहा था। आपने अपने विद्यालय में पुस्तकालय शुरू किया। ऐसी शुरुआत अन्य शिक्षक क्यों नहीं कर पाते? वे क्या द्वन्द्व होते हैं जिनके कारण सभी इस बात की ज़रूरत को या तो नहीं समझ पाते या वह चाहते नहीं हैं कि ऐसा पुस्तकालय उनके विद्यालय में भी हो?

ख़ुशबू : पहले एक अनुभव रखना चाहूँगी। मेरे दिमाग़ में पुस्तकालय की परिकल्पना बचपन से ही है। मेरी दादी माँ काफ़ी पढ़ी-लिखी थीं और मेरे घर में भी एक छोटा-सा पुस्तकालय हुआ करता था। मेरी दादी बहुत सारी मोटी-मोटी उपन्यास की किताबें पढ़ा करती थीं और वह उन पुस्तकों को एक बक्से में रखती और ताला लगाती थीं। ताला इसलिए लगाती थीं, क्योंकि उनका मानना था कि बच्चों को उपन्यास नहीं पढ़ना चाहिए। लेकिन कभी-कभार वह मुझसे कहती थीं कि बक्से से एक किताब निकालकर दे दो। वह ख़ुद ख़ाली समय में उन पुस्तकों को पढ़ती थीं, लेकिन मुझे मना करती थीं। मैं सोचती कि वह मना क्यों करती हैं! उस समय मैं छठवीं कक्षा में थी। जब दादी नहीं रहती थीं, मैं चोरी-छुपे उन पुस्तकों को पढ़ने का प्रयास करती। और ऐसे ही मुझमें पुस्तकें पढ़ने की ललक पैदा हो गई कि आगे क्या हुआ होगा कहानी में! इस तरह की कल्पना बचपन से थी। लेकिन हमारे विद्यालय में कोई पुस्तकालय नहीं था। हम पाठ्यपुस्तक से ही पढ़ते थे। इसलिए धीरे-धीरे मेरा भी पढ़ना छूट ही गया। अब जैसे ही मैं शिक्षक बनी, मुझे लगा कि पुस्तकालय होना आवश्यक है। मैंने पाया कि स्कूल में काफ़ी पुस्तकें हैं। अगर वह अलमारी और बक्सों में बन्द हैं, उनका कोई औचित्य नहीं है। अलमारी में रखी रहेंगी तो दीमक लग जाएगी, किताबें ख़राब हो जाएँगी, नष्ट हो जाएँगी। इसलिए मैंने चाहा कि कम-से-कम मैं अपने स्कूल में पुस्तकालय की शुरुआत करूँ।

मैंने अपने ऑफ़िस में ही, जहाँ हम तीनों शिक्षक बैठते हैं, पुस्तकालय बनाया है। वहाँ कुछ फ़र्नीचर भी है, और हमने तार लगाकर किताबों को लटकाया है। मासिक बैठक में जब हमारे संकुल के शिक्षक स्कूल में आते हैं, देखते हैं, वे प्रेरित भी होते हैं। दो-चार स्कूलों में पुस्तकालय बनना भी शुरू हुए हैं। कहीं शिक्षकों के मन में यह डर है कि किताबों को निकालेंगे, वे फट जाएँगी, तब कहाँ से किताबें आएँगी। जबकि ऐसा नहीं है, हमारे विद्यालय को हर साल ऐसी किताबों का संग्रह मिलता है। मेरा प्रयास रहता है और मैं हर संकुल बैठक में बोलती हूँ कि इस तरह के पुस्तकालय का निर्माण अवश्य करें, और दो-तीन स्कूलों ने ऐसा किया भी है।

सुनील : संगीता, आप अपने विद्यालय में पुस्तकालय के संचालन में बच्चों की भागीदारी कैसे सुनिश्चित कर पाती हैं? आपको यह डर नहीं लगता कि यदि बच्चे किताब ले जाएँगे, वे फट जाएँगी या वापस नहीं आएँगी, इसलिए घर ले जाने के लिए नहीं देना है। इस डर से आप कैसे छुटकारा पाती हैं?

संगीता : मैं 2008 से स्कूल में काम कर रही हूँ। उस समय हमारे यहाँ पुस्तकालय नहीं था। मेरी उत्तरकाशी के हेमराज भट्टजी से भेंट हुई थी। उनसे इस विषय पर बात हुई कि जब बच्चों को अक्षर ज्ञान ही नहीं है, मात्राओं की जानकारी ही नहीं है, वे पुस्तकालय की किताबें कैसे पढ़ेंगे; बच्चों को पुस्तकालय की किताबों की ज़रूरत ही क्या है? पहले ये

चित्र : हीरा धुर्वे

पढ़ना-लिखना तो सीख जाएँ! लेकिन उनसे बातचीत में सामने आया कि किताबें पढ़ने-लिखने में मदद करती ही हैं। इस तरह, 2013 में मैंने स्वयं के प्रयास से पुस्तकालय बनाया। किताबें, एकलव्य से मँगवाईं, फ़ाउण्डेशन के साथी ने भी मदद की। पिछले 2 साल से मैं एक नए स्कूल में प्रधानाध्यापिका के पद पर हूँ। यहाँ आई तब देखा कि *बरखा* सीरीज़ की किताबों के तीन-तीन बण्डल बँधे हुए रखे थे। उनमें कई किताबों में दीमक लग गई थी। दीमक हटाकर हमने किताबों को धूप दिखाई। उसके बाद पुस्तकालय को व्यवस्थित करके मैंने बच्चों को किताबें देना शुरू किया। शुरू में बच्चों ने सोचा कि ये किताबें उनकी हो गई हैं। वे उन्हें वापस नहीं लाए, क्योंकि सर्व (अब समग्र) शिक्षा अभियान के तहत भी किताबों का वितरण हुआ करता था। फिर मैंने बच्चों से बात की कि यह स्कूल की किताबें हैं। वे इन्हें पढ़ने के लिए घर ले जा सकते हैं, लेकिन वापस भी लाएँ ताकि दूसरे बच्चे पढ़ सकें। बच्चों को बात समझ में आ गई। जहाँ तक किताबें फटने या ख़राब होने की बात है, जब बार-बार उनको उपयोग में लाया जाएगा, वे फटेंगी भी और ख़राब भी होंगी। इसके लिए कोई चिन्ता नहीं होती है। हालाँकि कभी-कभी कुछ बच्चों को थोड़ा डर भी होता है कि यह किताब फट गई है अब मुझे डाँट पड़ेगी। इसके लिए मैंने टेप, गोंद, फेविकोल, स्टेपलर, आदि सब रखा है, ज़रूरत पड़ने पर मैं किताबों को दुरुस्त भी कर देती हूँ।

कक्षा 4-5 के कुछ बच्चों को मैंने पुस्तकालय व्यवस्थित रखने की ज़िम्मेदारी दे रखी है। किताबों को व्यवस्थित रखना, जो फट गई हैं उन्हें चिपका देना, यह सब काम बच्चे करते हैं। हालाँकि हमारे स्कूल में ज़्यादा जगह नहीं है, फिर भी इसे एक व्यवस्थित तरीक़े से संचालित करने की कोशिश कर रहे हैं। इस साल मैं साहित्य मेला आयोजित करने का विचार बना रही हूँ। इसपर मेरी कुछ योजनाएँ भी हैं। देखती हूँ, मैं कहाँ तक इसे कर पाती हूँ!

सुनील : हमने तय समय से थोड़ा ज़्यादा समय लिया, इसके लिए माफ़ी चाहते हैं। लेकिन चर्चा ही कुछ ऐसी थी जिसे रोक पाना सम्भव नहीं था। बातचीत में भाग लेने के लिए आप सभी साथियों का बहुत-बहुत शुक्रिया।

ऑनलाइन

कक्षा की पाठ वस्तु से पुस्तकालय का जुड़ाव

कथा एवं कथेतर साहित्य की सम्भावनाएँ और सीमाएँ

अनिल सिंह

यह लेख पाठ्यपुस्तकों व साहित्य के जुड़ाव पर बात करता है। लेखक इस सन्दर्भ में तीन दृष्टिकोणों की विस्तार से चर्चा करते हैं– 1) पाठ वस्तु के ज़रिए बच्चों को साहित्य की ओर, और साहित्य के ज़रिए पाठ वस्तु की ओर ले जाना; 2) पाठ वस्तु में निहित पात्र, घटना, मूल्य, भावनाओं, आदि को साहित्य में विस्तार देना; और 3) पाठ वस्तु की समझ के लिए सम्पूरक सामग्री के रूप में बाल साहित्य को देखना। बाल साहित्य की कई पुस्तकों के उदाहरण देते हुए वे बताते हैं कि पाठ्यपुस्तक में दी गई विषयवस्तु इन साहित्यिक पुस्तकों की सामग्री से न केवल जुड़ती है, बल्कि उसे अलग-अलग तरह से विस्तार देती है। इस बात को दूसरी तरह से रखें तो किसी भी विषय / अवधारणा का ज्ञान कुछ पन्नों में सिमट जाए, ऐसा है ही नहीं। हम सभी जानते हैं कि यह ज्ञान काफ़ी विस्तृत है, और यदि शिक्षा का उद्देश्य यह है कि बच्चे समझें कि ज्ञान क्या है, ज्ञान निर्माण की प्रक्रिया में जुड़ें, ज्ञान के अलग-अलग पहलुओं से वाक़िफ़ हों, तब यह निहायत ही ज़रूरी है कि वे पाठ्यपुस्तकों तक ही सीमित न रहें। इस चर्चा के साथ आपको स्कूली पाठ्यक्रम से जुड़ती हुई कई साहित्य की किताबों के नाम, और पाठ्य सामग्री के साथ उनका उपयोग कैसे किया जाए, यह भी जानने को मिलेगा।

https://anuvadasampada.azimpremjiuniversity.edu.in/3982/

पुस्तकालय व पुस्तकों के इस्तेमाल की सम्भावनाएँ

हृदय कान्त दीवान

स्कूल में एक सक्रिय पुस्तकालय का होना और बच्चों का पढ़ना सीखना, इनमें कुछ सम्बन्ध है। बच्चों का पुस्तकालय से जुड़ाव बनने, बच्चों की किताबों में दिलचस्पी पैदा करने के लिए कुछ प्रयास ज़रूरी हैं। इन प्रयासों का मतलब यह नहीं है कि बच्चों को निर्देशित किया जाए कि उन्हें पुस्तकालय जाना चाहिए, और वहाँ किताबों को पढ़ना चाहिए, वग़ैरह। बल्कि ऐसे प्रयास किए जाएँ कि बच्चे ख़ुद पुस्तकालय की ओर आकर्षित हों। लेखक कहते हैं कि इस दिशा में एक ज़रूरी क़दम यह है कि शिक्षक ख़ुद भी किताबों में रुचि लें, बच्चों के साथ अपनी पढ़ी गई किताबों पर बात करें, और कभी किसी ख़ास किताब का अंश पढ़कर उन्हें सुनाएँ। स्कूल में पढ़ने का माहौल बनेगा तब बच्चे ख़ुद किताबों की ओर आकर्षित होंगे। लेख एक सार्थक पुस्तकालय पर भी चर्चा करता है। सार्थक पुस्तकालय का आशय है, ऐसी जगह जहाँ बच्चे उन्मुक्त होकर पढ़ें। पुस्तकालय और कक्षा में फ़र्क़ है। पुस्तकालय एक ऐसी जगह होनी चाहिए जहाँ बच्चों पर पढ़कर सुनाने, पूछे गए प्रश्नों के जवाब देने या अन्य किसी प्रकार का कोई दबाव न हो। लेख एक और महत्त्वपूर्ण बात रेखांकित करता है कि स्कूल के पुस्तकालय का मक़सद बच्चों का किताबों से रिश्ता बनाना है, उन्हें कुछ 'सिखा' ही देना नहीं है। इन सभी बिन्दुओं पर विस्तार से चर्चा करते हुए, अन्त में लेख यह माँग करता है कि स्कूलों के साथ-साथ व्यापक समाज में भी पुस्तकों की उपलब्धता व उनके इस्तेमाल की सम्भावना बनाना महत्त्वपूर्ण है।

https://anuvadasampada.azimpremjiuniversity.edu.in/4018/

स्कूल पुस्तकालयों की सक्रियता के सवाल

कमलेश जोशी

स्कूलों में पुस्तकालय होना चाहिए, यह हम सभी मानते हैं। लेकिन अभी भी कई स्कूल हैं जिनमें पुस्तकालय नहीं है, और तब ऐसे भी स्कूल हैं जिनमें पुस्तकालय तो हैं, लेकिन वे सक्रिय पुस्तकालय नहीं कहे जा सकते। लेख कहता है कि पुस्तकालय के सक्रिय न होने के बहुत-से कारण हैं। मसलन, समाज में ही पढ़ने की संस्कृति का न होना, शिक्षा का परीक्षा- और अंक-आधारित होना, बच्चों पर यह विश्वास न होना कि वे भी किताबों की देखभाल कर सकते हैं और इन्हें सहेजकर रख सकते हैं, आदि। इन सभी चुनौतियों के होते हुए भी कई जगह पुस्तकालय और पढ़ने की संस्कृति को बनाने के प्रयास जारी हैं। इस लेख में, एक ऐसे ही प्रयास के बारे में बातचीत है जहाँ शिक्षकों के साथ मिलकर पढ़ने-पढ़ाने का काम हुआ, और हो रहा है। लेख बताता है कि यह प्रयास कैसे शुरू हुआ; शिक्षक इसमें कैसे जुड़े; किस तरह की सामग्री पढ़ने के लिए चुनी गई; किस तरह की सामग्री शिक्षकों को पसन्द आई, और क्यों; आदि।

https://anuvadasampada.azimpremjiuniversity.edu.in/3991/

स्कूलों में पुस्तकालय की ज़रूरत : अतीत, आज और आगे

रजनी द्विवेदी

रजनी द्विवेदी का लेख 'स्कूलों में पुस्तकालय की ज़रूरत : अतीत, आज और आगे' कई महत्त्वपूर्ण मसले उठाता है। नीति दस्तावेज़ों में 1952-53 के मुदलियार कमीशन से शुरू करके लेख आगे की नीतियों में स्कूल में पुस्तकालयों के बारे में हुई चर्चा व उसके क्रियान्वयन का विश्लेषण करता है। यह बताता है कि मुदलियार कमीशन ने पुस्तकालय को अहम माना और उसके लिए संसाधन व समय दिए जाने को रेखांकित किया था। रिपोर्ट में न सिर्फ़ इस बारे में विस्तृत तर्क दिए गए हैं कि यह क्यों अति आवश्यक है, वरन् इसके लिए क्या-क्या होना आवश्यक है और इसका स्वरूप कैसा होना चाहिए, यह भी लिखा गया है। एक प्रकार से रिपोर्ट यह बताती है कि स्कूल के लिए आवश्यक पुस्तकालय का एक मायने में आदर्श रूप क्या होना चाहिए। लेख *1986 की शिक्षा नीति व उससे जुड़ी कार्य योजना 1992* की बात करते हुए कहता है कि हालाँकि इसमें भी पुस्तकालय का ज़िक्र था और इसके तहत स्कूलों में किताबें भी पहुँचाई गईं, फिर भी इसने पुस्तकालय के विज़न को बहुत कमज़ोर कर दिया। बाद के प्रयासों को भी समेकित करते हुए लेख बताता है कि कैसे समय-समय पर प्रयास हुए और इनमें पुस्तकालय की समझ व पुस्तकें पहुँचाने पर कुछ काम हुआ है, किन्तु यह बहुत कम है। *एनसीएफ़* में पुस्तकालय की पुरज़ोर वकालत व समग्र शिक्षा योजना एवं इसके पूर्व अवतारों के बावजूद अधिकांश स्कूलों में पुस्तकालय कक्ष नहीं हैं, और जहाँ हैं, वे पुस्तकालय अभी भी इस्तेमाल में नहीं हैं। स्कूलों में, समाज में, और ज़ाहिर है विद्यार्थियों में, अतिरिक्त पढ़ने की आदत व पुस्तकालय के प्रति गहरी अरुचि है। जो पुस्तकालय खुलते हैं और जहाँ लगता है लोग पढ़ने के लिए आ रहे हैं, वे भी असल में प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी के अड्डों से कुछ अधिक नहीं हैं।

https://anuvadasampada.azimpremjiuniversity.edu.in/4019/

पाठशाला
भीतर और बाहर
पाठकों के विचार

चरित्र निर्माण : किशोरों में विरोधों से निपटने की संस्कृति, अमन मदान, अंक 15

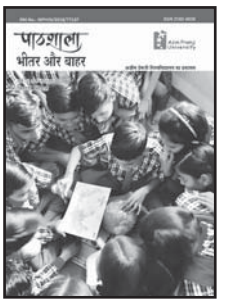

यह लेख बेहद सराहनीय है। जूनियर कक्षाओं में शिक्षकों द्वारा बच्चों के विरोध को सुलझा लिया जाता है। इसके विपरीत माध्यमिक कक्षाओं में किशोरों के विरोध-टकराव को ख़त्म करना मुश्किल होता है। इसलिए शुरुआती कक्षाओं से ही शिक्षकों को इस पर ध्यान देने की ज़रूरत है कि यदि कक्षा में कभी कोई ऐसी स्थिति बने तो उसे अनदेखा न करें बल्कि उस पर बच्चों के साथ एक अर्थपूर्ण बातचीत करें। जैसा कि लेखक भी कहते हैं, इस बदलते समाज में बच्चों और युवाओं के लिए यह सीखना फायदेमंद है कि विरोध और टकराव की स्थितियों का विवेकशील तरीके से सामना कैसे करें?

हेमा गुसाईं, राजकीय इंटर कॉलेज न्यूली अकरी, कीर्तिनगर, ज़िला टिहरी गढ़वाल, उत्तराखंड

कैसे साथ–साथ चल पाए पढ़ना–लिखना और सुनना–बोलना, महेश झरबड़े, अंक 16

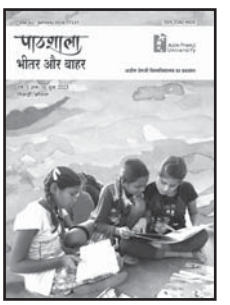

यह लेख पढ़कर कक्षा के बच्चों के साथ के अनुभव याद आने लगते हैं। लेखक के अनुभव बताते हैं कि बच्चों के साथ लेखन की जो यांत्रिक संस्कृति चलती है, उसके कारण बच्चों में लेखन कौशल का विकास नहीं हो पाता। बच्चों को केवल नक़ल करके लिखने को दे दिया जाता है। इससे वे अपने लिखे हुए को पढ़ने में असमर्थ होते हैं, और उनमें समझकर पढ़ने का विकास नहीं हो पाता। कक्षा में लिखना सिखाने की प्रक्रिया सुनने, बोलने, पढ़ने के साथ-साथ चलनी चाहिए। इसके लिए बच्चों के साथ अलग-अलग गतिविधियों, जैसे– शब्द भण्डार बढ़ाने, शब्दों को वाक्य में प्रयोग आदि करके उनमें सुनने, बोलने, पढ़ने, लिखने की दक्षताओं को विकसित किया जा सकता है।

इंदु पंवार, प्राथमिक विद्यालय गिरगांव, ज़िला पौड़ी गढ़वाल, उत्तराखंड

शिक्षक के पेशेवर विकास में सहायक है कक्षागत प्रक्रियाओं का दस्तावेजीकरण, कमलेश चंद्र जोशी, अंक 16

इस आलेख में कक्षागत प्रक्रियाओं के दस्तावेज़ीकरण के महत्त्व को पाठकों के समक्ष रखा गया है। आलेख परम्परागत शिक्षक डायरी एवं विश्लेषणात्मक शिक्षण प्रक्रिया के दस्तावेज़ीकरण के बीच के अन्तर को भी स्पष्ट करता है। लेख में यह बात रखी गई है कि अधिकांशतया शिक्षक डायरी में मात्र इस बात को दर्ज किया जाता है कि क्या पढ़ाया जाना है, या क्या पढ़ाया गया है। लेकिन पढ़ाते समय विद्यार्थियों की प्रतिक्रिया, शिक्षण में आईं चुनौतियाँ, नई सीख का विश्लेषण यदि नहीं दिखाई देता है, तब वह शिक्षक डायरी, शिक्षण प्रक्रिया पर समीक्षात्मक चिन्तन के अवसर प्रदान नहीं कर पाती है।

आलेख में कुछ शिक्षक साथियों के कक्षागत शिक्षण के दस्तावेज़ीकरण के अंशों को भी प्रस्तुत किया गया है। ये अंश इस बात पर समझ बनाते हैं कि किस प्रकार कक्षा में बच्चों की सक्रिय भागीदारी, सार्थक संवाद एवं उस भागीदारी के लिए क्रमबद्ध सवालों का निर्माण शिक्षक द्वारा किया गया है। वास्तव में, ऐसा दस्तावेज़ीकरण शिक्षण प्रक्रिया पर विश्लेषणात्मक चिन्तन के अवसर प्रदान कर शिक्षण प्रक्रिया को बेहतर करने के साथ ही दूसरे शिक्षक साथियों को भी मदद प्रदान कर रहा होता है।

सरोजनी रावत, सहायक अध्यापिका, राज. प्राथ. विद्यालय, खरास्रोत नरेन्द्र नगर, टिहरी गढ़वाल, उत्तराखंड

इबारती सवालों की भाषा का सवाल, अमित कुलश्रेष्ठ, अंक 17

कक्षा में गणित शिक्षण करने वालों के लिए यह लेख बहुत उपयोगी है। लेख बताता है कि बच्चों के साथ किस प्रकार के इबारती सवालों पर कार्य करने की आवश्यकता है। यह चुनौती तब और बढ़ जाती है, जब शिक्षक कक्षा 1 से 5 के छोटे बच्चों के साथ काम करते हैं। लेख में उदाहरण देते हुए बताया गया है कि दिए गए इबारती सवाल की भाषा सरल नहीं लगने के कारण तीन छात्र उस सवाल का अलग-अलग अनुमान लगा रहे थे। पहला छात्र कुछ परिचित शब्दों को पढ़कर ही अनुमान लगा लेता है कि इस सवाल में अधिकतम शब्द आया है, यानी, HCF निकालने पर उत्तर प्राप्त हो जाएगा। दूसरा छात्र मानक इकाई से अनभिज्ञ लग रहा है, और सवाल को हँसी में उड़ा रहा था। वहीं तीसरा, मानक इकाई की सहायता से सवाल को समझने का प्रयास कर रहा था, पर उसे हल नहीं कर पाया। इस प्रकार इबारती सवालों की भाषा छात्रों को भ्रमित व भयभीत कर रही है। इस लेख से यह समझ भी पुख़्ता हुई कि इबारती सवालों को हल करते समय गणितीय और भाषाई कौशलों की समझ बना पाना अति आवश्यक है, तभी शिक्षक-छात्र कक्षा में संवाद कर पाने में सक्षम होंगे।

कीर्ति रावत, सहायक अध्यापक, राजकीय प्राथमिक विद्यालय चौबट्टा (खिर्सू), ज़िला पौड़ी गढ़वाल, उत्तराखंड

हमारे विद्यालय में अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन द्वारा आयोजित की गई Effect Study में बच्चों के प्रदर्शन पर बात करते समय आए साथियों ने मुझसे कहा था कि आपके विद्यार्थियों को इबारती सवाल समझने में कठिनाई हो रही है। इसके बाद मैंने इबारती सवाल पर अपने स्कूल में काम करना शुरू किया। इस बीच इससे जुड़े कुछ लेख भी पढ़ने को मिले। 'इबारती सवालों की भाषा का सवाल' लेख भी उनमें एक है।

इस लेख को पढ़ने के बाद इबारती सवालों पर काम करने के कुछ चरण इस प्रकार समझ आए :

- इबारती सवालों की शुरुआत करते समय पहले बच्चों के स्तर से जुड़े सरल सवाल बनाए जाएँ। जैसे– आपके पास चार पेंसिल हैं। आपको दो और पेंसिल मिल गईं। अब बताओ, आपके पास कुल कितनी पेंसिल हो गईं?
- इसमें इस बात का ध्यान रखना ज़रूरी है कि इबारती सवालों के शिक्षण के लिए हम कक्षा 3 के बाद ध्यान देते हैं, जबकि एनसीईआरटी की पाठ्यपुस्तक कक्षा 1 से ही इनपर कार्य करने का सुझाव देती है।

- अध्यापक द्वारा जब कोई इबारती सवाल ब्लैकबोर्ड पर लिख दिया गया हो, उसके पश्चात सबसे पहले उस कक्षा के प्रत्येक बच्चे को दो-तीन बार सवाल पढ़ने को कहा जाए। इससे बच्चा बार-बार सवाल पढ़कर उसे समझने का प्रयास कर सकेगा। आगे की प्रक्रिया में उसी सवाल को बच्चा अपनी भाषा में समझ के साथ बोल सके, और यह समझा सके कि सवाल क्या कहने का प्रयास कर रहा है। (इस प्रक्रिया से पहले संक्रियाओं की अवधारणा को समझना आवश्यक है।)

- सरल सवालों की समझ बनने के बाद धीरे-धीरे ऐसे सवाल उन विद्यार्थियों के सामने रखने चाहिए, जिनका स्तर प्रारम्भिक सवालों से थोड़ा ऊपर हो।

- यह ज़रूरी है कि प्रारम्भिक स्तर के सवालों से थोड़ा ऊपर के सवालों में विषयवस्तु, पात्र और परिस्थिति बच्चों के अनुरूप रखी जाए। साथ ही, दैनिक जीवन में उस सवाल का प्रयोग करके कुछ उदाहरणों के द्वारा सवाल को समझाने का प्रयास अध्यापक द्वारा किया जाना चाहिए। इन उदाहरणों पर हुई चर्चा से बनी समझ को विद्यार्थी दूसरे सवाल से जोड़ सकेगा, और सवाल में क्या कहा जा रहा है, यह समझ सकेगा।

सविता रावत, प्रभारी प्रधानाध्यापिका, राजकीय प्राथमिक विद्यालय फूलधार, नौगांव, ज़िला उत्तरकाशी, उत्तराखंड

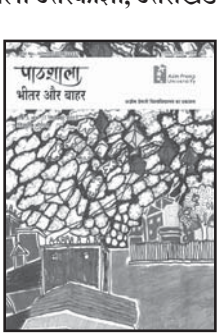

पाठशाला का हर अंक पठनीय और शिक्षकों के लिए संग्रहणीय होता है। इसमें सीखने-सिखाने में आने वाली चुनौतियों पर चर्चा के साथ-साथ उनके रचनात्मक हल भी सुझाए जाते हैं। प्रकाशित होने वाले साक्षात्कार भी कर्मशील और रचनात्मक बने रहने की प्रेरणा देते हैं।

अमित कुलश्रेष्ठ का लेख उन समस्याओं की बात करता है जिनसे गणित के शिक्षक रोज़मर्रा की ज़िन्दगी में जूझते हैं, लेकिन इबारती सवाल की भाषा पर सवाल उठाने के दृष्टिकोण से शायद उन्होंने कभी नहीं सोचा होगा। लेख बताता है कि बच्चों को समझाने के लिए सवाल की भाषा बदली भी जा सकती है।

द्रोण साहू द्वारा लिखित लेख 'बच्चों को होमवर्क नहीं, बल्कि चुनौती दें' दिलचस्प है। पाठ्यक्रम को पूरा करवाने के बोझ तले शिक्षक इस ओर ध्यान नहीं दे पाते। कक्षा स्तर और विद्यार्थी संख्या ज़्यादा होने पर ऐसा करना मुश्किल हो जाता है। विद्यार्थियों को किताब के सवालों को आधार बनाकर नए सवाल बनाने के लिए कहा जा सकता है।

पाठशाला में प्रकाशित होने वाले सभी लेख बेहद सारगर्भित और नवाचार सिखाने वाले होते हैं। ऐसे लेख साझा करने के लिए *पाठशाला* टीम का साधुवाद।

सीमेश जैन, शिक्षिका , सीनियर सेकेंडरी स्कूल, मुहाना , जयपुर, राजस्थान

बाल साहित्य : नए संसार की खिड़की, अनिल सिंह, अंक 17

इस अंक के सभी लेख बढ़िया लगे। यह लेख पुस्तकालय या रीडिंग कार्नर में मौजूद किताबों को देखने का एक नज़रिया देता है और पढ़ने की ओर उकसाता है। संजीव कुमार की लिखी पुस्तक *बचपन की यादें* बचपन के बारे में समाज की नज़रिए को दर्शाती है। वरुण ग्रोवर की *पेपर चोर* का नाम आते ही मन में पहले के अंक में प्रकाशित फ़िल्म चर्चा के अन्तर्गत छपी समीक्षा द

बुक थीफ़ की तरफ़ चली गई। प्रभात की लिखी कहानी *लाइटनिंग* का नाम आते ही कमलेश जोशी द्वारा लिखी और *पाठशाला* के अंक 16 में छपी इसकी समीक्षा भी याद आने लगी। इस लेख में कुछ किताबों और उनसे जुड़ी कुछ महत्त्वपूर्ण बातों का ज़िक्र पढ़ने की ओर आकर्षित करता है। इस लेख के अन्त में दी गई पराग ऑनर लिस्ट अच्छी किताबों को ढूँढ़ने में बहुत सहायक है।

कमलेश जोशी द्वारा धर्मपाल गंगवार के साथ साक्षात्कार से यह जाना कि एक शिक्षक के जीवन का सफ़र किस तरह शुरू होता है। शिक्षक बनने के दौरान और उसके बाद के सफ़र व शिक्षक और शिक्षकीय अनुभव के बारे में विस्तार से जानने-समझने को मिला। शिक्षा में काम करने के नाते पढ़ना बेहद ज़रूरी है। एक पुस्तक किस तरह पाठक में पाठ्य की ओर खिंचाव पैदा करती है, इसका उदाहरण उपन्यास *निर्मला, राग दरबारी* या *नील बाग़ स्कूल* से होते हुए *पढ़ना ज़रा सोचना* पुस्तक के लेखक की समस्त रचनाओं को पढ़ डालना और पढ़ते रहना एक शिक्षक की जीवटता को दर्शाता है। इस सबके कक्षा शिक्षण से जुड़ाव को भी जानने-समझने का मौक़ा मला। धर्मपालजी का साक्षात्कार पढ़कर मन सुकून से भर गया।

जय शंकर चौबे, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, रुद्रपुर, ज़िला ऊधम सिंह नगर, उत्तराखंड

यह लेख बच्चों के मानसिक विकास में साहित्य की भूमिका पर प्रकाश डालता है। अच्छा बाल साहित्य कैसा हो; उसकी क्या-क्या विशेषताएँ हों; और किस तरह से बच्चों को उससे जोड़ा जाए; इसके कुछ अनुभव लेखक ने साझा किए हैं। बाल साहित्य की किताबों एवं प्रकाशकों की एक सूची लेख के अन्त में उपलब्ध करवाई गई है। इससे विद्यालय, सार्वजनिक पुस्तकालय एवं अभिभावकों को पुस्तक चयन में सहूलियत मिलेगी। लेख में कई पुस्तकों पर भी चर्चा की गई है। मसलन, संजीव कुमार की *बचपन की बातें।* इसमें कई प्रसिद्ध व्यक्तियों के बचपन की बातों को साझा किया गया है। किताब बताती है कि प्रसिद्ध लोगों का बचपन भी आम बच्चे की तरह ही शैतानी, नटखटपन एवं उठापटक वाला होता है। जुगनू प्रकाशन की *दो बहनों की मसाईमारा यात्रा* एक यात्रा वृत्तान्त है। प्रसिद्ध नारीवादी लेखिका कमला भसीन एवं बीना काक द्वारा लिखित इस किताब में दो बहनों की मसाईमारा सोलोट्रिप का चित्रण है। वरुण ग्रोवर की *पेपर चोर* सात छोटी-बड़ी कहानियों का संकलन है। लेख शिक्षकों एवं अभिभावकों को बच्चों में साहित्य के प्रति ललक एवं जुड़ाव पैदा करने की प्रेरणा देता है।

मीनाक्षी गौड़, शिक्षिका, राज. प्राथ. विद्यालय आडवाणी की ढाणी, सांगानेर ग्रामीण, जयपुर, राजस्थान

नई शिक्षा नीति 2020 में सरकारी स्कूलों में पुस्तकालयों को विस्तार देने और पढ़ने की संस्कृति को विकसित करने की बात की गई है। बाल साहित्य बचपन को दुनिया की कल्पना से जोड़ने का प्रयास करता है, और बच्चों की कल्पनाओं को नए पंख देता है। लेख कक्षा में बच्चों के लिए पढ़ने का कोना बनाने व किताबों के संसार को कक्षा तक लाने की प्रेरणा देता है। यह लेख स्कूल के पुस्तकालय और उपलब्ध पुस्तकों व उनकी उपयोगिता को समझने का नया आयाम प्रदान करता है।

प्राची सैनी, शिक्षिका, एक शाला एक परिसर क्रमांक–03, बीना, ज़िला सागर, मध्य प्रदेश

बाल साहित्य में मेरी रुचि प्रभात द्वारा किए गए एक कहानी के विश्लेषण से उत्पन्न हुई। कहानी थी 'शेखीबाज़ मक्खी'। स्कूलों में जाना और बच्चों के साथ बातचीत के लिए बच्चों के अनुरूप कहानियों का चुनाव शिक्षकों के साथ-साथ सभी के लिए एक बड़ी चुनौती होती है। ख़ासतौर पर छोटी कक्षाओं के बच्चों के साथ किन कहानियों का चुनाव करें; किस तरह के

मुद्दों पर बातचीत करें; बच्चों व उनके अनुभवों को किस तरह से बातचीत का हिस्सा बनाएँ; आदि सवाल मन में स्वाभाविक तौर पर उठते हैं। कहानियाँ बच्चों को उनके अनुभवों के महत्त्व समझाने के साथ-साथ नए अनुभवों को हासिल करने, और नए तरीक़े से सोचना शुरू करने में बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिकाएँ निभाती हैं। यह भाषा में सिखाए जाने वाले बेहद ज़रूरी कौशलों में से एक है। लेख में अनिल सिंह कुछ नए बाल साहित्य के संसार की ओर ले जाने में समर्थ हुए हैं। इस लेख को पढ़ने के बाद पाठक इसमें उल्लिखित किताबों को पढ़ेंगे और बच्चों के साथ साझा भी करेंगे। उम्मीद है, अगले लेख में अनिलजी किसी एक कहानी का विश्लेषण भी प्रस्तुत करेंगे।

राम नरेश गौतम, सदस्य, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, खुरई, ज़िला सागर, मध्य प्रदेश

अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन द्वारा प्रकाशित यह पत्रिका बेहद रोचक और उपयोगी है। इसके चलते शिक्षक दूसरे स्थानों के स्कूलों और उनमें शिक्षकों द्वारा किए जा रहे कार्य को पढ़ पाते हैं, और अपने काम में अपना पाते हैं।

अनिल लिखते हैं कि शिक्षकों और अभिभावकों की यह समस्या रहती है कि उत्कृष्ट बाल साहित्य की पहचान कैसे हो और वह कहाँ से मिले। इसके लिए उन्होंने अच्छे प्रकाशकों के नाम सुझाकर कुछ अच्छी किताबों की व्याख्या की है। शिक्षकों को अपने समूह में एवं बच्चों के अभिभावकों से बाल साहित्य की आवश्यकता एवं महत्त्व पर चर्चा करनी चाहिए, क्योंकि कई बार ऐसा होता है कि स्कूलों में बहुत अच्छी किताबें होती हैं, पर वह बच्चों की पहुँच में नहीं होतीं। इससे बच्चों को उनका लाभ नहीं मिल पाता है।

लेख कहता है कि स्कूल में पुस्तकालय सक्रिय हो, और बच्चे एक निश्चित समय पुस्तकालय की किताबों के साथ बिताएँ। पाठ्यपुस्तकें बच्चों को सीमित ज्ञान देती हैं, पर पुस्तकालय का बाल साहित्य बच्चों को सोचने-समझ+ने, उनके शब्द भण्डार, रचनात्मकता, सीखने और दुनिया को अलग तरह से देखने की क्षमता प्रदान करता है।

लेख यह भी कहता है कि स्कूल के पुस्तकालय में नियमित तौर पर नई किताबें जोड़ी जानी चाहिए।

महेंद्र कुमार चौबे, प्राथमिक शिक्षक, ईपीईएस खैराई, संकुल जरुआखेड़ा, राहतगढ़, ज़िला सागर, मध्य प्रदेश

संख्याओं के संसार में भटकते हुए एक ख़ूबसूरत सफ़र, विवेक कुमार मेहता, अंक 17

अकसर हम देखते हैं कि संख्याओं का नाम हो या उन संख्याओं से जुड़े सवाल, दोनों को सुनते ही बच्चों क्या बड़ों के मन में भी डर बैठ जाता है। डर इस बात का नहीं कि सवाल हल कर पाएँगे या नहीं, बल्कि इस बात का कि सही उत्तर आएगा या नहीं। उत्तर लाने की होड़ कुछ इस तरह की होती है कि सवालों की गुत्थी में उलझना ही सभी को परेशानी का विषय लगने लगता है। इसीलिए हम देखते हैं कि गणित विषय बहुत गिने-चुने लोग ही पसन्द करते हैं। यह लेख एक सवाल से शुरू होकर अन्त में एक उत्तर तक तो पहुँचाता है, लेकिन इस बीच सवाल को हल करने के अनेक रास्ते बिना परेशानी के निकाले जाते हैं। बस ज़रूरत है, सिर्फ़ पैटर्न को समझने और धैर्य से काम लेने की।

इस लेख के माध्यम से लेखक गणित को समझने, गणितीय सवालों की गुत्थी सुलझाने के सफ़र और संख्याओं के संसार में भटकते हुए कैसे संख्याओं के साथ खेलकर उस गुत्थी के हल तक पहुँचा

जा सकता है, इसपर ध्यान केन्द्रित कराते हैं। शिक्षक अगर सवालों के हल तक पहुँचने के सफ़र को ही मज़ेदार बना दें, तब शायद कोई बच्चा गणित से डरकर नहीं भागेगा। लेख बताता है कि किस तरह से गणित में निरन्तरता से सोचना चाहिए, और सवालों को हल करने की दिशा में आगे बढ़ना चाहिए। आमतौर पर हम गणितीय चिन्तन और प्रक्रियाओं से भागते हैं। यह लेख एक गणित के शिक्षक को वापस से अपने और कक्षा के काम को आगे बढ़ाने में मददगार होगा।

शिखा पटेल, सदस्य, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, बीना, ज़िला सागर, मध्य प्रदेश

कविता की सप्रसंग व्याख्या, मनोज कुमार, अंक 17

यह अंक कई मायनों में महत्त्वपूर्ण है। इस लेख में कही गई यह बात सही है कि कविता को पढ़ाने के पारम्परिक तरीक़े में कवि की जीवनी और देश-काल से कविता को बाँधना उसे कहीं-न-कहीं मृत कर देता है। यदि उसे काल, देश और कवि के जीवन की घटनाओं से मुक्त कर दिया जाए, तभी कविता कालजयी होती है।

इसी प्रकार, मीनू पालीवाल का लेख 'पढ़ने-लिखने में मौखिक भाषा की भूमिका' बेहद प्रभावशाली लगा। हालाँकि, यह तथ्य सभी जानते हैं कि हमारी सुनने और बोलने की क्षमता पढ़ने और लिखने को कैसे प्रभावित करती है, फिर भी विद्यालयों में अकसर इस तथ्य की उपेक्षा की जाती है। विषयवस्तु के अर्थ को समझने के लिए पढ़ने में उच्चारण की ग़लती पर बहुत अधिक ज़ोर दिया जाता है। जबकि मौखिक भाषा में होने वाली ग़लती दरअसल ग़लती है ही नहीं, क्योंकि बच्चे वही बोलते हैं जो उनके आसपास बोला जाता है। सबसे पहले बच्चे की स्थानीय भाषा को, मौखिक भाषा को मान देना होगा। उसे प्रामाणिक भाषा को अधिक-से-अधिक सुनने-बोलने के अवसर देने होंगे, क्योंकि भाषा मूलतः मौखिक ही होती है, लिपि तो भाषा को स्थाई करने का एक साधन मात्र है।

अनिल सिंह का लेख 'बाल साहित्य : नए संसार की खिड़की' भी उपयोगी जानकारियाँ देता है। *पाठशाला* का हर अंक शिक्षकों के लिए उपयोगी दस्तावेज़ होता है।

अर्चना अरोड़ा, महात्मा गाँधी राजकीय विद्यालय ग्वार ब्राह्मणन, सांगानेर, ज़िला जयपुर, राजस्थान

यह लेख पढ़ते हुए यह बात समझ में आई कि बच्चे कविता को अपना बना सकें, अपने देश, काल, परिस्थिति के अनुसार उसे समझ सकें, यह स्वतंत्रता शिक्षक द्वारा उन्हें कविता पढ़ाते समय देनी चाहिए। लेख यह भी बताता है कि कविता शिक्षण कराते समय शिक्षक का कविता के साथ जुड़ाव होना चाहिए और उसे बच्चों के सन्दर्भ में रेखांकित करना चाहिए। आलेख इस बात की पैरवी करता है कि कविता के अर्थ ग्रहण की प्रक्रिया रचना और पाठक के बीच असमाप्त प्रक्रिया है।

आलेख में दिए गए अधिकतर उदाहरण और संवाद सैद्धान्तिक लग रहे हैं। यदि कुछ उदाहरण किसी कविता शिक्षण के बारे में भी रहते, तब कक्षा में बच्चों के साथ कविता शिक्षण में भी मदद मिल पाती।

आशा यादव, शासकीय प्राथमिक शाला कोटा, ज़िला रायपुर, छत्तीसगढ़

यह लेख भाषा पढ़ाने वाले या उसपर काम करने वाले साथियों के लिए शानदार अनुभव है। मनोज लिखते हैं कि कविता को समझने में तीसरा संवादी, यानी विद्यार्थी, ग़ायब रहता है। कविता की यांत्रिक और बँधे-बँधाए साँचे में व्याख्या किए जाने की परम्परा जाने कब से शुरू हुई

है। अब आलम यह है कि उच्च प्राथमिक कक्षाओं से कविता की सप्रसंग व्याख्या विधिवत आरम्भ होती हुई पोस्ट ग्रेजुएशन तक चलाई जाती है। परीक्षा में अंक लाने के लिए अमूमन इसी फ़ॉर्मेट का इस्तेमाल किया जाता है। मसलन, सन्दर्भ, प्रसंग, व्याख्या और अन्त में काव्यगत विशेषताएँ। यह सप्रसंग व्याख्या हर कवि की कविताओं के लिए थोड़े-से फेरबदल के साथ तयशुदा होती है। लेख कहता है कि कविता अध्यापन की इस रूढ़ परिपाटी से पाठक का भला नहीं हो सकता। व्याख्या कुछ इसी तरह से आरम्भ होती है, "इस कविता के माध्यम से कवि यह कहना चाहता है कि..."। कवि यदि यही मात्र कहना चाहता, वह कविता ही क्यों लिखता? पैम्फ़लेट छपवाकर बाँट देता या चिट्टी लिख देता कि मैं यह कहना चाहता हूँ...। अगर कोई विद्यार्थी इस साँचे से बाहर छलक जाए, और अपने सन्दर्भ व बोध के अनुसार अलग व्याख्या कर दे, वह अमान्य-सी हो जाएगी। ऐसा करने पर अंक कटना तय है, क्योंकि कवि सदा-सदा से कविता के माध्यम से एक-सा सन्देश देता आ रहा है। यह सन्देश भाषा के अध्यापकों ने तय किया हुआ है, इसलिए कवि और अध्यापक की शान में पाठक-केन्द्रित सप्रसंग व्याख्या गुस्ताख़ी ही मानी जाएगी। आलेख के पहले भाग में अनेक उदाहरणों से मनोज इस समस्या को बेजोड़ तरीक़े से स्थापित करते हैं। इस समस्या को कविता के अध्यापन के साथ-साथ समूचे साहित्य शिक्षण में विस्तारित करके देख सकते हैं। कहानी की समीक्षा हो या कथेतर गद्य विधाओं का बोध, वह भी इसी तरह के टाइप्ड फ़ॉर्मेट में ही छटपटा रहा है। इस सबका दूरगामी परिणाम यही होता है कि व्यापकता में साहित्य के प्रति पाठकों की अरुचि हो जाती है, और प्रबुद्ध पाठकों का अभाव-सा होने लगता है। पाठक अभिधा तक ही सीमित होकर रह जाते हैं। कविता में अर्थ की परतों को खोलना व उसका आनन्द लेना, व्यंग्य या फ़ैंटेसी, जादुई यथार्थ जैसे टेक्स्ट बहुत दूर की बात लगने लगते है।

इस आलेख के अगले हिस्से में कविता के अध्यापन के लिए कुछ सूत्र भी मिलते हैं। जैसे– *एनसीएफ़-2005* के बाद भाषा की पुस्तकों में जिस सामग्री का चयन हुआ है, जिस तरह से पाठान्त अभ्यास दिए गए हैं, उनमें विद्यार्थी-केन्द्रित शिक्षण की सम्भावना बनती है। इस अप्रोच में मुमकिन है कि कविता के अर्थ पाठक के सन्दर्भ में घटित हो पाएँ, अर्थ ग्रहण की प्रक्रिया जीवन्त हो पाए, और सहृदयता से रचनाकार, रचना और पाठक में संवाद क़ायम हो पाए। कविता का अध्यापन कैसे हो? इसको मनोज ने थोड़े में ही समेट दिया है। वे कुछ और विस्तार व उदाहरणों के साथ लिखते, तब थोड़ी और मदद मिलती! बहरहाल, लेखक से अगला आलेख इसी पर अपेक्षित है।

खजान सिंह, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, ज़िला उत्तरकाशी, उत्तराखंड

पढ़ने–लिखने में मौखिक भाषा की भूमिका, मीनू पालीवाल, अंक 17

इस आलेख में यह देखने को मिला कि जिन शिक्षकों के साथ लेखिका ने कार्य किया, वे भी पढ़ने-लिखने के दौरान ग़लतियाँ कर रहे थे। इसी प्रकार से बच्चे भी पढ़ने-लिखने के दौरान कुछ ग़लतियाँ करते हैं। इसे सहजता से लेने और पढ़ने-लिखने की सामान्य प्रक्रिया के तौर पर देखे जाने की ज़रूरत है। मौखिक भाषा का पढ़ने-लिखने से सीधा सम्बन्ध है। सामान्यतः स्कूलों में मानक भाषा पर ज़्यादा ज़ोर दिया जाता है। इससे बच्चों की समृद्ध भाषा, जिसे वे अपने साथ लेकर आते हैं, कहीं पीछे छूट जाती है। उनके अनुभवों का कक्षा शिक्षण प्रक्रिया में उपयोग करने से न सिर्फ़ उनका आत्मविश्वास बढ़ता है, बल्कि उनकी समझ भी बनती है। बच्चों ने जिन शब्दों को जैसा सुना होता है, वे उन्हें वैसा ही पढ़ते भी हैं। यही वजह है कि जब वे लिखते हैं, वह मात्रिक रूप से ग़लत हो सकता है,

लेकिन उसे पढ़ते सही हैं। यह लेख शिक्षा में काम करने वालों और ख़ासकर शिक्षकों के लिए काफ़ी महत्त्वपूर्ण है। लेख यह भी कहता है कि मौखिक भाषा का कक्षा में महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसे अपनाकर बच्चों की रुचि, शब्द भण्डार, उनका आत्मविश्वास और समझ को बढ़ा सकते हैं।

साहबउद्दीन अंसारी, रिसोर्स पर्सन, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, ज़िला ऊधम सिंह नगर, उत्तराखंड

यह लेख काफ़ी रोचक लगा। लेखिका ने दो गतिविधियों द्वारा भाषा लिखना-पढ़ना सीखने में मौखिक भाषा, सुनने और बोलने के महत्त्व पर अपने विचार रखे हैं। उनकी ये चिन्ता, कि विद्यालयों में मौखिक भाषा पर काम नहीं किया जाता और सीधा लिखने और पढ़ने पर काम किया जाता है, एक बड़ी समस्या है। इस समस्या को सभी ने अनुभव भी किया है।

लेख की शुरुआत में दिया गया उदाहरण यह समझने में मदद करता है कि भाषा मूलतः मौखिक होती है, और लिपि भाषा को स्थाई करने का एक साधन मात्र है। यदि ये बात समझ में आ जाए, कोई भी शिक्षक अपनी कक्षा में बातचीत के महत्त्व को कमतर नहीं आँक सकता।

लेखिका ने अवधी कहानी का एक रोचक उदाहरण दिया है, जो ये समझने में मदद करता है कि उच्चारण का समझने से बहुत ज़्यादा लेना-देना नहीं होता। जबकि शिक्षक उच्चारण सुधारने को लेकर ही चिन्तित बने रहते हैं।

मीनूजी का लेख लिखने का तरीक़ा बेहद तार्किक होता है। उनकी भाषा की सटीकता के कारण लेख को पूरा पढ़े बग़ैर बीच में छोड़ने का मन ही नहीं करता।

विक्रम चौरे, रिसोर्स पर्सन, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, विकासखण्ड बुधनी, ज़िला सीहोर, मध्य प्रदेश

इस लेख में लेखिका ने पढ़ने-लिखने की प्रक्रिया में मौखिक भाषा के महत्त्व को तीन उदाहरणों से बताया है। लेख की विशेष बात यह थी कि तीनों उदाहरण शिक्षकों की एक कार्यशाला के हैं। इस कार्यशाला में शिक्षकों की तरफ़ से ही अनुभव निकलकर आए। ये अनुभव लेख के शीर्षक को और पुख़्ता करते हैं। लेख कहता है कि उच्चारण का पढ़ने की समझ से कोई ख़ास सम्बन्ध नहीं है। इसके बावजूद कक्षा में पढ़ना सुधारने के लिए उच्चारण पर ही काम किया जाता है, बजाय इसके कि पढ़ लेने के बाद बच्चे से यह कहना कि उसे जो समझ आया, उसे अपने शब्दों में बताए। दूसरा, पढ़ना केवल अक्षर-मात्रा जोड़कर उच्चारित करना नहीं होता। सही मायने में पढ़ना उन वाक्यों-शब्दांशों से जुड़े अनुभव, पूर्वज्ञान, अर्थ, उच्चारण के अवसर, कितनी बार उसने सुना है, आदि पर निर्भर करता है। तीसरी बात, पढ़ने का मुख्य उद्देश्य अर्थ प्राप्त करना होना चाहिए। पढ़ने में होने वाली मुश्किल की वजह अलग-अलग हो सकती हैं, इसलिए उनपर काम करने के तरीक़े भी अलग होने चाहिए।

ज्योति, सदस्य, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, बीना, ज़िला सागर, मध्य प्रदेश

सामाजिक विज्ञान में सीखना–सिखाना, प्रिया जायसवाल, अंक 17

यह लेख बहुत अच्छा लगा। लेख को लेखिका ने तीन भागों में विभाजित किया है। इसमें तैयारी एवं तथ्यों को जुटाना, शिक्षकों की प्रक्रिया, और बच्चों के साथ किया जाने वाला काम शामिल है। लेखिका ने शिक्षकों एवं बच्चों के साथ जो कार्य किया है, वह मैंने भी अपने स्कूल के बच्चों के साथ किया था। इसमें गाँव की एक पुरानी इमारत के इतिहास का पता लगाने का कार्य बच्चों

को दिया था और उनके द्वारा किए गए कार्य के बेहद रोचक परिणाम हुए। बच्चों को उस इमारत की ऐसी जानकारी प्राप्त हुई, जो उन्हें किसी किताब से प्राप्त नहीं हो सकती थी। वास्तव में, सामाजिक विज्ञान एक ऐसा विषय है जो मानव के चारों ओर विस्तारित है। *राष्ट्रीय शिक्षा नीति* इस बात की अनुशंसा करती है कि बच्चे अपने आसपास के माहौल से परिचित हों और उससे कुछ सीखें। दूसरी ओर, सामाजिक विज्ञान विषय में शिक्षक व छात्र दोनों एक साथ आनन्ददायक माहौल में सीखते-सिखाते हैं। जब हम छात्रों को अपने आसपास ही ऐतिहासिक तथ्यों की खोज कराते हैं, उनमें इस विषय को लेकर रुचि जागृत होती है, और इस विषय में सवाल स्वतः ही बनते चले जाते हैं। बच्चों की जिज्ञासा सवालों को जन्म देती है। यह सीखने की प्रक्रिया की एक अहम पहल है। इससे बच्चे सक्रिय और सोचने के लिए मजबूर होते हैं। आसपास के लोगों से बातचीत करने से उनमें आत्मविश्वास बढ़ता है और विषय के प्रति लगन पैदा होती है। इसके परिणामस्वरूप, बच्चे पाठ्यपुस्तक को अपने आसपास के माहौल से जोड़कर देख पाते हैं।

लेखिका द्वारा सामाजिक एवं राजनैतिक जीवन विषय के लिए सुझाई गई गतिविधियाँ बेहद उपयोगी हैं।

चन्दा देवी साहू, माध्यमिक शिक्षक, शासकीय माध्यमिक शाला जेरवारा, राहतगढ़, ज़िला सागर, मध्य प्रदेश

लिखना सीखने की मज़ेदारी, सुनीता, अंक 17

इस आलेख में लेखिका ने बच्चों को लिखना सीखने के दरमियान आए विभिन्न पड़ावों का ब्योरा दिया है। यह बच्चों की उत्सुकता एवं रोचकता के साथ सीखने की प्रक्रिया एवं उनकी गतिविधियों में दिखाई दे रहा है। इनमें बच्चों की सहभागिता स्वत: स्फूर्त-सी जान पड़ती है।

प्रारम्भिक कक्षाओं में बच्चों का चित्रों एवं रंगों को देखना, चित्र बनाना और उनमें रंग भरना स्वाभाविक रूप से आकर्षित करता है। और जब कक्षा में यही सब काम गतिविधियों के रूप में बच्चों के बीच करवाया जाता है, बच्चे बहुत रोचकता के साथ उनमें अपनी भागीदारी निभाते हैं। यह इस आलेख में सुनीता ने बताया भी है। चित्र बनाना, चित्रों पर अपनी शिक्षिका द्वारा चित्रों से सम्बन्धित कविता और कहानी सुनाकर सीखने की प्रक्रिया को और अधिक प्रभावी बनाया गया है। जैसे– किसी ख़ास वस्तु का चित्र बनाकर उसके नाम पर वाक्य लिखना और इसे पढ़ना, जो इसे अवश्य ही रुचिकर बनाता है। यही गतिविधि जब बच्चे स्वत: करने लगते हैं, उनमें एक नई उमंग पैदा होती है। इससे उनमें सीखने की ललक हिलोरे मारने लग जाती है। बच्चों की यही तन्मयता और उनकी लगन उन्हें नई चीज़ सीखने और लिखने को तत्पर करती है।

सुशील कंवर चौधरी, वरिष्ठ अध्यापक (हिन्दी), महात्मा गाँधी राज. विद्यालय तेलीपाड़ा, जयपुर पूर्व, राजस्थान

पाठशाला भीतर और बाहर के सभी अंकों में सीखने के लिए बहुत कुछ होता है। इस लेख में लेखन सिखाने के रोचक तरीक़े पर चर्चा करने के साथ बच्चों के सीखने के तरीक़ों पर भी बात की गई है। लेखिका ने बच्चों को लेखन सिखाने की शुरुआत चित्रों पर चर्चा से की। यह एक रोचक तरीक़ा है। कई बार भाषा कौशलों पर काम करने के दौरान यह भ्रम होता है कि सुनना, बोलना, पढ़ना, लिखना, अलग-अलग हैं, और इनपर एक साथ काम नहीं हो सकता है। इस लेख से स्पष्ट हो जाता है कि भाषा के कौशलों पर एक साथ काम किया जा सकता है, और बच्चे रोचक तरीक़े से सीख सकते हैं। लेख में कहा गया है कि बच्चों के साथ बड़ी सूझबूझ और योजना के साथ काम

करने की ज़रूरत होती है, ऐसा न होने पर वे एक ही तरीक़े से काम करते हुए ऊबने लगते हैं, और लिखना-पढ़ना सीखना एक बोरिंग प्रक्रिया में बदल जाता है। लेख बताता है कि कैसे लेखिका ने कक्षा शिक्षण के दौरान बातचीत, बातचीत से शब्द, शब्द से वाक्य और वाक्य से अनुच्छेद लिखने तक की यात्रा बच्चों के साथ पूरी की। इसमें मज़ेदार बात यह थी कि ये सब सीखना आनन्द के साथ हो रहा था। यह भी उल्लेखनीय था कि बच्चों को अपने सहपाठियों से सीखने के मौक़े उपलब्ध कराए गए थे।

दिलीप, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन गदरपुर, ज़िला ऊधम सिंह नगर, उत्तराखंड

पढ़ने–लिखने का आनन्द, हंसराज तंवर, अंक 17

लेख में लेखक ने अपने अनुभवों के माध्यम से कहने का प्रयास किया है कि बच्चों का सीखना तब अधिक गति पकड़ता है, जब उनको सीखने का आनन्द आना शुरू हो जाए। सवाल उठता है, आनन्द आए कैसे? इसके तरीक़े भी लेख में दर्शाने का प्रयास किया गया है। लेखक कहते हैं कि बच्चों को कुछ वर्ण पहचानने में समस्या आ रही थी। बच्चे न, स, ह, त, द, आदि में अन्तर नहीं कर पा रहे थे, और वर्णों को ठीक से नहीं बना रहे थे। पर उनके अनुभव से ही उन्हें सीखने को मिला। ज्योंही लेखक ने बच्चों से उनके मनपसन्द चित्र बनवाए और उनपर बच्चों के साथ चर्चा की, बच्चों ने उनके लक़ीरे चित्रों पर अपनी व्याख्याएँ दीं। जो चित्र शिक्षक को भी समझ नहीं आ रहे थे, उन्हें भी बच्चों ने बख़ूबी समझाने का प्रयास किया। चर्चा के दौरान बच्चों और शिक्षक ने भी बनाए गए चित्रों का नाम कई बार लिया, जिससे वह उनके मन-मस्तिष्क में बैठ गया। शिक्षक ने शिक्षण में इसका उपयोग किया और उस चित्र के नीचे उसका नाम लिखकर उस नाम से शब्द चित्र की पहचान करवाई। उन्होंने बच्चों से कहा कि जो नाम इस चित्र का है, यह चित्र जिस चीज़ का है, उसे इस तरह से लिखते हैं। माने, जो लिखा गया है वह इस चित्र का ही नाम है। उदाहरण के लिए, चित्र में यदि पहाड़, बकरी, पेड़, आदि हैं, उनका नाम उनके चित्र के पास में लिखा और उस चित्र के साथ उस शब्द चित्र को भी जोड़ दिया। नाम पढ़वाते समय यदि बच्चों ने कुछ ग़लती भी की, शिक्षक ने उसे सही करवा दिया। शिक्षक ने पाया कि कुछ अभ्यास के बाद बच्चे उन नामों को आसानी से पहचान पा रहे थे।

शिक्षक यहीं नहीं रुके। उन्हें एक तरीक़ा मिल गया जिससे बच्चे सहजता से सीख रहे थे। अतः उसी तरीक़े से बच्चों को आगे सिखाना शिक्षक को उचित लगा। वे पहचाने गए शब्दों की प्रथम ध्वनि, अन्तिम ध्वनि और उनके प्रतीक की पहचान करवाते हुए वर्ण पहचान की ओर आए। शिक्षक को अहसास हुआ कि बच्चों में जो त, न, स, ह जैसे वर्णों की पहचान में भ्रम की स्थिति हो जाती थी, वह अब नहीं हो रही है। अब सीखे गए वर्णों से बने नल, रथ, नक, कल, आदि जैसे छोटे-छोटे सार्थक और निरर्थक शब्दों को बच्चे प्रवाह के साथ पढ़ पा रहे थे। इसी प्रक्रिया के तहत सीखे हुए शब्दों के माध्यम से छोटे-छोटे वाक्य भी बच्चों के अनुभवों से जोड़ते हुए शिक्षक बच्चों को पढ़वाने और लिखवाने लगे। वे जाने-पहचाने सन्दर्भ से वर्ण निकाल रहे थे। इससे बच्चों की उसे लिखने में भी रुचि बढ़ी और वे उनकी बनावट भी ठीक से बनाने लगे। इस प्रकार बच्चों और शिक्षक, दोनों को ही सीखने-सिखाने का आनन्द आने लगा।

मुरलीधर गुर्जर, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, ज़िला टोंक, राजस्थान

हर बार की तरह *पाठशाला* का यह अंक भी हम तमाम शिक्षक साथियों के लिए बेहद सार्थक लगा। हंसराज तंवर का आलेख अत्यन्त सहज तरीक़ों से बच्चों में सीखने के प्रति ललक पैदा करने की कोशिशों का अनुभव भी है और आख्यान भी। आलेख रटकर पढ़ने की अपेक्षा, समझकर पढ़ने पर ज़ोर देता है।

अनिल सिंह द्वारा लिखा 'बाल साहित्य : नए संसार की खिड़की' यह समझने के लिए बेहद ज़रूरी आलेख है कि पाठ्यपुस्तकों से बाहर जाकर विपुल बाल साहित्य का उपयोग कैसे बच्चों में पढ़ाई के प्रति रुचि जागृत करता है और उनके सीखने की क्षमताओं का भी विकास करता है। मीनू पालीवाल के लेख 'पढ़ने-लिखने में मौखिक भाषा की भूमिका' ने भी ख़ासा प्रभावित किया। 'पाठक चश्मा' एक बेहद रोचक और ज़रूरी स्तम्भ लगता है। अगर पिछले अंकों में कुछ महत्त्वपूर्ण पढ़ने से रह गया हो, पाठक चश्मा उसे पुनः जाकर पढ़ने का अवसर देता है। पूरी सम्पादकीय टीम को इस तरह के प्रयास के लिए बधाई।

निकेता तिवारी, शिक्षिका, राजकीय सीनियर सेकेंडरी स्कूल, किरणपथ, मानसरोवर, ज़िला जयपुर, राजस्थान

बच्चों को होमवर्क नहीं, बल्कि चुनौती दें, द्रोण साहू, अंक 17

इस आलेख को पढ़कर बच्चों को होमवर्क देने की कला सीखी। होमवर्क में बच्चों को सीधे-सीधे प्रश्नोत्तर देने की बजाय रोचक और चुनौतीपूर्ण टास्क देने से उनमें सोचने-समझने की शक्ति और कौशलों का विकास होता है। बच्चों को व्यस्त रखने के रोचक तरीक़ों की जानकारी इस आलेख से मिली।

मीनू पालीवाल का आलेख 'पढ़ने-लिखने में मौखिक भाषा की भूमिका' पढ़कर समझ में आया कि पढ़ने-लिखने की क्षमता के विकास में मौखिक भाषा की भूमिका बेहद अहम होती है। मौखिक भाषा पर आसपास के परिवेश और शैली का प्रभाव रहता है। लेखिका ने बड़े ही सहज भाव व उदाहरण द्वारा इसे समझाने का सफल प्रयास किया है। इसके अलावा, 'बाल साहित्य : नए संसार की खिड़की', 'कविता की सप्रसंग व्याख्या', आदि आलेख भी ज्ञानवर्धक और रोचक हैं।

सुमन जैन, महात्मा गाँधी राजकीय विद्यालय ग्वार ब्राह्मणन, सांगानेर, ज़िला जयपुर, राजस्थान

इस आलेख में बच्चों को होमवर्क न देकर चुनौती देने के तरीक़ों पर बातचीत की गई है। कक्षा में आमतौर पर देखा जाता है कि सभी बच्चों की रुचि होमवर्क करने में नहीं होती। आलेख में इस बात पर ज़ोर दिया गया है कि बच्चों को सरल टास्क देकर उन्हें होमवर्क पूरा करने की ओर प्रेरित करना चाहिए। जैसे– रोबोट के बारे में बच्चों से खेल-खेल में पूछा जाना कि वह क्या-क्या काम करता है।

बच्चों को भारी-भरकम होमवर्क देना उन्हें स्कूल आने से रोकता है और होमवर्क के नाम पर उनमें स्कूल एवं शिक्षकों के बारे में एक डर पैदा करता है। आलेख में यह बात अच्छी लगी कि एक शिक्षक बच्चों के मन से होमवर्क नाम के डर को कैसे कम कर सकता है। होमवर्क के भय को दूर करने हेतु शिक्षक बच्चों को उनकी परिवेशीय और स्थानीय भाषा का इस्तेमाल करने के लिए प्रेरित कर सकते हैं। आलेख को पढ़ते हुए एक और बात समझ में आई कि शिक्षक बच्चों की पारिवारिक पृष्ठभूमि को देखते हुए उन्हें होमवर्क दे सकते हैं। जैसे– अपने परिवार या किसी विशेष चीज़ अथवा घटना के बारे में कुछ लिखकर लाना।

साबेरीन सिद्दीकी, शासकीय प्राथमिक शाला हिन्दी उर्दू, बैजनाथ पारा, रायपुर शहर, छत्तीसगढ़

लेखकों से आग्रह

पाठकों से प्राप्त सुझाव के आधार पर **पाठशाला भीतर और बाहर** में छपने वाले लेखों की प्रकृति, स्वरूप और प्रस्तुति में कुछ परिवर्तन किए गए हैं। प्रयास है कि पत्रिका ज़मीनी स्तर पर काम कर रहे साथियों के लिए अपने अनुभवों को दर्ज करने, उनको विस्तार और गहराई देने के लिए एक उपयुक्त मंच बने और साथ ही इन अनुभवों को साझा करने का भी। इसी तरह, यह ज़मीनी स्तर पर होने वाले कार्य की दृष्टि से अर्थपूर्ण व कार्य में मददगार भी बन पाएगी। और व्यापक पाठक वर्ग सहित आप व हमारे शिक्षक साथी इसे पढ़ेंगे और इसका अधिकाधिक उपयोग कर पाएँगे।

आपसे आग्रह है कि आप अनुभवों को दर्ज कर पत्रिका में छपने के लिए भेजें। आप स्कूल में, कक्षा में, और अलग–अलग मंचों पर शिक्षकों के साथ किए गए काम के अनुभवों को भेज सकते हैं। आपके साथी शिक्षक भी अपने काम के अनुभवों को भेज सकते हैं। आपके द्वारा भेजे गए लेख बच्चों के सीखने–सिखाने से सम्बन्धित हो सकते हैं, जैसे– विभिन्न विषयों या प्रकरणों को सीखने–सिखाने के अनुभव या फिर शिक्षकों के साथ अन्तर्क्रिया के नए तौर–तरीक़ों पर केन्द्रित या फिर किसी महत्त्वपूर्ण या उल्लेखनीय संवाद के बारे में जो औरों के लिए भी उपयोगी हो। इनके और बहुत–से उदाहरण हो सकते हैं। जैसे– बच्चों के साथ काम के सन्दर्भ में गणित, विज्ञान, भाषा, सामाजिक अध्ययन, आदि किसी भी विषय की किसी भी कक्षा के अनुभव। ये अनुभव किसी अवधारणा को बच्चों को सिखाने, उन्हें गतिविधियाँ कराने या उनके साथ खेल खेलने आदि के हो सकते हैं।

आप, स्कूल और शिक्षकों के साथ (इसमें एंगेज्ड शिक्षक भी शामिल हैं) जो काम कर रहे हैं, उससे सम्बन्धित लेख भी साझा कर सकते हैं। इसमें आपने जो किया उसके साथ–साथ आप अपने काम में किस ख़ास तरह से आगे बढ़े और वह आपने क्या सोचकर किया, इस विचार को शामिल कर सकते हैं। इस दौरान आप अपने काम के सकारात्मक नतीजे व उसमें दिखने वाले गैप भी बताएँ, जैसे– बाल सभा या बाल शोध मेलों में कुछ परिवर्तन किया, तो वह क्या सोचकर किया, उसका क्या नतीजा निकला और बेहतर करने के लिए उसमें और क्या–क्या किया जा सकता है, आदि। इसी तरह, कक्षा में बच्चों को चित्रकला करवाने, कहानी सुनाने या किसी नाटक में भाग लिया, तो उसके बारे में क्या अनुभव रहे, यह बता सकते हैं। गणित का एक उदाहरण शिक्षण सामग्री जैसे– गिनमाला का प्रयोग करके गिनती सिखाने का हो सकता है। इसी तरह वालंटरी टीचर फ़ोरम, टीचर लर्निंग सेंटर, समर–विंटर कैम्प के शैक्षिक प्रयासों आदि के बारे में भी मननशील लेख हो सकते हैं। ये लेख पाठक को यह समझने में मदद करें कि उनमें क्या प्रयास था, किस परिस्थिति में उन्हें सोचा गया, कैसे किया गया, क्या हो पाया, क्या कमी रही, क्या सीखा और आगे के लिए आपके समूह और पाठकों के लिए उसके क्या निहितार्थ हैं?

शिक्षकों के साथ प्रशिक्षण के दौरान, वालंटरी टीचर फ़ोरम में कार्य के दौरान, टीचर लर्निंग सेंटर पर हो रहे प्रयासों में, या उनके साथ सहकारी शिक्षण के दौरान हुए अनुभवों को मननशील व समालोचनात्मक दृष्टिकोण से लिखकर भेजें तो अच्छा रहेगा। इसी तरह, बच्चों अथवा शिक्षकों के साथ कक्षा के बाहर हुए सार्थक अनुभव भी आप मननशील ढंग से लिख सकते हैं।

लेखों के विषय और विषयवस्तु ऐसी हो जिससे फ़ील्ड में कार्य करने वाले साथियों और शिक्षकों को वैचारिक मदद मिलती हो और उनका दक्षता संवर्धन होता हो। लेख ऐसे हों जो स्कूल व कक्षा में पढ़ने–पढ़ाने के तरीक़ों व अन्य गतिविधियों में शिक्षकों व फ़ाउण्डेशन के साथियों द्वारा इस्तेमाल किए जा सकें। साथ ही, ऐसे लेख भी हों जिनसे विविध विषयों एवं उनमें बुनी अवधारणाओं को पढ़ाने

में मदद मिले और उनकी भाषा व विषय सामग्री अधिक–से–अधिक सदस्यों को आसानी से समझ में आने वाली हो।

यदि लेख में दिए गए किसी विवरण, चर्चा अथवा व्याख्या से सम्बन्धित किसी तर्क अथवा प्रमाण के लिए किसी पुस्तक, जरनल या वेब स्रोत से कोई सामग्री ली गई हो तो उसका उल्लेख ज़रूर करें। आप जो भी सन्दर्भ सामग्री लें उससे लेख को अर्थपूर्ण, तार्किक और गुणवत्तापूर्ण बनाने में मदद मिले।

इसके अलावा, आप शिक्षा से सम्बन्धित किसी पुस्तक, फ़िल्म अथवा अन्य शिक्षण सामग्री के बारे में भी लिख सकते हैं, मसलन उनका परिचय, समीक्षा अथवा विश्लेषण।

आशा करते हैं कि आपके यह लेखकीय अनुभव ठोस एवं यथार्थपरक होंगे। उनमें कुछ ऐसा ज़रूर हो जो पाठक को रुचिपूर्ण व सार्थक लगे।

लेखकों को अपने लेखन के सन्दर्भ में किसी भी तरह के सहयोग की आवश्यकता महसूस होती है तो वे इसके लिए सम्पर्क कर सकते हैं। उन्हें सम्पादक मण्डल के सदस्यों द्वारा आवश्यक सहयोग और सुझाव दिए जाएँगे। उम्मीद है कि **पाठशाला भीतर और बाहर** का यह अठारहवाँ अंक आपको अच्छा लगेगा और आप इसके अगले अंकों के लिए ज़रूर लिखेंगे। पत्रिका के इस अंक पर आपकी टिप्पणियों व सुझावों का हमें हमेशा की तरह इन्तज़ार रहेगा।

मुद्रक तथा प्रकाशक मनोज पी. द्वारा अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन फॉर डिवलपमेंट के लिए अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, प्लॉट नं. 163-164, त्रिलंगा कोऑपरेटिव सोसाइटी, E–8 एक्सटेंशन, त्रिलंगा भोपाल, मध्यप्रदेश 462039 की ओर से प्रकाशित एवं गणेश ग्राफ़िक्स, 26-बी, देशबंधु परिसर, प्रेस काम्प्लेक्स, एम.पी. नगर, जोन-1, भोपाल द्वारा मुद्रित।

सम्पादक : गुरबचन सिंह

Azim Premji University

Anuvada Sampada

अनुवाद सम्पदा

अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय की अनुवाद रिपॉज़ेटरी

अवधारणाओं तथा विचारों के साथ गहराई से जुड़ने हेतु विद्यार्थियों और शिक्षकों के लिए भारतीय भाषाओं में उच्च गुणवत्ता के 3000 से अधिक शैक्षणिक संसाधनों का भण्डार।

भारतीय भाषाओं में शैक्षणिक संसाधनों के लिए निशुल्क, ओपन-एक्सेस पोर्टल

- पुस्तकें और पुस्तक अंश
- अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय के प्रकाशनों से लेख
- विभिन्न संगोष्ठियों और रीडरों से चुनिन्दा लेख

अनुवाद सम्पदा के लिए लिंक :
https://anuvadasampada.azimpremjiuniversity.edu.in/

अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय की अन्य पत्रिकाएँ